Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Manav
Vol. 15 1987
G. K. V. Hardwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 111123

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष–१५ ★ अंक–१
जनवरी–मार्च
१९८७

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार
S: 12
111123

मानव

एथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव

(त्रैमासिक)

प्रकाशक—	एथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी, लखनऊ	
संपादक—	उमाशंकर मिश्र	
सह-संपादक—	डा० रघुराज गुप्त	
प्रबंध संपादक—	श्री प्रभात कुमार तिवारी	
सहायक-संपादक—	डा० नदीमुल हसनैन श्री ललित किशोर मिश्र	
संपादकीय परामर्शदाता—	श्री बी० डी० सनवाल डा० ब्रह्मदेव शर्मा डा० श्यामा चरण दुबे डा० वीरेन्द्र नाथ मिश्र	श्री हरी सहाय सक्सेना डा० इन्द्र देव प्रो० अवध किशोर शरण

'मानव' में मानवविज्ञान एवं अन्य सम्बन्धित विषयों पर मूल शोध पत्र, प्रामाणिक मूल लेखों के अनुवाद एवं पुस्तक समीक्षायें आदि प्रकाशित होती हैं।

वार्षिक शुल्क संस्थाओं के लिए स्वदेश में ६० रु०
विदेशों में २० डालर
अथवा समकक्ष अन्य विदेशी मुद्रायें
(सोसायटी के सदस्यों को अर्ध शुल्क पर प्राप्य)
वैयक्तिक ५० रु०; विद्यार्थियों के लिये विशेष सुविधा—३० रु० वार्षिक

संपर्क सूत्र—
संपादक 'मानव', एथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी
पोस्ट बाक्स २०९, ७ ए, रामकृष्ण मार्ग, फैजाबाद रोड, लखनऊ—२२६ ००७

पुनार मुद्रक, लखनऊ में मुद्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

111123

१३।१।८६ गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

मानव

त्रैमासिक

वर्ष : १५ जनवरी–मार्च १९८७ अंक : १

इस अंक में

स्त्रियों की प्रजनन-दर निर्धारण में शिशु एवं बाल-मृत्यु की भूमिका : कोल जनजाति पर आधारित एक अध्ययन — एस० बी० सिंह परमार — १

ग्रामीण महिलाओं में सतत् शिक्षा की समस्या एवं संभावनाएं — मंजू शुक्ल — ९

अर्थशास्त्र एवं समाजशास्त्र—प्रो० डी० पी० मुखर्जी के चिंतन पर आधारित एक विश्लेषण — नन्दलाल पांडेय — १७

समाज विज्ञानों में हिन्दी माध्यम में अध्यापन समस्यायें एवं सुझाव — नरेश चन्द्र जोशी एवं जे० पी० पचोरी — ३३

आदिवासी स्तम्भ

ग्रेट निकोबार के शोम्पेन — अशोक कुमार पांडेय एवं दिग्विजय नाथ पांडेय — ४१

झाबुआ जिले की भील एवं भिलाला जनजाति का सामाजिक एवं आर्थिक संगठन — जी० पी० पटेल — ५१

पुस्तक समीक्षा

हिमाचल प्रदेश : लोक संस्कृति और साहित्य—डा० गौतम शर्मा 'व्यथित' — दीपक त्यागी — ५९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी, लखनऊ की १९८७ की कार्यकारिणी

अध्यक्ष	श्री भैरोंदत्त सन्वाल
उपाध्यक्ष	प्रो० आई० पी० सिंह (दिल्ली)
	प्रो० पी० के० मिश्रा (शिलौंग), प्रो० आर०एस० बिष्ट (लखनऊ)
	श्री वी० एस० शुक्ल (लखनऊ), श्री बी० एस० शुक्ला (लखनऊ)
कोषाध्यक्ष	श्री प्रभात कुमार तिवारी
मंत्री	डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल
संयुक्त मन्त्री	श्री जे० एन० शुक्ल, डा० आर० शर्मा
सहायक मन्त्री	डा० ए० एस० तिवारी, डा० मन्जू शुक्ल, डा० ए० जे० मुखर्जी
निर्वाचित सदस्य	प्रो० पी० के० भौमिक (कलकत्ता), प्रो० एस०सी० तिवारी (दिल्ली)
	प्रो० वी० रामी रेड्डी (तिरुपति), प्रो० सी० जी० सिंगरोल (रायपुर)
	प्रो० ए० बी० शरण (रांची), श्री दीपक त्यागी (मैसूर)
	डा० आर० के० गुलाटी (देहरादून), डा० सुधा रस्तोगी (लखनऊ)
	डा० ओ० पी० शुक्ला (लखनऊ), श्री डी० बसक (लखनऊ)
	श्री श्रीष चन्द्र (लखनऊ), डा० आर० एम० शुक्ला (लखनऊ)
	डा० नदीमुल हसनैन (लखनऊ), डा० राकेश शुक्ला (लखनऊ)
पदेन सदस्य	डा० सुरेश चंद्र वर्मा (सम्पादक–दी ईस्टर्न एन्थ्रोपोलॉजिस्ट)
	श्री उमाशंकर मिश्र (सम्पादक–मानव)
	डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल (सम्पादक–इण्डियन जरनल आफ फिजिकल एन्थ्रोपोलॉजी एण्ड ह्यूमैन जेनेटिक्स)
	श्री एच० एस० सक्सेना (निदेशक–डी० एन० मजूमदार म्यूजियम आफ फोक आर्ट)

मानव प्रबन्धक समिति के सम्मानित सदस्य

श्री भैरोंदत्त सनवाल (अध्यक्ष–पदेन सदस्य)
श्री विधु शेखर शुक्ल
श्री श्रीष चन्द्र
श्री हरि सहाय सक्सेना
डा० वीरेन्द्र नाथ मिश्र
श्री प्रभात कुमार तिवारी (कोषाध्यक्ष–पदेन सदस्य)
डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल (मंत्री–पदेन सदस्य)
श्री उमाशंकर मिश्र (सम्पादक–पदेन सदस्य)

पूनार मुद्रक, ११७ नजीराबाद, लखनऊ में मुद्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

11/3/88

मानव

त्रैमासिक

वर्ष : १५ अप्रैल–सितम्बर १९८७ अंक : २, ३

इस अंक में

पुरातात्त्विक नृविज्ञान	गोपाल शरण	६१
ग्राम-विकासोन्मुखी ऐच्छिक संगठनों की सामाजिक आर्थिक संरचना (उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में)	राजबली मिश्र	९७
'यादव' जाति-उसकी प्रथायें, मान्यतायें सामाजिक सम्बन्ध एवं सामाजिक परिवर्तन	क्रांति दर्शन शर्मा	१०७
आदिवासी स्तम्भ		
भोक्सा जनजाति : एक मानव वैज्ञानिक अध्ययन	हरिभजन सिंह चौहान	११३
पीलीभीत नगर (उ० प्र०) की अपराधिक जनजाति कंजर की प्रथाओं, परम्पराओं, रूढ़ियों, जनरीतियों एवं संस्कारों का विश्लेषण	विमल चन्द्र जैन	११९
विद्यार्थी–स्तम्भ		
मानव का प्रतीकात्मक जीवन संसार एक रचनात्मक—विकासवादी दृष्टिकोण	एलविन जे० मुकर्जी	१३३
भारत के लोग—एक राष्ट्रीय परियोजना भारतीय मानव वैज्ञानिक सर्वेक्षण	दीपक त्यागी	१३९
पुस्तक समीक्षा		
छत्तीसगढ़ के नगेसिया/लेखक विलियम एक्का तथा अजीत के० डांड़ा	दीपक त्यागी	१४१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी, लखनऊ की १९८७ की कार्यकारिणी

अध्यक्ष	श्री भैरोंदत्त सन्वाल
उपाध्यक्ष	प्रो० आई० पी० सिंह (दिल्ली)
	प्रो० पी० के० मिश्रा (शिलौंग), प्रो० आर०एस० बिष्ट (लखनऊ)
	श्री वी० एस० शुक्ल (लखनऊ), श्री बी० एस० शुक्ला (लखनऊ)
कोषाध्यक्ष	श्री प्रभात कुमार तिवारी
मंत्री	डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल
संयुक्त मन्त्री	श्री जे० एन० शुक्ल, डा० आर० शर्मा
सहायक मन्त्री	डा० ए० एस० तिवारी, डा० मन्जू शुक्ल, डा० ए० जे० मुखर्जी
निर्वाचित सदस्य	प्रो० पी० के० भौमिक (कलकत्ता), प्रो० एस०सी० तिवारी (दिल्ली)
	प्रो० वी० रामी रेड्डी (तिरुपति), प्रो० सी० जी० सिंगरोल (रायपुर)
	प्रो० ए० बी० शरण (रांची), श्री दीपक त्यागी (मैसूर)
	डा० आर० के० गुलाटी (देहरादून), डा० सुधा रस्तोगी (लखनऊ)
	डा० ओ० पी० शुक्ला (लखनऊ), श्री डी० बसक (लखनऊ)
	श्री श्रीष चन्द्र (लखनऊ), डा० आर० एम० शुक्ला (लखनऊ)
	डा० नदीमुल हसनैन (लखनऊ), डा० राकेश शुक्ला (लखनऊ)
पदेन सदस्य	डा० सुरेश चंद्र वर्मा (सम्पादक–दी ईस्टर्न एन्थ्रोपोलॉजिस्ट)
	श्री उमाशंकर मिश्र (सम्पादक–मानव)
	डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल (सम्पादक–इण्डियन जरनल आफ फिजिकल एन्थ्रोपोलॉजी एण्ड ह्यूमैन जेनेटिक्स)
	श्री एच० एस० सक्सेना (निदेशक–डी० एन० मजूमदार म्यूजियम आफ फोक आर्ट)

मानव प्रबन्धक समिति के सम्मानित सदस्य

श्री भैरोंदत्त सनवाल (अध्यक्ष–पदेन सदस्य)
श्री विधु शेखर शुक्ल
श्री श्रीष चन्द्र
श्री हरि सहाय सक्सेना
डा० वीरेन्द्र नाथ मिश्र
श्री प्रभात कुमार तिवारी (कोषाध्यक्ष–पदेन सदस्य)
डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल (मंत्री–पदेन सदस्य)
श्री उमाशंकर मिश्र (सम्पादक–पदेन सदस्य)

पूनार मुद्रक, ११७ नजीराबाद, लखनऊ में मुद्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

19131021
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

मानव

त्रैमासिक

वर्ष : १५ अक्तूबर–दिसम्बर १९८७ अंक : ४

इस अंक में

हिन्दू परिवार	अयोध्या सरन तिवारी एवं श्रीमती मीरा भार्गव	१४३
जाट लोक कहानी : जाट साहूकार	टी० आर० सिंह	१५७
भंगियों से राजनीतिक चेतना	बिनोद सिंह	१६७
बाल अपराध : कारण एवं निवारण	करन सिंह चौहान	१७३

आदिवासी स्तम्भ

बस्तर की गदबा जनजाति का जीवन चक्र	मोहम्मद यूसुफ खान	१८१

विद्यार्थी–स्तम्भ

पर्यावरण आदिवासी और विकास	राधेश्याम त्रिपाठी	१८९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी, लखनऊ की १९८७ की कार्यकारिणी

अध्यक्ष	श्री भैरोंदत्त सन्वाल
उपाध्यक्ष	प्रो० आई० पी० सिंह (दिल्ली)
	प्रो० पी० के० मिश्रा (शिलौंग), प्रो० आर०एस० बिष्ट (लखनऊ)
	श्री वी० एस० शुक्ल (लखनऊ), श्री बी० एस० शुक्ला (लखनऊ)
कोषाध्यक्ष	श्री प्रभात कुमार तिवारी
मंत्री	डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल
संयुक्त मन्त्री	श्री जे० एन० शुक्ल, डा० आर० शर्मा
सहायक मन्त्री	डा० ए० एस० तिवारी, डा० मन्जू शुक्ल, डा० ए० जे० मुखर्जी
निर्वाचित सदस्य	प्रो० पी० के० भौमिक (कलकत्ता), प्रो० एस०सी० तिवारी (दिल्ली)
	प्रो० वी० रामी रेड्डी (तिरुपति), प्रो० सी० जी० सिंगरोल (रायपुर)
	प्रो० ए० बी० शरण (रांची), श्री दीपक त्यागी (मैसूर)
	डा० आर० के० गुलाटी (देहरादून), डा० सुधा रस्तोगी (लखनऊ)
	डा० ओ० पी० शुक्ला (लखनऊ), श्री डी० बसक (लखनऊ)
	श्री श्रीष चन्द्र (लखनऊ), डा० आर० एम० शुक्ला (लखनऊ)
	डा० नदीमुल हसनैन (लखनऊ), डा० राकेश शुक्ला (लखनऊ)
पदेन सदस्य	डा० सुरेश चंद्र वर्मा (सम्पादक–दी ईस्टर्न एन्थ्रोपोलॉजिस्ट)
	श्री उमाशंकर मिश्र (सम्पादक–मानव)
	डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल (सम्पादक–इण्डियन जरनल आफ फिजिकल एन्थ्रोपोलॉजी एण्ड ह्यूमैन जेनेटिक्स)
	श्री एच० एस० सक्सेना (निदेशक–डी० एन० मजूमदार म्यूजियम आफ फोक आर्ट)

मानव प्रबन्धक समिति के सम्मानित सदस्य

श्री भैरोंदत्त सनवाल (अध्यक्ष–पदेन सदस्य)

श्री विधु शेखर शुक्ल

श्री श्रीष चन्द्र

श्री हरि सहाय सक्सेना

डा० वीरेन्द्र नाथ मिश्र

श्री प्रभात कुमार तिवारी (कोषाध्यक्ष–पदेन सदस्य)

डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल (मंत्री–पदेन सदस्य)

श्री उमाशंकर मिश्र (सम्पादक–पदेन सदस्य)

पूनार मुद्रक, ११७ नजीराबाद, लखनऊ में मुद्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियों की प्रजनन दर निर्धारण में शिशु एवं बाल-मृत्यु की भूमिका : कोल जनजाति पर आधारित एक अध्ययन

एस० बी० सिंह परमार

मृत्यु दर राष्ट्र की समृद्धि का अभिसूचक है। जिन देशों का जीवन स्तर ऊँचा है, वहाँ मृत्यु दर पर्याप्त कम है, जबकि उन देशों में मृत्यु दर अपेक्षाकृत बहुत अधिक है जो आर्थिक दृष्टि से विपन्न हैं। भारतवर्ष उन देशों में से एक है जहां मृत्यु दर बहुत अधिक है, स्वास्थ्य का स्तर निम्न है, जीवन अवधि अल्पकालीन है। जनांकिकीय इतिहास के अवलोकन से स्पष्ट है कि उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक विश्व के अधिकांश देशों में मृत्यु दर बहुत अधिक थी। परन्तु वर्तमान शती के उत्तरार्द्ध में, विशेषतया विगत दशकों में, विकासशील देशों में भी मृत्यु दर में अप्रत्याशित कमी हुई है। द्वितीय विश्व युद्ध के एक दशक बाद ही श्रीलंका, कोरिया और ताइवान जैसे विकासशील देशों की मृत्यु दर में अल्पावधि में ही उल्लेखनीय कमी आयी (अग्रवाल, १९८१ : १२३१)। इसी प्रकार इण्डोनेशिया (दास वर्मा, १९८६ : ६१), नेपाल (गुभाजू, १९८६ : ५७) तथा बांगला देश (अमीन, मरियम एवं फारूकी १९८६ : ३५ तथा चौधरी, फिलिप्स एवं शेख, १९८६ : ३०) में भी मृत्यु दर में महत्वपूर्ण कमी हुई।

वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में भारतवर्ष में मृत्यु-दर ऊँची थी। सम्भवतः द्वितीय विश्व युद्ध के नर संहार के कारण भारत में मृत्यु-दर में कमी हुई, फिर भी १९४१-५१ के दशक में मृत्यु दर २७.४ प्रति एक हजार हो गयी। स्वतन्त्रता पश्चात १९७८ में मृत्यु दर घटकर प्रति हजार १४.२ हो गयी। अधिकांश मरने वालों में बालक तथा गर्भवती मातायें सम्मिलित हैं। और इसमें भी कुछ कमी परिलक्षित हुई। १९७८ में शिशु मृत्यु दर १४७ से घटकर १२६ हो गई है (संध्या, १९८६ : ८६)। तथापि भारत में मृत्यु दर का स्तर अनेक

डा० एस० बी० सिंह परमार, अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, अतर्रा पी० जी० कालेज, अतर्रा (बांदा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकासशील देशों की तुलना में अधिक है। मृत्यु दर में गिरावट की प्रक्रिया १९२१ से प्रारम्भ हुई जो १९५० तथा १९७० के बीच में तीव्र हो गयी (पाठक तथा मूर्थी, १९८३ : २४६)। उसी अवधि में शिशु मृत्यु दर भी घटी, इसकी गति अपेक्षाकृत धीमी थी (जकारिया और पटेल, १९८३ : १२५, पद्मनामा, १९८२ : १२८७ तथा पाठक एवं मूर्थी, १९८५ : १७)।

सामान्य मृत्यु दर के सन्दर्भ में शिशु मृत्यु दर का विशेष महत्व है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जब तक कि शिशु मृत्यु दर में कमी नहीं लायी जाती तब तक स्त्रियों की प्रजनन दर में भी वांछित कमी नहीं लाई जा सकती और जनसंख्या पर नियंत्रण करना सम्भव न हो सकेगा। ऐसा देखा गया है कि वे दम्पति जो परिवार नियोजन को अंगीकार करना चाहते हैं, वे ऐसा तभी करते हैं जब वे अपनी सन्तान की संख्या से परितुष्ट हैं। भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश में, जहां बच्चों के जीवित रहने की सम्भावनायें बहुत कम हैं, दम्पत्ति स्वाभाविक रूप से अपेक्षाकृत अधिक बच्चे ज्ञात या अज्ञात रूप से पैदा करना चाहते हैं ताकि कम से कम कुछ बच्चे जीवित बचे रहें। इस सम्बन्ध में वे किसी प्रकार की जोखिम उठाना नहीं चाहते। प्रचलित लोकोक्ति है कि "एक आंख और एक बच्चे का कोई भरोसा नहीं।" शिशु एवं बाल मृत्यु में कमी होने से लोगों में कम बच्चों के प्रति प्रेरणा जागृत हो सकेगी क्योंकि उनके मन से बच्चों के मरने का भय दूर हो जायेगा।

जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में चीन के पश्चात् भारत का ही स्थान है। १९८१ की जनगणना के अनुसार, भारत की कुल जनसंख्या ६८ करोड़ से अधिक थी। रोचक तथ्य यह है कि देश की जनसंख्या उत्तरोत्तर वृद्धि की ओर उन्मुख है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जनसंख्या का देश के सीमित साधनों पर एक बोझ है। यों जनसंख्या वृद्धि के अनेक कारणों में शिशु एवं बाल मृत्यु का अपना विशेष महत्व है क्योंकि यह दम्पतियों के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक पक्ष से निबद्ध है। जब हमारा ध्यान उन समुदायों की ओर जाता है जहां जन स्वास्थ्य सेवाओं का प्रसार नाममात्र को है, जन साधारण भूख तथा कुपोषण के शिकार हैं तथा जहां अज्ञानता एवं अन्धविश्वासों का बोलबाला है, तब हम उनके बीच प्रचलित शिशु मृत्यु दर तथा स्त्रियों की प्रजनन दर की सहज ही कल्पना कर सकते हैं। लेकिन दुखद यह है कि जनसंख्या के सन्दर्भ में शिशु मृत्यु दर के महत्व के बावजूद भी समस्या को गहनतापूर्वक लघु स्तर पर समझने का प्रयास बहुत कम किया गया है तथा समुचित आंकड़ों का अभाव है। विशेषकर जनजातियों की इस समस्या की ओर तो विद्वानों का ध्यान लगभग आकृष्ट ही नहीं हुआ। प्रस्तुत शोध पत्र में इस उपेक्षित क्षेत्र पर प्रकाश डालने की दिशा में एक लघु प्रयास किया गया है। यहां कोल जनजाति के अनुभवाश्रित अध्ययन आधार पर उन स्त्रियों की प्रजननता पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया गया हे जिनके साथ शिशु मृत्यु की घटना घटित हो चुकी है।

अतीत के अध्ययन

जनसंख्या वृद्धि के अनेक जनांकिकीय, सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारकों का अध्ययन अनेक विद्वानों द्वारा किया गया लेकिन इन अध्ययनों में शिशु मृत्यु दर के योगदान का मूल्यांकन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं किया गया। फलतः इस समस्या से सम्बन्धित अध्ययन कम ही हुए हैं। प्रकाशम् (१९८० : १२८-१३३) ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि शिशु मृत्यु दर जन्म दर को प्रभावित करती है और उससे प्रभावित भी होती है। प्रकाशम् ने बम्बई में १९७० से १९७४ तक के बीच ७६३ माताओं का अध्ययन किया जिनके कुल २५४५ जीवित बच्चे थे। अपने अध्ययन के आधार पर वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि जिन माताओं के बच्चों की मृत्यु उनके जन्म के २८ दिन के अन्दर ही हो जाती है। वे मातायें, उन माताओं की तुलना में शीघ्र गर्भधारण करती हैं जिनके बच्चों की मृत्यु जन्म के २८ दिन बाद होती है। इसका स्पष्टीकरण यह दिया जाता है कि शिशु मृत्यु दम्पति में अगला तथा अधिक बच्चा प्राप्त करने की तीव्र इच्छा जागृत कर देती है और वे अपने परिवार को तब तक सीमित करने का प्रयास नहीं करते जब तक कि वे अपने बच्चों, विशेषकर लड़कों, के जीवित रहने के प्रति आश्वस्त नहीं हो जाते (पाण्डेय, १९८० : १३४-१३९)।

अध्ययन–उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य है स्त्रियों की प्रजननता पर शिशु मृत्यु के प्रभाव को ज्ञात करना।

परिकल्पना

अध्ययन की प्रमुख परिकल्पना है : शिशु मृत्यु दर और स्त्रियों की प्रजननता के बीच सापेक्ष सम्बन्ध है।

शोध अभिकल्प

इस अध्ययन का शोध अनुसन्धान अभिकल्प अन्वेषणात्मक तथा वर्णनात्मक है। जहां एक तरफ शिशु एवं बाल मृत्यु का स्त्रियों की प्रजननता पर प्रभाव का अन्वेषणात्मक अध्ययन किया गया है वहीं उपर्युक्त परिकल्पना का परीक्षण भी किया गया है जिसका निर्माण समसामयिक भारतीय समाज में व्याप्त दशाओं तथा उपलब्ध शोध सामग्री के आधार पर किया गया है।

समग्र तथा प्रतिदर्श

इस अध्ययन के आंकड़े बांदा जनपद के पाठा क्षेत्र के मनगवाँ गाँव के उर्वर आयु समूह की कोल जनजाति की महिलाओं से प्राप्त किये गये हैं। मनगवाँ गाँव की लगभग ८४ प्रतिशत जनसंख्या कोल जनजाति की है। यह गाँव मध्य रेलवे के प्रमुख स्टेशन तथा खण्ड विकास मुख्यालय मानिकपुर के पश्चिम में २५ कि०मी० दूर स्थित है। इस गाँव तक रेलगाड़ी द्वारा पहुंचा जा सकता है। यहां पहुंचने का एक अन्य विकल्प है वन विभाग द्वारा निर्मित कच्ची सड़क। टिकरिया रेलवे स्टेशन इसी गांव में स्थित है। मारकुण्डी से भी सड़क के रास्ते जा सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वर आयु समूह की कुल १६८ स्त्रियों में से १०० को यादृच्छिक निदर्शन विधि द्वारा अन्वेषणार्थ चुना गया। आंकड़े साक्षात्कार-अनुसूची के माध्यम से संकलित किये गये। कोल जनजाति की महिलायें शर्मीले स्वभाव की हैं। अजनवी पुरुषों से पर्दा करने तथा उनसे कम से कम बोलने की प्रकृति पायी जाती है जो साक्षात्कार करने में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न करती है। इसके लिए ग्राम प्रधान तथा अन्य कोल पुरूषों की सहायता ली गई जिससे साक्षात्कार प्रभावी हो सका। पूर्व सर्वेक्षण तथा मुख्य साक्षात्कार अक्टूबर १९८३ तथा जून १९८४ के मध्य सम्पन्न किया गया।

उत्तरदाताओं की सामाजिक विशेषतायें

जिन स्त्रियों से साक्षात्कार किया गया वे सभी अनपढ़ थीं। उनमें से अधिकांश का प्रमुख व्यवसाय कृषि मजदूरी था। अधिकांश उत्तरदाता (४१ प्रतिशत) ३५-४४ आयु समूह की थीं। इसके बाद दूसरा स्थान २५-३४ आयु समूह (३९ प्रतिशत) के उत्तरदाताओं का था। सबसे कम उत्तरदाता १५-२४ आयु समूह (२० प्रतिशत) की थीं। स्त्रियों की औसत आयु ३२ वर्ष थी। उल्लेखनीय है कि प्रतिदर्श की ३५ प्रतिशत महिलाओं के पतियों की नसबन्दी हो चुकी थी। साक्षात्कार की अवधि में ज्ञात हुआ कि अधिकांश पतियों की नसबन्दी उनकी इच्छा के विरुद्ध प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा करायी गयी थी।

जिन १०० कोल महिलाओं को साक्षात्कार के लिए चुना गया उन्होंने उस समय तक कुल ४८० जीवित बच्चों को जन्म दिया था, जिसमें २४६ लड़के तथा शेष २३४ लड़कियां थीं। इन जन्में बच्चों में से ९४ बच्चे शैशवावस्था में ही काल कवलित हो चुके थे। मृत बच्चों में कुल ४१ लड़के तथा ५३ लड़कियां थीं।

विश्लेषण तथा विवेचन

शिशु एवं बाल मृत्यु तथा स्त्रियों की प्रजननता सम्बन्धी तथ्य निम्न सारणी में प्रस्तुत हैं। सारणी के तथ्यों पर दृष्टिपात करने से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि शिशु एवं बाल मृत्यु तथा स्त्रियों की प्रजननता के बीच सकारात्मक सह सम्बन्ध है।

($\gamma = +.४९$)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारणी
मृत शिशु एवं बालकों की संख्या तथा जन्मों के आधार पर स्त्रियों का वितरण

मृत शिशु एवं बालकों की संख्या	जीवित जन्मों के आधार पर स्त्रियों की संख्या			जीवित जन्मों का माध्य	स्त्रियों की संख्या का योग
	१–५	५–९	९–१३		
०—१	३१	१४	०२	४.६	४७
१—२	१५	१३	—	४.९	२८
२—३	०२	११	०३	७.२५	१६
३—४	—	०२	०१	८.३	०३
४—५	—	०४	०१	७.८	०५
५—६	—	—	०१	११.००	०१
योग	४८	४४	०८	५.४०	१००

$\gamma = + ०.४९$

.०१ सम्भाविता स्तर पर महत्वपूर्ण ।

जिन स्त्रियों के जन्मे सभी बच्चे जीवित हैं, उन्होंने औसतन ४.६ बच्चों को जन्म दिया और यह न्यूनतम है । उन स्त्रियों में जिनके एक बच्चे की मृत्यु हुई है, उनमें बच्चों की औसत संख्या ४.९ है । ज्यों-ज्यों मृत बच्चों की संख्या में वृद्धि होती जाती है, जन्म लेनेवाले बच्चों की संख्या में भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है । इस प्रकार दो बच्चों की मृत्यु पर जन्मे बच्चों का औसत ७.२५, तीन की मृत्यु पर ८.३, चार की मृत्यु पर ७.८ तथा पांच बच्चों की मृत्यु पर यह औसत ११ बच्चों के जन्म का है, जो कि सर्वाधिक है । इससे यह स्पष्ट पता चलता है कि शिशु तथा बाल मृत्यु दर जितनी अधिक है, जन्म लेनेवाले बच्चों की संख्या भी उतनी ही अधिक है । इसके विपरीत, शिशु एवं बाल मृत्यु के घटने अथवा उसके शून्य हो जाने की स्थिति में जन्में बच्चों की संख्या भी आनुपातिक रूप से कम होती जाती है । दोनों चरों के बीच सकारात्मक सहसम्बन्ध है ।

निष्कर्ष

अध्ययन की उपलब्धियां इस बात का संकेत करती हैं कि शिशु एवं बाल मृत्यु स्त्रियों की प्रजननता को सकारात्मक ढंग से प्रभावित करती है । और यह प्रभाव अधिक महत्व का है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह निष्कर्ष प्रकाशम् (१९८० : १२८-१३३) तथा पाण्डेय (१९८० । १३४-१३९) के निष्कर्षों से साम्य रखता है। इस विश्लेषण की उपलब्धियां शिशु एवं बाल मृत्यु तथा स्त्रियों की प्रजननता के सह सम्बन्ध की पुष्टि करती तथा उनकी निकटता को स्वीकारती है।

आभार

लेखक डा० राजेन्द्र पाण्डेय, प्रोफेसर, समाजशास्त्र, आई० आई० टी०, कानपुर का, उनके समालोचनात्मक पठन, उचित संशोधनों और महत्वपूर्ण सुझावों के लिए आभारी है।

संदर्भ

अग्रवाल, एस० एन०, १९८१ **इण्डियाज पापुलेशन प्राब्लम्स,** नई दिल्ली, टाटा मक्ग्राहिल पब्लिशिंग कम्पनी लि०।

अमीन, आर०, मरियम, ए० जी० तथा फारूकी, आर० १९८६ इन्फैंट एण्ड चाइल्ड मारटेलिटी इन बांगला देश, १९५९-१९७६, **डेमोग्राफी इण्डिया,** वा० १५, नं० १

चौधरी, ए० आई०, जे० एफ० फिलिप्स तथा ए० के० शेख १९८६ दि ट्रेण्डस इन नियोनेटल, इन्फैंण्ट एण्ड चाइल्ड मारटेलिटी इन मतलब प्रोजेक्ट पीरियड, **डेमोग्राफी इण्डिया,** वा० १५, नं० १.

दास वर्मा, जी० एल०, १९८६ इन्फैंण्ट मारटेलिटी इन इण्डोनेशिया: ए रिव्यू आफ रीसेण्ट इवीडेन्स, **डेमोग्राफी इण्डिया,** वा० १५, नं० १.

गुभाजू, भक्त बी०, १९८६ लेवल एण्ड ट्रेण्ड्स आफ इन्फैंण्ट एण्ड चाइल्ड मारटेलिटी इन नेपाल, **डेमोग्राफी इण्डिया,** वा० १५, नं० १,

पद्मनामा, पी०, १९८२ मारटेलिटी इन इण्डिया: ए नोट आन ट्रेन्ड्स एण्ड इम्पलीकेशन्स, **इकौनामिक एण्ड पालिटिकल वीकली,** वा० १७.

पाण्डेय, जी० डी० १९८० सम आस्पेक्टस आफ नियोनेटल एण्ड पोस्टनियोनेटल मारटेलिटी इन ए रूरल एरिया आफ उत्तर प्रदेश, **इण्डियन जरनल आफ पब्लिक हेल्थ,** वा० २४, नं० ३.

पाठक, के० बी०, एण्ड पी० के०, मूर्थी १९८३. लेवल्स एण्ड ट्रेंड्स आफ मारटेलिटी इन सम सेलेक्टेड कण्ट्रीज आफ एशिया, इन श्री निवासन, के० मुकर्जी, एस० (एडिटेड), **डायनेमिक्स आफ पापुलेशन एण्ड फेमिली वेलफेयर,** १९८३, बाम्बे : हिमालय पब्लिशिंग हाउस २४६-२७७.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठक, के० बी० एण्ड पी० के० मूर्थी १९८५ सोशियो-इकोनामिक डिटरमिनेण्ट्स आफ फर्टिलिटी एण्ड मारटेलिटी डिक्लाइन इन इण्डिया, डेमोग्राफी इण्डिया, वा० १४, नं० १.

प्रकाशम्, सी० पी० १९८० इन्फैण्ट मारटेलिटी इन रिलेशन विद मदर्स रिप्रोडक्टिव हिस्ट्री, **इण्डियन जरनल आफ पब्लिक हेल्थ**, वा० २४, नं० ३.

सन्ध्या, एस०, १९८६ सोशियो-कल्चरल एण्ड इकोनामिक कोरिलेट्स आफ इन्फैण्ट मारटेलिटी : ए केस स्टडी आफ आन्ध्रप्रदेश, **डेमोग्राफी इण्डिया,** वा० १५, नं० १.

जकारिया, के० सी० एण्ड एस० पटेल १९८३ ट्रेण्ड्स एण्ड डिटरमिनेण्ट्स आफ इन्फैण्ट एण्ड चाइल्ड मारटेलिटी इन केरला, **जनसंख्या**, वा० १, नं० २.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामीण महिलाओं में सतत् शिक्षा की समस्या एवं संभावनाएं

मंजू शुक्ल

किसी भी देश के शैक्षिक एवं सामाजिक विकास को साथ-साथ देखा जा सकता है। महिलाओं के प्रति लोगों के दृष्टिकोण में जो बदलाव आया है उसके मूल में भी शिक्षा का प्रसार ही है। यही कारण है कि दहेज उन्मूलन और महिलाओं के अधिकारों की बात इतनी तेजी से उठाई जा रही है। इन परिवर्तनों के पीछे महिलाओं की बढ़ती शिक्षा और उनका आत्मनिर्भर होना है। शिक्षित महिलायें ही परिवार के समग्र-विकास की धुरी हैं। बच्चों के स्वस्थ, सम्पूर्ण विकास के लिये गृहस्वामिनी का शिक्षित होना अति आवश्यक है। आरम्भिक शिक्षा में माँ का सहयोग न मिल पाने के कारण बच्चों में हीन भावना विकसित हो जाती है, जो उनके आगे के विकास को भी प्रभावित करती है।

यह मान लेना कि शिक्षा केवल पुरुषों के लिये ही आवश्यक है या कि उच्च शिक्षा का लाभ केवल नौकरी पाने का माध्यम भर है उचित नहीं है। शिक्षित महिलायें बेहतर गृहणी और जननी सिद्ध होती हैं। विशेषतः ग्रामीण महिलाओं के शैक्षिक विकास में रीति-रिवाज और सामाजिक दृष्टिकोण बाधक हैं। लड़कियों को उच्च-शिक्षा न देने के पीछे पारिवारिक कारण ही प्रमुख हैं। साथ ही महिलाओं के समग्र विकास हेतु स्पष्ट अवधारणा, कार्य प्रणाली एवं संयोजन का भी अभाव रहा है। नई शिक्षा नीति में महिलाओं द्वारा समस्त विकास कार्यक्रमों में भागेदारी को प्रमुखता दी गयी है। अतः आवश्यक है कि ग्रामीण महिलाओं में उनके अधिकारों के प्रति चेतना आये तभी विकास कार्यक्रमों में इनके सक्रिय योगदान की अपेक्षा की जा सकती है। उत्तर प्रदेश में पुरुषों का साक्षरता प्रतिशत ३८.८ है जबकि महिलाओं की साक्षरता का प्रतिशत केवल १४.० है। इनमें भी अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की महिलाओं में साक्षरता की दर अत्यंत ही निम्न है। पिछड़ी जाति एवं मुस्लिम महिलाओं में साक्षरता का प्रतिशत और भी कम है।

डा० मंजू शुक्ल, शोध अधिकारी, साक्षरता निकेतन, लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामीण संदर्भ में निम्न वेतन भोगी एवं अदक्ष मजदूर महिलायें बहुत हैं। इसी प्रकार दस्तकारी के कार्यों में प्रखर परम्परा और योग्यता रखने के बावजूद उन्हें पूरा लाभ नहीं मिल पाता, इन्ही समस्याओं को ध्यान में रखते हुये आवश्यक है कि महिला शिक्षा एवं दक्षता-प्रशिक्षण पर विशेष बल दिया जाय। सुविधाओं का पूरा लाभ उठाने के लिये ग्रामीण महिलाओं का प्रबुद्ध होना अतिआवश्यक है। इसके लिये महिलाओं में शिक्षा के प्रसार की पहली आवश्यकता है। ग्रामीण महिलाओं की सतत् शिक्षा पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

सतत शिक्षा केन्द्र की अवधारणा एवं स्थापना

सरोजनी नगर ब्लाक, लखनऊ के ग्राम 'माती' में महिलाओं की माध्यमिक शिक्षा हेतु एक हाईस्कूल शिक्षा केन्द्र संचालित किया गया। यह ग्रामवासियों की मांग पर ही आधारित था। साक्षरता निकेतन द्वारा समग्र-ग्राम-विकास योजना के अन्तर्गत चुने गये, सरोजनी नगर ब्लाक के ४० ग्रामों में विकास कार्यक्रमों की योजना बनायी गयी। इस हेतु आयोजित 'विकास-गोष्ठी' में सतत् शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की आवश्यकता अनुभव की गयी। इस योजना की अवधारणा के पीछे यह उद्देश्य था कि इस प्रकार के केन्द्र उन ड्राप-आउट बालिकाओं के लिये उपयोगी सिद्ध होंगे जो सामाजिक, आर्थिक अथवा व्यक्तिगत कारणों से प्राइमरी स्तर तक शिक्षा ग्रहण करने के बाद माध्यमिक एवं उच्च स्तर की शिक्षा ग्रहण करने से वंचित रह जाती है।

यह निश्चित किया गया कि उन ग्रामों में जहाँ कम से कम २० ऐसी छात्रायें उपलब्ध हैं जो कक्षा ८ तक शिक्षा ग्रहण करने के बाद किन्हीं कारणों से आगे की शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रह गई हैं (हाई-स्कूल बोर्ड की परीक्षा हेतु) महिलाओं को प्रशिक्षित करने के लिये सतत् शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए। सतत् शिक्षा केन्द्रों द्वारा शिक्षित महिलायें व्यक्तिगत परीक्षार्थी के रूप में बोर्ड की परीक्षा में सम्मिलित हो सकेंगी।

शिक्षिकाओं का चयन

विद्यार्थियों की सफलता बहुत कुछ अध्यापिकाओ की कार्य कुशलता पर भी निर्भर है। अतः विद्यार्थियों के शैक्षिक स्तर एवं संख्या को ध्यान में रखते हुये ही शिक्षिकाओं की नियुक्ति की जानी चाहिये। सतत् शिक्षा केन्द्र की छात्राओं की शैक्षिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुये, यह निश्चित किया गया कि शिक्षिकाओं का कम से कम स्नातक होना अति आवश्यक है तथा शिक्षिकाओं की संख्या विभिन्न पाठ्य-विषयों को ध्यान में रखते हुये एक से अधिक भी रखी जानी चाहिये। साथ ही विद्यार्थियों की पाठ्य आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर विशेषज्ञों को भी बुलाया जा सकता है। चयनित अध्यापिकाओं के लिये पाँच-दिवसीय प्राथमिक प्रशिक्षण का भी प्राविधान रखा गया।

सतत् शिक्षा केन्द्र पूर्णतः प्रतिभागियों द्वारा प्राप्त फीस और निकेतन द्वारा दी गयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्थिक सहायता पर आधारित था अतः यह सुनिश्चित किया गया कि अध्यापिकाओं को एक निश्चित मानदेय ((Consolidated Pay) ही दिया जा सकेगा और इनकी नियुक्ति भी अस्थाई होगी। केन्द्र की मुख्य अध्यापिका अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त थी जिन्हें २७५/—रु० प्रति माह मानदेय दिया जाता रहा।

केन्द्र के सफल संचालन के लिये एक सलाहकार समिति का गठन किया गया जिसमें साक्षरता निकेतन के अधिकारियों के साथ ही डिस्ट्रिक्ट इन्सपेक्ट्रस ऑफ स्कूलस (महिला) वर्तमान ग्राम प्रधान 'माती' एवं ३ अभिभावकों को भी सम्मिलित किया गया। विभागीय बैठकों के साथ ही सलाहकार समिति की बैठकें भी होती रहीं, जिससे सम्बन्धित शासनाधिकारियों से तारतम्य बना रहे। समिति की बैठकों में–(१) विद्यार्थियों की प्रगति (२) पाठ्य-सामग्री वितरण (३) सहायक अध्यापिकाओं के चयन और केन्द्र संचालन से सम्बन्धित प्रश्नों एवं समस्याओं पर विचार किया जाता रहा। सलाहाकार समिति की बैंठक के आधार पर ही संस्कृत और सिलाई एवं गृहविज्ञान विषयों के लिये पार्ट-टाइम प्राध्यापिकाओं की नियुक्ति की गयी जिन्हें सप्ताह में कम से कम तीन घंटों के तीन सत्र पढ़ाना अनिवार्य था। पार्ट-टाइम प्राध्यापिकाओं को कार्य-दिवसों के आधार पर प्रति दिन १०/—रु० के हिसाब से मानदेय देने का प्रविधान रखा गया।

केन्द्र पर मुख्य अध्यापिका द्वारा मासिक, अर्धवार्षिक एवं वार्षिक परीक्षाएं ली जाती रहीं। सतत् मूल्यांकन एवं परीक्षाओं के आधार पर १३ विद्यार्थियों को बोर्ड परीक्षा १९८४-८५ में सम्मिलित कराया गया। यह सोचा गया कि विद्यार्थियों में रुचि एवं लगन बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि शिक्षा शुल्क के रूप में कुछ धन राशि ली जाती रहे, जिसे कक्षा की मरम्मत एवं व्यवस्था अथवा विशेषज्ञों को दिये जाने वाले मानदेय के रूप में खर्च किया जा सकता है। इस राशि से सहायक पाठ्य सामग्री की पूर्ति भी की जानी आपेक्षित थी। आवश्यकतानुसार समय-समय पर पाठ्य-सामग्री की पूर्ति निकेतन द्वारा भी की जाती रही। सतत् शिक्षा केन्द्र के विद्यार्थियों से, प्रति-प्रतिभागी ५/—रु० प्रतिमाह लिये गये इस राशि का उपयोग प्रमुखतः बोर्ड फीस की पूर्ति करने से किया गया।

केन्द्र का स्थान एवं समय

सतत् शिक्षा केन्द्र के लिये स्थान की व्यवस्था साक्षरता-निकेतन की ओर से 'माती' ग्राम में संचालित बालवाड़ी में किया जाना निश्चित हुआ परन्तु ग्रामवासियों के उत्साह एवं रुचि को देखते हुए ग्राम 'माती' के भूतपूर्व प्रधान श्री श्रीराम शुक्ल ने अपने घर में निःशुल्क स्थान उपलब्ध कराया। अनौपचारिक शिक्षा पद्धति में निहित विशेषताओं को ध्यान में रखते हुये यह निश्चित किया गया कि केन्द्र-संचालन के समय का निर्धारण विद्यार्थियों की सुविधा को ध्यान में रखते हुये ही किया जाना चाहिये। केन्द्र के समय का निर्धारण करते समय इस तथ्य की भी अवहेलना नहीं की जा सकती कि पढ़ने आने वाली महिलायें एवं बालिकाएं या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो स्वयं गृह स्वामिनी थीं एवं घर के कार्यों में हाथ बंटाती थीं अथवा किसी न किसी प्रकार के अर्थोपादक कार्यों में लगी हुयी थीं। इन विद्यार्थियों की आर्थिक-सामाजिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक था कि कम से कम खर्च में, कम से कम दूरी पर शिक्षा सुविधायें उपलब्ध की जावे।

सतत शिक्षा केन्द्र का समय प्रति दिन दो घंटे था परन्तु विद्यार्थियों की इच्छा और पाठ्यक्रम का ध्यान रखते हुए यह समय बढ़ाया भी जा सकता था। सतत् शिक्षा केन्द्र पर रविवार और प्रमुख त्योहारों को छोड़कर और कोई अवकाश देय नहीं था क्योंकि दो वर्ष के सीमित-समय में शैक्षिक-सामाजिक रूप से पिछड़ी ग्रामीण महिलाओं को परीक्षा में सम्मिलित होना था। ग्राम 'माती' स्थित इस केन्द्र का संचालन पूर्ण रूप से साक्षरता निकेतन द्वारा २ वर्षों के लिये आवंटित धनराशि (लगभग १०,०००/—रु०) एवं विद्यार्थियों से लिये गये शिक्षा शुल्क से किया गया।

सतत् शिक्षा केन्द्र के संचालन में ग्रामवासियों का निरंतर सहयोग लिया जाता रहा। केन्द्र आरम्भ करने से पहले योजना से सम्बद्ध अधिकारियों एवं शोध-अधिकारी द्वारा कई-बार ग्राम का सर्वेक्षण किया गया जिसमें केन्द्र स्थापना की सम्भावनाओं को जाना जा सके और ग्रामीण अभिभावकों का सहयोग मिलता रहे।

प्रारम्भ में इस केन्द्र पर २३ विद्यार्थियों ने नाम लिखवाये। सभी विद्यार्थियों ने एक से विषय चुने जो उनकी शैक्षिक सामाजिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुये उन्हें उचित लगे, जैसे हिन्दी, संस्कृत-गृह विज्ञान, इतिहास, समाज विज्ञान, सिलाई एवं नैतिक शिक्षा। सतत् शिक्षा केन्द्र की प्रतिभागी महिलाओं एवं बालिकाओं की आयु १५ वर्ष से ४० वर्ष के बीच थी। वास्तव में विभिन्न आयु वर्गों, आर्थिक सामाजिक परिस्थितियों एवं शैक्षिक स्तर से आयी इन महिलाओं को हाई स्कूल परीक्षा हेतु, अनौपचारिक रूप से तैयार करना एक नया प्रयोग ही था।

समस्यायें एवं सुझाव

बोर्ड परीक्षा १९८५ की हाईस्कूल परीक्षा में सम्लिलित १३ प्रतियोगियों में ५ विद्यार्थी सफल रहे। इसके लिये जिन परिस्थितियों एवं कारणों को प्रमुख माना जा सकता है। उनमें हैं: व्यवस्था एवं नियोजन में कमी। इस प्रकार की नवीन योजना हेतु पूर्व परिकल्पना का अभाव एवं विद्यार्थियों की शैक्षिक सामाजिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुये, उनकी तैयारी एवं शिक्षा सत्रों की कमी।

हाईस्कूल बोर्ड द्वारा प्राप्त अधिकांश विद्यार्थियों की अंक तालिका में गृह विज्ञान विषय में क्रियात्मक-परीक्षा के अंक सम्मिलित नहीं किये गये थे और उन्हें अनुपस्थित दिखाया गया था जबकि सभी १३ विद्यार्थी प्रयोगात्मक परीक्षा में सम्मिलित हुए थे। (संलग्नक्-१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार कुछ अंक तालिकाओं में छात्राओं द्वारा चयनित विषयों के स्थान पर किसी अन्य विषय में अंक दे दिये गये थे, जिन विषयों में छात्राओं ने परीक्षा नहीं दी थी। जैसे संस्कृत के स्थान पर अंग्रेजी भाषा में अथवा इतिहास के संस्थान पर नागरिकशास्त्र में।

सतत् निरीक्षण और छात्राओं से बातचीत के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सतत् शिक्षा केन्द्र की प्रतिभागी महिलायें एक अन्तराल के बाद औपचारिक शिक्षा की मुख्य धारा से जुड़ रही थीं अतः इनकी शैक्षिक पृष्ठभूमि को देखते हुये तैयारी के लिये कुछ अधिक समय, सुविधाओं एवं सत्रों की आवश्यकता थी जैसा कि योजना की पूर्व धारणा में निश्चित किया गया था कि छात्राओं को समय-समय पर विशेषज्ञों की सुविधा भी प्रदान की जाती रहेगी। परन्तु नियमित रूप से ऐसा करना सम्भव नहीं हो सका। यद्यपि बोर्ड परीक्षाओं से पहले साक्षरता निकेतन में ही छात्राओं के निवास, भोजन एवं प्रशिक्षण के लिये लगभग एक माह तक व्यवस्था कर दी गई थी। छात्राओं को परीक्षा हेतु आने-जाने की वाहन सुविधा भी साक्षरता-निकेतन द्वारा प्रदान की गई। इन सुविधाओं के लिये छात्राओं एवं अध्यापिकाओं ने मांग की थी। यदि इस प्रकार के शिविर और भी आयोजित किये जा सकते तो अवश्य ही छात्राओं की प्रगति पर अच्छा प्रभाव पड़ता। इस प्रकार की योजना अभी एक प्रयोगात्मक योजना ही थी अतः इसके नियोजन, व्यवस्था एवं संचालन में समय लगा। यही कारण रहा होगा कि सहायक शिक्षिकाओं की नियुक्ति केन्द्र के प्रारम्भ से ही नहीं की जा सकी। इसका एक प्रमुख कारण ग्राम में ही योग्य एवं प्रशिक्षित शिक्षिकाओं का न मिल पाना भी है। यदि सम्बन्धित ग्राम के बाहर से शिक्षिकाओं की नियुक्ति कर भी ली जावे तो इतने कम मानदेय में इनका निरन्तर सुलभ हो पाना सम्भव नहीं होता। परिस्थितियों के विश्लेषण, सर्वेक्षण एवं योजना से सम्बद्ध अधिकारियों से बातचीत के आधार पर कहना अनुचित न होगा कि यद्यपि बोर्ड परीक्षा का प्रस्तावित पाठ्यक्रम पूरा करवा दिया गया था और छात्रायें स्वयं भी शीघ्रातिशीघ्र हाई स्कूल पास कर लेना चाहती थीं, परन्तु छात्राओं की तैयारी एवं गम्भीरता में अवश्य ही कमी रही। उपस्थिति रजिस्टर के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि केन्द्र के प्रारम्भ में विद्यार्थियों ने अधिक उत्साह नहीं दिखाया। यद्यपि २३ छात्राओं ने नाम दर्ज करवाये थे परन्तु इनकी उपस्थिति बहुत नियमित नहीं रही। कुछ छात्राओं ने केन्द्र पर आना भी बन्द कर दिया, परन्तु जैसे-जैसे केन्द्र की प्रगति हुयी छात्राओं की उपस्थिति नियमित होती गयी। अतः कहा जा सकता है कि यदि प्रारम्भ में ही विद्यार्थियों ने गम्भीरता दिखाई होती तो परीक्षाफल और भी उत्साहजनक हो सकता था। सच तो यह है कि ग्रामीण महिलाओं में उच्च एवं माध्यमिक शिक्षा के प्रति उदासीनता का एक प्रमुख कारण परिवार अथवा अभिभावकों का नकारात्मक दृष्टिकोण एवं रुचि न लेना भी है। बालकों की शिक्षा के प्रति लोगों में चेतना आयी है परन्तु ग्रामीण बालिकायें यदि छोटी उम्र में स्कूल जाती भी हैं तो अधिक से अधिक प्राइमरी स्तर की शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त स्कूल जाना छोड़ देती हैं और घर के कार्यों में हाथ बंटाने लगती हैं। अधिकांश ग्रामीण अभिभावक अपने बच्चों का स्कूल में नाम लिखा देने भर से ही मानो अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। परन्तु उनके बच्चों की प्रगति कैसी है और उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या भूमिका है इसका उन्हें ज्ञान नहीं होता। पढ़ाई बीच में ही छोड़ देने के प्रमुख कारणों में, विशेष रूप से ग्रामीण बालिकाओं के संदर्भ में फेल हो जाना, स्कूल की ग्राम से दूरी और शिक्षा-शुल्क न दे पाना प्रमुख हैं।

उपरोक्त परिस्थितियों एवं समस्याओं को देखते हुए ग्रामीण बालिकाओं की उच्च माध्यमिक शिक्षा को और भी आर्कषक एवं सफल बनाने के लिये निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं :—

(१) प्राइमरी शिक्षा के सार्वभौमीकरण के साथ-साथ उच्च एवं माध्यमिक शिक्षा की सुविधा भी गांवों में उपलब्ध होनी चाहिये। इसके लिये विद्यालयों अथवा सतत् शिक्षा केन्द्रों की व्यवस्था की जा सकती है। साथ ही अध्यापिकाओं के लिये समुचित मानदेय का प्राविधान आवश्यक है जिससे योग्य शिक्षक भी इस ओर आर्कषित हो सकें।

(२) शैक्षिक आवश्यकताओं एवं स्तर को ध्यान में रखते हुये कुछ न कुछ योग्य-शिक्षण शुल्क का भी प्राविधान किया जा सकता है क्योंकि निःशुल्क शिक्षण व्यवस्था से छात्राओं पर पढ़ाई की ओर विशेष ध्यान देने और परिश्रम करने का उतना मनोवैज्ञानिक प्रभाव नहीं पड़ता और न ही अभिभावकों द्वारा उन पर पढ़ने के लिये कोई विशेष दबाव डाला जाता है।

(३) जहां तक सम्भव हो सके अनौपचारिक शिक्षा द्वारा पढ़कर आयी ग्रामीण छात्राओं के लिये विशेष शिक्षण सत्रों एवं विशेषज्ञों द्वारा प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए। इस व्यवस्था से जहां एक ओर ग्रामीण संदर्भ में उच्च माध्यमिक शिक्षा को आर्कषक और सुलभ बनाया जा सकेगा वहीं प्राईवेट-ट्यूशन के पढ़ते व्यवसाय को भी निरुत्साहित किया जा सकेगा।

(४) ग्रामीण महिलाओं के लिये माध्यमिक शिक्षा को अधिक सुचारू बनाने हेतु आवश्यक है कि शासन स्तर पर भी परीक्षाओं का नियोजन एवं व्यवस्था कारगर तथा सुव्यवस्थित रहे, तभी अनौपचारिक शिक्षा पद्धति से पढ़ी, व्यक्तिगत परीक्षार्थी (ग्रामीण) बालिकायें सफल हो सकेंगी।

(५) ग्रामों में अभी महिलाओं की शिक्षा के लिये उचित वातावरण तैयार नहीं हो पाता है। अधिकांशतः अनौपचारिक शिक्षा पद्धति से शिक्षा प्राप्त ग्रामीण विद्यार्थियों में इतनी शैक्षिक योग्यता नहीं होती। अतः परीक्षाओं में कुछ अंकों के अनुत्तीर्ण होने पर व्यक्तिगत परीक्षार्थियों पर गलत प्रभाव पड़ता है। कई बार विद्यार्थी यदि किन्हीं (एक या दो) विषयों में फेल होता है और उसे पुनः सभी विषयों में परीक्षा देनी हो तो विशेष रूप से महिलायें पढ़ाई बीच में ही छोड़ देती हैं अथवा हताश हो जाने से इनकी सफलता संदिग्ध रहती है। सतत् शिक्षा केन्द्र पर आने वाली पांच प्रतिशत छात्रायें ऐसी थी जो नवीं कक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाने पर पढ़ाई बीच में ही छोड़ चुकी थीं।

(६) ग्रामीण संदर्भ में प्राथमिक शिक्षा के पश्चात लड़के लड़कियों के लिये यदि अलग-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग पढ़ाई का प्राविधान हो तो महिलाओं को उच्च-शिक्षा प्राप्त करने में सुविधा रहेगी। इस हेतु स्वयंसेवी संस्थाओं का भी सहयोग लिया जा सकता है।

इस सतत्-शिक्षा केन्द्र ग्राम 'माती' की सबसे बड़ी उपयोगिता यही रही है कि ग्रामीण छात्राओं में चेतना आयी और शिक्षा के लिये उत्साह में वृद्धि हुई। जो छात्रायें १९८५ की बोर्ड परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गयी थीं वे १९८६ की बोर्ड परीक्षा में पुन: सम्मिलित हुई और सफल रही। सतत् शिक्षा केन्द्र ग्राम 'माती' के अध्ययन एवं अनुभव के आधार पर यह कहना अनुचित न होगा कि ग्रामीण महिलाओं के लिये माध्यमिक शिक्षा को अधिक गम्भीरता से लिया जाना आवश्यक है तभी विकास कार्यक्रमों एवं देश के उत्थान में इनके सक्रिय योगदान की अपेक्षा की जा सकती है। अत: शासन द्वारा इस प्रकार के सतत् शिक्षा केन्द्रों के लिये प्राविधान किया जाना चाहिये जिससे ग्रामीण महिलाओं को शिक्षा का लाभ अधिक सुगमता से मिल सके। शासन द्वारा सतत् शिक्षा हेतु प्राविधान होने पर इसके लिये उपयुक्त व्यवस्था हो सकेगी, साथ ही पाठ्य-विषयों एवं शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ी महिलाओं की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुये योग्य अध्यापिकाओं एवं विशेषज्ञों का लाभ भी छात्राओं को मिल सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय 111123 गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

अर्थशास्त्र एवं समाजशास्त्र—प्रो० डी० पी० मुखर्जी के चिंतन पर आधारित एक विश्लेषण

—नन्द लाल पांडेय

अर्थशास्त्र का संकुचित दृष्टिकोण

अर्थशास्त्र में विशेषीकरण की प्रवृत्ति है। इसी के परिणामस्वरूप वह अमूर्तता और एकांगीपन[१] की ओर बढ़ता गया है। प्रो० रॉबिन्स की अर्थशास्त्र की परिभाषा[२] इसका उदाहरण है। अर्थशास्त्र की परिभाषा में अर्थशास्त्र को मानव व्यवहारों से सम्बन्धित किया गया है जो अनेक वैकल्पिक प्रयोग वाले सीमित साधनों और असीमित मानव आवश्यकताओं के समायोजन से सम्बन्धित है। इस परिभाषा में मानव कल्याण के पक्ष पर जोर नहीं है[३] जो मार्शल की परिभाषा में था। इसी कारण रॉबिन्स की इस परिभाषा में आध्यात्मिकता का संकुचन माना गया है। (सरन—१९६५ : १२०७)

सामाजिक तथ्यों की जटिलता के कारण विज्ञानों में आदान-प्रदान की आवश्यकता है। प्रो० मुकर्जी ने इस आवश्यकता को प्रथम-विश्व युद्ध के बाद जर्मनी की मुद्रा स्फीति की समस्या का विश्लेषण करके स्पष्ट किया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि मौद्रिक नीति आर्थिक और मनोवैज्ञानिक दो स्तम्भों पर आधारित है।[४] इसमें मनोवैज्ञानिक पक्ष की उपेक्षा अनुचित है। बहु-आयामी समस्याओं के रूप में उन्होंने साम्राज्यवाद, प्रजातन्त्र, शिक्षा एवं नियोजन का उल्लेख किया है। इस दृष्टिकोण से आर्थिक समाजशास्त्र का भी महत्व है जो मध्यवर्ती सिद्धांतों पर आधारित है।

प्रतिस्थापित अर्थशास्त्र में सामाजिक तथ्य

ऐडम स्मिथ के चिन्तन में संतुलन प्रमुख अवधारणा है। असन्तुलन महत्वहीन माने गए हैं। आर्थिक व्यवस्था की स्थिरता को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने जनसंख्या की वृद्धि और

डा० नन्द लाल पांड़ेय, अध्यक्ष एवं वरिष्ठ प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग, साहू जैन स्नातकोत्तर कालेज, नजीबाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मजदूरी, बचत और लाभ, लाभ और प्रविधि, प्रविधि और श्रम विभाजन, श्रम विभाजन को बाजार के विस्तार से जोड़ा। ऐडम स्मिथ ने आर्थिक व्यवस्था की स्थिरता में उत्पादन और उपयोग के सम्बन्धों का महत्व स्पष्ट किया। उत्पादन में कार्य करने के कारण जो मजदूरी मिलती है उसी से व्यक्ति अपनी और अपने परिवार के सदस्यों की आवश्यकताएँ पूरी करता है। इसी कारण मजदूरी और जनसंख्या के बीच सम्बन्ध स्थापित होता है। ऐडम स्मिथ ने आर्थिक व्यवस्था के औचित्य के प्रश्न पर भी विचार किया है। वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य उनकी लागत से निश्चित होते हैं। उत्पादकों और उपभोक्ताओं में भी पूर्ण प्रतियोगिता होती है इसलिए कोई भी मूल्यों को प्रभावित नहीं कर पाता इससे भी पूर्ण प्रतियोगिता का नैतिक पक्ष स्पष्ट होता है।

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक वेल्थ ऑफ नेशन्स में एडम स्मिथ ने श्रम को धन का प्रमुख उत्पादक माना है। फिर भी वे मांग और पूर्ति के संतुलन के अधिक कायल रहे। व्यक्ति का हित ईश्वरीय इच्छा का भाग बता कर उन्होंने आर्थिक व्यवस्था को धार्मिक समर्थन दिया। संतुलन को स्वाभाविक (या प्राकृतिक) मानने के कारण वे उसे न केवल लाभप्रद बल्कि न्यायपूर्ण भी मानते थे।[५] उन्होंने मांग और पूर्ति पर आधारित संतुलन की अवधारणा द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि विनिमय से सभी पक्षों को लाभ होता है। इसी आधार पर व्यापार की वृद्धि और मुक्त विदेशी व्यापार भी लाभदायक सिद्ध किए गए। पर वास्तविकता में न तो सभी को लाभ होता है और न विदेशी व्यापार शोषण मुक्त होता है। वास्तविकता की व्याख्या के स्थान पर स्वीकृत विश्वासों को नैतिक समर्थन देने का प्रयत्न ऐडम स्मिथ ने किया। उन्होंने मशीनों को महत्व नहीं दिया। उनकी प्रमुख मान्यताएँ पूर्व औद्योगिक समाज से निकली थीं क्योंकि १७६० के पूर्व का ग्लासगो नगर (जहां स्मिथ ने अवलोकन किए थे) एक व्यावसायिक नगर था। श्रमविभाजन को अधिक उत्पादकता के कारण महत्वपूर्ण मानते थे। इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि जनसंख्या, श्रमविभाजन उपयोग तथा व्यवस्था के औचित्य आदि अवधारणाओं में मनोवैज्ञानिक तथा नैतिक पक्ष भी हैं जिन पर एडम स्मिथ कोई ध्यान नहीं देते। जे० एस० मिल के आर्थिक चिन्तन में भी सामाजिक तथ्यों को आर्थिक तथ्यों से अलग रखने का प्रयत्न किया गया है इसलिए उनके विचारों पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

जे० एस० मिल के विचार

जे० एस० मिल ने अर्थशास्त्र को समाजशास्त्र से पृथक किया। पृथकीकरण की इस प्रक्रिया का मुख्य आधार अमूर्तिकरण था (गाइड एण्ड रिस्ट ३९४)। इसी के परिणामस्वरूप अर्थशास्त्र केवल उन्हीं तथ्यों पर विचार करने लगा जो मनुष्य के सुख या कल्याण से सम्बन्धित थे। इस विचारधारा के परिणामस्वरूप अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र का अन्तर बढ़ता गया। उन्होंने यह विचार भी व्यक्त किया कि अर्थशास्त्र में नियमों की निश्चितता है लेकिन समाजशास्त्र केवल प्रवृत्तियों की ओर संकेत करता है, प्रत्यक्ष निष्कर्ष की ओर नहीं। (गाइड एण्ड रिस्ट १९६४ : ३९५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिल की विचारधारा में मनोवैज्ञानिक और मानवशास्त्री तत्वों का उल्लेख प्रो० मुकर्जी ने किया है। समूह मनोविज्ञान (एक प्रकार के मानवशास्त्र) के अभाव में अर्थशास्त्र के नियम सार्वभौमिकता से सम्पन्न दिखते हैं—अन्यथा उनकी मान्यता भी सीमित क्षेत्र से सम्बन्धित हैं। ऐतिहासिक समुदाय के विचारकों ने यही मत व्यक्त किया है।

प्रो० मुकर्जी ने यह भी स्पष्ट किया है कि अधिकतम लाभ के आकलन के आधार पर आर्थिक चुनाव किया जाता है। मूलरूप में यह भी एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। शुद्ध अर्थशास्त्र केवल संतुलन के बारे में निश्चित रूप से कह सकता है। उदाहरण के लिए माँग के बढ़ने से मूल्य बढ़ते हैं। इस प्रकार के नियम शुद्ध अर्थशास्त्र से सम्बन्धित हैं। किंतु मुक्त व्यापार निर्यात बढ़ाता है या मजदूरी घटने से रोजगार बढ़ता है, इस प्रकार के नियम शुद्ध अर्थशास्त्रीय नहीं हैं। क्योंकि पहले नियम औद्योगिक विकास की दशा तथा दूसरे में कम मूल्यों में अधिक माँग की मानसिकता स्वीकार की गई है। दोनों प्रकार के तथ्य शुद्ध आर्थिक तथ्य नहीं है। मुकर्जी ने यह भी स्पष्ट किया कि चुनाव के आर्थिक और सामाजिक पक्षों में से केवल आर्थिक पक्ष को महत्व देना व्यक्ति की स्वतंत्रता का परिसीमन है इसलिए इस प्रकार के चुनाव में समाजशास्त्रीय तत्व (विशिष्ट मनोवृत्ति) विनिमय के क्षेत्र में पहुंच जाते हैं।[6] मिल ने इन्हीं को मध्यवर्ती सिद्धान्त कहा है।

निश्चित नियमों के प्रतिस्थापना के प्रयासों ने अर्थशास्त्र को आर्थिक वितरण के प्रति भी उदासीन बना दिया है। अधिकांश अर्थशास्त्री केवल उत्पादन को ही अधिक महत्व देने लगे। मिल ने स्पष्ट किया है कि वितरण का प्रश्न वर्गों समुदायों की प्रवृति तथा राष्ट्रीय चरित्र जैसे मनोवैज्ञानिक तथा राजनैतिक विचारधाराओं से सम्बन्धित है (मार्शल, टी० एम० १९६४ : ७४)।

मिल व्यक्ति के हितों और स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक थे। उनके व्यक्तिगत हितों की धारणा संकुचित न होकर व्यापक अर्थ वाली थी। स्वार्थवादी संकीर्णता से मुक्त तथा पारार्थ-वादिता से संयुक्त उनका व्यक्तिवाद था। प्रति स्थापित अर्थशास्त्री चिन्तन में व्यक्तिवाद बहुत विकसित नहीं था इसीलिए यह भी कहा गया कि प्रतिस्थापित अर्थशास्त्र व्यक्ति का नहीं बल्कि भीड़ों का अध्ययन है। इससे यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मिल के व्यक्ति-वाद में मनोवैज्ञानिक और आर्थिक अवधारणाओं का मिश्रण है। इस प्रकार की परिकल्पना आर्थिक समाजशास्त्र के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान का समन्वय होता है।

डॉ० एडॉल्फ लॉवी (१९३५) का आर्थिक समाजशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। मध्यवर्ती सिद्धान्त[7] के रूप में वे एडम स्मिथ की समन्वय की अवधारणा को प्रस्तुत करते हैं। उनका विचार है कि यह अवधारणा जीवशास्त्र के होम्योस्टैटसिस से ली गई। नवीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिस्थितियों में सन्तुलन इस प्रक्रिया का मूल तत्व है। व्यक्ति के स्तर पर असन्तुलन की कमी बीमारी को जन्म देती है आगे चल कर दुर्खीम के विचारों में भी इस अवधारणा का प्रभाव दिखाई देता है।

जे० आर० कॉमन्स (१९२६) का विचार है कि समाज की यान्त्रिक अवधारणा व्यक्तियों की नियंत्रण शक्ति में विश्वास नहीं रखती। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि संस्थानात्मक अर्थशास्त्र कार्यकारी सिद्धान्तों (वर्किंगरूल्स) द्वारा व्यक्तियों द्वारा किए गए निर्णयों का सामाजिक संगठनों में महत्व स्पष्ट करता है (१९५१ : १२६-१२७)। इस प्रकार प्रतिस्थापित सम्प्रदाय व्यक्ति और समाज के सही सम्बन्धों को समझने में असफल रहा है।

प्रो० मुकर्जी मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद को नवीन मध्यवर्ती सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह सिद्धान्त भी भौतिकशास्त्र से उत्पन्न हुआ। वहीं से लेकर मार्क्स ने इसे इतिहास की व्याख्या का सिद्धान्त बनाया। उन्होंने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि आधुनिक समाजों का इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास है।

मार्क्सवाद में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक पक्षों को अलग करने की प्रवृत्ति नहीं है।[८] इस समन्वयात्मक अवधारणा के कारण प्रो० डी० पी० मुकर्जी मार्क्सवाद को महत्वपूर्ण मानते थे।

ऐतिहासिक भौतिकवाद भोजन, आवास, वस्त्र आदि आवश्यकताओं को महत्व देता है। ऐतिहासिक और पूर्व ऐतिहासिक दोनों प्रकार के संगठनों में इन आवश्यकताओं का महत्व रहा है। अंग्रेज विचारकों का मत है कि ऐतिहासिक भौतिकवाद गतिशील आधुनिक समाजों के अध्ययन के लिए पर्याप्त नहीं है। परन्तु प्रो० मुकर्जी ने मार्क्सवाद को तीव्र सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त के रूप में ही स्वीकार किया है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि भौतिकवाद एवं यान्त्रिकी को औद्योगिक समाजों के संगठन में महत्व देने का यह अर्थ नहीं है कि सामाजिक तथ्यों को प्राकृतिक, यान्त्रिक या भौतिक माना जाए। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि आवश्यकताओं से साधनों को अधिक महत्व दिया जाए। इसका अर्थ यही है कि मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं को परिवर्तन का महत्वपूर्ण कारक माना जाए।

कॉर्ल मार्क्स पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था को स्वचालित संतुलन प्राप्त करने वाली व्यवस्था के रूप में नहीं देखते (पारसन्स १९४९ : १०८३)। प्रतिस्थापित अर्थशास्त्रियों की इस अवधारणा के विरुद्ध वे पूँजीवाद को असमान शक्ति वाले वर्गों की अन्यायपूर्ण व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिसमें निरन्तर शोषण बढ़ने की प्रवृत्ति अस्थिरता और वर्ग संघर्ष लाती है। इस अवस्था में अधिकतम लाभ स्वाभाविक न होकर अस्तित्व की अनिवार्य दशा बन जाता है।

पूँजीवादी समाज अपने संगठन के नवीन सिद्धान्त भी बनाता है। पूर्ववर्ती समाजों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक पदों के कारण व्यक्तियों को धन मिलता था परन्तु पूँजीवाद में धन संचय के कारण प्रतिष्ठा मिलती है। पूँजीवाद पूर्ण प्रतियोगिता का समर्थक नहीं है। केवल संग बनाने (फ्री एसोसियेशन), वैयक्तिक सम्पत्ति और भारी यान्त्रीकरण को अनिवार्य मानता है। इन्हीं के परिणामस्वरूप एकाधिकार की संस्था बनती है और उसके संचालन का नियम है निरंतर बढ़ता हुआ लाभ (मार्क्स १९५१ : ३३१)। कीन्स ने भी स्पष्ट किया है (१९६४ : १००-१०६) कि पूंजीपति अपनी पूँजी का निरन्तर विस्तार चाहता है। प्रो० मुकर्जी ने स्पष्ट किया है कि मध्य सिद्धान्त के रूप में मार्क्सवाद प्रतिस्थापित अर्थशास्त्र की धारणाओं (पूर्ण प्रतियोगिता और सन्तुलन) को अस्वीकार करता है तथा उसके स्थान पर एकाधिकार को प्रतिस्थापित करता है।

आधुनिक अर्थशास्त्र पर न केवल मार्क्सवाद बल्कि प्रतिस्थापित अर्थशास्त्र की अवधारणाओं (संतुलन और केवल आर्थिक तथ्यों को महत्व देना) का भी प्रभाव है। इसे स्पष्ट रूप से समझने के लिए मार्शल जैसे अर्थशास्त्रियों के विचारों पर ध्यान देना आवश्यक है। रॉबिन्स भी अर्थशास्त्र को विशिष्ट प्रकार के मानव व्यवहारों का अध्ययन मानते हुए अर्थशास्त्र को सामाजिक तथ्यों से पृथक रखते हैं। इन प्रवृत्तियों को समझने के लिए मार्शल के विचारों पर ध्यान देना आवश्यक है।

एल्फ्रेड मार्शल के विचार

प्रो० मार्शल सामाजिक तथ्यों की जटिलता से परिचित थे। उन्होंने मानव कल्याण के भौतिक साधनों के अध्ययन पर जोर दिया। इससे यह भी संकेत मिलता है कि मानव कल्याण के अभौतिक साधन भी हो सकते हैं जिन पर अर्थशास्त्र ध्यान नहीं देता। प्रो० मुकर्जी ने उचित ही कहा है कि भौतिक और अभौतिक आवश्यकताओं के अन्तर पर आधुनिक अर्थशास्त्र जोर नहीं देता क्योंकि दोनों प्रकार की आवश्यकताएँ सीमित साधनों पर प्रभाव डालती हैं। अन्य अर्थशास्त्रियों की भांति वे भी इस मान्यता पर जोर देते हैं कि किसी वस्तु पर किया गया व्यय व्यक्ति की सुख सुविधा की सही माप नहीं है (मार्शल १९६२ : १२)। इस प्रकार का विश्लेषण अन्ततः धन के पुनर्वितरण की ओर ले जाता है। पैरेटो ने भी स्पष्ट किया है कि इस समस्या को आर्थिक सिद्धान्तों के आधार पर नहीं सुलझाया जा सकता।

(पारसन्स : १९४९ : २४२)

मेंगर ने अर्थशास्त्र पर यह आरोप लगाया था कि उसमें निश्चित नियमों की प्रतिस्थापना नहीं हुई है। इस बारे में मार्शल का यह उत्तर था कि यह मानना ठीक नहीं है कि मानव अपने आर्थिक हितों के अतिरिक्त किन्हीं अन्य प्रेरकों से प्रभावित नहीं होते (गाइड तथा रिस्ट १९६४ : ४००)। पद्धति के बारे में उनका उदार दृष्टिकोण था। उनका विश्वास था अर्थशास्त्र को सभी प्राविधियों का प्रयोग करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्श व्यक्ति की कल्पना में मनोवैज्ञानिक पक्ष स्पष्ट हुआ है। उनका आदर्श व्यक्ति (उद्योगपति) ऐसा आर्थिक मनुष्य है जो तार्किक है, बचत करता है, और उद्यमी है। जब कि वास्तविकता में अपव्यय करने वाले मनुष्यों को भी उन्होंने देखा था। अधिक मजदूरी के परिणामस्वरूप पारम्परिक मनुष्य कम काम और अधिक पारस्परिक जीवन का चुनाव कर सकते हैं परन्तु आधुनिक मनुष्य अधिक परिश्रम करेंगे और अधिक समय तक कार्य करने को प्रेरित होंगे। उन्होंने चरित्र और नैतिकता को उद्योग के विकास के लिए महत्वपूर्ण माना है। लेबलन के सिद्धांत में श्रम करने वाले वर्ग (इंजीनियर और टेक्नीशियन) को लाभ में खर्च रखने वाले तथा उत्पादन में कमी करने वाले व्यापारी वर्ग (जिनमें उपभोग की प्रवृति अधिक है) की अवधारणाओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है (लेबलन १९५८ : ४३८-४३९)। इन अवधारणाओं के मनोवैज्ञानिक पक्ष विचारणीय हैं। मार्शल के विचारों में मनोवैज्ञानिक तत्वों का उल्लेख है लेकिन जैसा कि डॉ० एडाल्फ़ लॉवी ने स्पष्ट किया है कि वे इन तथ्यों पर ध्यान देकर सामान्य सिद्धान्त नहीं बनाते, इसका कारण उनकी अर्थशास्त्र में प्रतिबद्धता थी।[९]

मिल की भांति मार्शल भी व्यक्ति के हितों के समर्थक थे। राज्य के अधिकार क्षेत्र में वृद्धि तथा समाजवाद की आलोचना भी उन्होंने की। व्यक्ति कल्याण को ध्यान में रखते हुए राज्य के अधिकार क्षेत्र के विस्तार का उन्होंने विरोध किया। संक्षेप में आर्थिक व्यक्ति, पूर्ण प्रतियोगिता, मांग और पूर्ति के सन्तुलन की अवधारणाओं को महत्व देने के कारण मार्शल को प्रतिस्थापित परम्परा के अधिक निकट माना जाता है। उनका यह मत भी उल्लेखनीय है कि सामाजिक समन्वय की आवश्यकता है तो परन्तु उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता[१०]। अर्थ-शास्त्र के क्षेत्र को सीमित रखने के पीछे आर्थिक सिद्धान्तों की स्पष्टता और निश्चितता की ही धारणाएँ थीं। प्रो० मुकर्जी ने इन अवधारणाओं पर विचार किया और यह स्पष्ट किया कि यह निश्चितता अमूर्तिकरण के ऊँचे स्तर और केवल एक ही प्रकार के कारकों (आर्थिक) को स्वीकार करने के कारण है।

शुमपीटर के विचार

व्यापारिक चक्रों की व्याख्या में शुमपीटर मार्क्स के विचारों का अनुसरण करते हैं। असमान आर्थिक शक्ति वाले वर्गों, मशीनों, मुक्त सम्पर्क और लाभ के तत्वों को अपनाते हुए वे अपनी व्याख्या को आगे बढ़ाते हैं। उनकी व्याख्या में नवीनता लाने वाले व्यक्तियों का विशेष महत्व है। ये व्यक्ति मशीनों, उत्पादन विधियों या वस्तुओं में नवीनता लाते हैं। इस विश्लेषण से सामवर्ट भी सहमत हैं (सामवर्ट-कैमि २ बिज्म—पृ० १९७)। साख प्रदान करने वाली बैंकिंग संस्थाओं का भी महत्व स्पष्ट किया गया है। राज्य अपनी व्याज की नीति द्वारा पूँजीनिवेश को प्रभावित करता है। आर्थिक व्यवस्था के स्वस्थ होते ही ब्याज की दर बढ़ा दी जाती है। आर्थिक उत्थान की प्रक्रिया में मशीनों का विशेष महत्व है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाभ की प्रवृति के बारे में शुमपीटर मार्क्स से सहमत नहीं हैं। मार्क्स ने निरन्तर लाभ की बढ़ती हुई प्रवृत्ति का उल्लेख किया था। शुमपीटर का विचार है कि लाभ की दर घटती जा रही है तथा समाजवाद में शून्य हो जाएगी। शुमपीटर मार्क्स के शोषण के सिद्धान्त से भी सहमत नहीं थे (१९६५ : ९०)। उनके अनुसार शोषण मानवी दुखों को व्यक्त करने वाली (हाई साउंडिंग फ्रेज) अवधारणा है। अधिक समय तक लोग मार्क्स के इस योगदान के प्रतिऋणी नहीं रहेंगे। शोषण मुक्ति के प्रयत्नों के कारण शुमपीटर मार्क्स को एक वैज्ञानिक न मान कर मसीहा मानते हैं (१९६१ : ३)।

आर्थिक समाजशास्त्र के विकास के दृष्टिकोण से मध्य सिद्धान्तों का विशेष महत्व है। इस प्रकार के सिद्धान्तों में संदृष्टि (पर्सपेक्टिव) तथा कार्य विधियों पर ध्यान दिया जाता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद में मानवीय इच्छाओं को महत्व दिया गया है जिससे संचय की प्रवृति सम्बन्धित है। शुमपीटर के अनुसार एकाधिकार के मध्य सिद्धान्त में वैयक्तिक सम्पत्ति की संस्था और संचय की प्रवृत्तियों का महत्व है। एकाधिकार को सार्वजनिक हितों के रूप में उन सामाजिक हितों की व्याख्या कानून में की गई है जो व्यक्तियों के व्यवहारों का नियंत्रण सम्पूर्ण समाज की भलाई के लिए करते हैं। इस प्रकार कानून के निर्माण में समाज का पक्ष स्पष्ट होता है। इस प्रकार की व्याख्या से आर्थिक व्यवहारों में कानूनी आदर्शों का महत्व भी स्पष्ट होता है। इस प्रकार की व्याख्या मैक्स वेबर ने भी की थी। उन्होंने आर्थिक व्यवहारों को शक्ति के शान्तिपूर्ण प्रयोग तक सीमित किया था। इस प्रकार का विभाजन आर्थिक और राजनैतिक क्रियाओं के बीच कृत्रिम विभाजन कर सकता है परन्तु वास्तविकता में शक्तिशाली वर्ग समाज की कानूनी मान्यताओं को अपने पक्ष में बना लेता है। वेबर ने भी स्पष्ट किया है कि सामन्तवाद की तुलना में पूँजीवाद में अधिक शोषण है। उन्होंने आर्थिक विकास को धर्म से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। (पारसन्स १९४९ : ५०४)।

आर्थिक समाजशास्त्र के विकास के दृष्टिकोण से प्रो० मुकर्जी ने विभिन्न आर्थिक सम्प्रदायों की स्थिति का भी मूल्यांकन किया है, जो इस प्रकार है। (१) प्रतिस्थापित अर्थशास्त्री और उनकी परम्परा के विचारक आज भी यह मानते हैं कि संतुलन ही आदर्श अवस्था है। सामाजिक तथ्यों ने आर्थिक संतुलन को कठिन बनाया है। (२) ऐतिहासिक सम्प्रदाय का विरोध करने वाले विचारक वर्तमान समाज के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करते हैं। परन्तु सामान्य सैद्धान्तिक नियमों के निर्माण का विरोध करते हैं। यह मत सुधार करना तो दूर सामान्य सिद्धान्तों का अस्तित्व ही अस्वीकार करता है। (३) शुद्ध सिद्धान्तवादी वयक्तिक संतुलन की समस्याओं से ही उलझे रहते हैं तार्किक संगति के अभाव में तथा अमूर्तिकरण की प्रवृत्ति के कारण आर्थिक व्यवस्था का संतुलन केवल कल्पना (क्लासिकल यूरोपिया) मात्र रह जाता है और वास्तविकता में दिखाई देते हैं व्यावसायिक चक्र। प्रो० मुकर्जी समाजवादी और पूंजीवादी व्यवस्थाओं की तुलना द्वारा यह स्पष्ट करते हैं कि मुक्त संगठन असमान वितरण, वैयक्तिक सम्पत्ति तथा लाभ की प्रेरणाएं पूँजीवाद को तीव्र परिवर्तन वाली व्यवस्था का रूप देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्थिक समाजशास्त्र के विकास में अर्थशास्त्रियों द्वारा बाधाएं खड़ी की जाती रही हैं। उदाहरण के लिए मार्शल ने आर्थिक विकास में आदतों जैसे मनोवैज्ञानिक तथ्यों को महत्वपूर्ण माना परन्तु उनके महत्व का विश्लेषण नहीं किया। इतना ही नहीं मनोवैज्ञानिक तथ्यों को आर्थिक विकास में महत्व देने के कारण मैक्स वेबर की आलोचना की गई।

(ब्लाउ १९६२ : ६८१)

सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन में विचारधाराओं और संस्थाओं का महत्व है। इस बारे में मैक्स वेबर के विचार सर्वविदित हैं। प्रो० मुकर्जी ने उदारवादी विचारधारा के अंशदान का भी उल्लेख किया है। उदारवाद ने मनुष्य की दासता का विरोध किया था। (गाइड तथा रिस्ट १८६४ : ३३१) बाद में मनुष्यों के संगठनों ने सुरक्षा बढ़ाने के लिए नियम भी बनाए। संस्थात्मक अर्थशास्त्र श्रम संगठनों और नियमों पर विचार करता है। (कामन्स : १९५१ : ६८)। इस व्याख्या में कानूनी आदर्श भी महत्वपूर्ण होते हैं। कामन्स ने यह स्पष्ट किया कि प्रक्रिया को अपनाते हुए वे भी प्रतिस्थापित विचारधारा में फिसल जाते हैं। प्रो० मुकर्जी ने शुमपीटर का उदाहरण दिया है जिन्होंने मशीनों का अध्ययन किया परन्तु किसी ऐतिहासिक युग के विचारक सार्वभौमिक अवधारणाओं और वैयक्तिक तथ्य के बीच की अवधारणाओं को स्वीकार नहीं करते इसलिए मध्य सिद्धान्तों का विकास करने में असफल रहते हैं। (४) मार्शल जैसे अर्थशास्त्री प्रतिस्थापित अध्ययन विधि के कायल हैं। वे अमूर्तिकरण का अधिक प्रयोग नहीं करते। इस सम्प्रदाय के अर्थशास्त्री वैयवितक संतुलन का तर्कपूर्ण विवेचन करते हैं। प्रो० मुकर्जी इन्हें पूर्व कैप्प्रीनीशियन नक्षत्र वैज्ञानिक मानते हैं। (५) मार्क्सवादी परम्परा से अधिक आशा की जा सकती है विक्सेल, ओपेन हीमर (१९६५), क्लार्क तथा शुमपीटर (१९६५) के अध्ययनों की ओर प्रो० मुकर्जी इशारा करते हैं। प्रविधि, वितरण, अमूर्तिकरण और ऐतिहासिकता के कारण इस सम्प्रदाय के विचारों का अधिक महत्व है।

भूमि स्वामित्व का अध्ययन

भारतीय इतिहास के अध्ययन में मार्क्स उन परिस्थितियों का अध्ययन करना चाहते थे जिनमें भूमि व्यवस्था से सम्बन्धित कानून बने थे। (१० A) प्रो० मुकर्जी ने भी स्पष्ट किया है कि मुस्लिम शासन काल तक इन नियमों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। अंग्रेजों के समय में भूमि से सम्बन्धित नये हित उत्पन्न हुए (१९४८ : २४)। प्रो० मुकर्जी के इन विचारों का प्रभाव प्रो० पी० सी० जोशी के भूमि सम्बन्धी अध्ययन में देखा जा सकता है।

आर्थिक समाजशास्त्र की परिभाषा तथा विषयवस्तु

एडॉल्फ़ लावी के अनुसार आर्थिक समाजशास्त्र कृषि और औद्योगिक प्रविधियों का अध्ययन है जो सामाजिक गतिशीलता बढ़ाती है। सरकार एवं परिवार में होने वाले परिवर्तन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी महत्वपूर्ण हैं। इस विश्लेषण से आर्थिक और सामाजिक शक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट होते हैं। सामाजिक प्रक्रियाओं के अध्ययन को आर्थिक समाजशास्त्र व्यापक आधार देता है। प्रो० मुकर्जी के अनुसार आर्थिक समाजशास्त्र आर्थिक व्याख्या को हटाना नहीं चाहता बल्कि उन दशाओं पर भी विचार करता है जिनमें इनकी संस्थापना हुई थी।

मार्कव्लाड (१९६२ : ६८१) ने भी आर्थिक समाज शास्त्र की परिभाषा की है। उनके अनुसार आर्थिक समाजशास्त्र इस प्रश्न पर विचार करता है कि लोगों के व्यवहार निश्चित प्रकार के क्यों होते हैं? इसलिए आर्थिक समाजशास्त्र उन संस्थाओं पर विचार करता है। इस विषय में सरकार, बैंक भूस्वामित्व, उत्तराधिकार सम्बन्धी नियम और अनुबन्धों पर विचार किया जाता है।

संस्थात्मक अर्थशास्त्र (११ A) पर उनका आरोप है कि इस प्रकार की व्याख्याएँ आर्थिक विश्लेषण को हटाना चाहती हैं। पैरेटो की भांति प्रो० मुकर्जी भी इसका विरोध करते हैं तथा आर्थिक समाज शास्त्र को समन्वयात्मकता प्रदान करते हैं। आर्थिक समाजशास्त्र के दृष्टिकोण से पारसन्स के क्रिया सम्बन्धी सिद्धान्त का भी महत्व है। इस बारे में ऐच्छिक अवधारणा पर पारसन्स द्वारा जोर दिया गया है, प्रो० मुकर्जी उससे सहमत नहीं है (सक्सेना १९६२ : २१)। उनका मत है कि पश्चिमी समाजों के लिए यह व्याख्या उपयुक्त है लेकिन भारतीय समाज व्यक्ति को स्वेच्छाचार की अनुमति नहीं देता बल्कि धार्मिक परम्पराओं के परिपालन का आग्रह करता है (मुकर्जी : १९५५ : ८०)। उन्होंने इस तथ्य को भी स्वीकार किया है कि सामाजिक विकास के परिणाम स्वरूप परम्पराएं अस्त-व्यस्त हो गई हैं। परन्तु भारतीय अर्थशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों को परम्पराओं का अध्ययन करना चाहिये।

शुष्क अमूर्तता, तथ्य प्रधान अध्ययनों की अर्थहीनता और विज्ञानों की पृथकता की प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए समाज विज्ञानों का संश्लेशण आवश्यक है। संश्लेशण से सम्बन्धित मुख्य समस्याएँ इस प्रकार हैं। (१) मूल अवधारणाओं की खोज (२) तर्क एवं पद्धति शास्त्र (३) अंतः सम्बन्धों की व्याख्या (४) दार्शनिक दृष्टिकोण (सक्सेना १९६१ : २०) आर्थिक समाजशास्त्र की जो रूप रेखा प्रस्तुत की गई है वह पद्धति शास्त्रीय मानदण्डों के अनुरूप है। आर्थिक प्रवृत्तियाँ (मशीनीकरण और तार्किकता) सामाजिक संस्थाएँ (पूँजीवाद और समाजवाद) सामाजिक प्रवृत्तियां (धार्मिक विचार, लाभ या एकाधिकार का नियंत्रण आर्थिक विकास) एवं आर्थिक और सामाजिक संगठन के अंतः सम्बन्ध महत्वपूर्ण हैं। ऐतिहासिक भौतिकवाद, प्रतियोगिता, प्राद्योगिकी, पूर्ण प्रतियोगिता तथा अभाव मध्यवर्ती सिद्धान्त है। विश्लेषण और संश्लेषण के कार्य में ऐतिहासिकता और दार्शनिकता का महत्व स्पष्ट होता है।

विषय की कृत्रिम सीमाएं (अर्थशास्त्र के विवेचन का उदाहरण) विषय के निहित हित से ऊपर उठकर अन्य बिज्ञानों के विश्लेषण से महत्वपूर्ण तथ्य उपलब्ध होते हैं। सैद्धान्तिक पक्ष की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्बलता से भी समन्वय के कार्य में बाधा पड़ती है। इतिहास में दार्शनिक दृष्टिकोण अपना कर भी व्यापक अन्तर्दृष्टि मिलती है। इसीलिए प्रो० मुकर्जी इतिहास को दार्शनिक बनाने का सुझाव देते हैं। मानवशास्त्र तथा समाजशास्त्र में तथ्य प्रधान अध्ययनों की भी आलोचना उन्होंने की तथा यह विचार व्यक्त किया कि तथ्य प्रधान अध्ययनों के इस जंगल में जीवन के भारतीय मूल्यों को खोज पाना सम्भव नहीं है।

प्रो० मुकर्जी के अनुसार आर्थिक समाजशास्त्र आर्थिक व्यवस्था की संस्थाओं का स्थानीय और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में अध्ययन है। आर्थिक समाजशास्त्र उन सामाजिक प्रभावों का भी अध्ययन करता है जो आर्थिक व्यवहारों को प्रभावित करते हैं। विज्ञापन से प्रभावित होने वाली आवश्यकताएँ, कार्य की प्रेरणाएँ, सट्टा बाजार कर नीति और व्यावहारिक अर्थशास्त्र की सभी समस्याएँ इसकी विषय वस्तु हैं।

निष्कर्ष

कोम्ब ने समाजशास्त्र[१२] को व्यापक रूप प्रदान किया था। अर्थशास्त्र उसकी शाखा मात्र था। नाइज ने भी इसी मत का समर्थन किया। श्मोलर[१३] का भी विचार है कि अर्थशास्त्र को सामाजिक तथ्य के सभी पक्षों की व्याख्या का प्रयत्न करना चाहिये। बेवर, वेवलन, पैरेटो, पारसन्स के प्रयत्न भी विचारणीय हैं।

आर्थिक समाजशास्त्र की अवधारणा प्रो० मुकर्जी की मुख्य विचारधारा के अनुरूप है। १९२४ और १९३२ के अध्ययनों में उन्होंने व्यक्तित्व[१४] की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तथा समायोजन के पक्ष पर विचार किया था (मदान १९७७ सिंह १९६७)। १९५८ में भी उन्होंने संस्थाओं[१५] की सामाजिक भूमिका को स्पष्ट किया। आर्थिक समाजशास्त्र के मूल विचार इन्हीं अवधारणाओं के अनुसार हैं।

लेख का प्रारूप उ० प्र० समाजशास्त्र सम्मेलन के आठवें (१९८५) वार्षिक सम्मेलन (आगरा) में प्रस्तुत किया गया था।

टिप्पणियाँ

१. द आफिस आफ़ ए काम्प्रेहेन्सिव सोशल साइंस ट्रान्सेंडिंग द प्रिवेलिग कम्पार्टमेन्टलाइजेशन आफ सोशल साइंसेज वाज कंसीव्ड टू बी द डेवलपमेंट आफ इंटीग्रेटेड थ्रू मेनीफेस्ट परसेनिलटी—सरन—१९६२ : १६७.

२. साइंस डाइवोर्स्ड फ्राम मैन इन सोसाइटी गोज इंटू द हैण्डस् आफ वेस्टेड इंटरेस्ट डी० पी० मुकर्जी (१९४६ : १०-११३,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. प्योर इकानामिक्स इज द चीफ काज आफ माडर्न वार—१९४६ : ६.

३ए. इरविंग फिशर का मैट्रिक सिद्धांत भी आइकारों की मानसिकता को महत्व देता है। (फिरार : १९३५)।

४. इन एट्टीन सेंचुअरी एनीथिंग नेचुरल आर स्पान्टेनियस वाज इमेडिएटली कोटेड गुड एण्ड टर्म्स नेचुरल, जस्ट, जस्ट एण्ड एडवांटेजियस वर आफेन यूज्ड सिनानिमस। स्मिथ डिड नाट इस्केप द कनफ्यूजन आफ आइडियाज—गाइड तथा रिस्ट १९६४।

५. जे० एस० मिल एप्लाइड द कानसेप्शन आफ मिडिल प्रिंसीपिल्स टू सच सोशियालॉजिकल एलीमेंटस् विच कांस्टीट्यूट यूनीफार्मटीज आफ कोइग्जिस्टेंस बिट्वीन द स्टेट्स आफ वैरियस ओरल फिनोमिना बिकाज़ नाट एवरी वैराइटी आफ काम्बीनेशन आफ दीज जनरल फैक्ट्स इज पासिविल बट ओनली सर्टेन काम्बीनेशन।

६. सोशियालाजिकल मिडिल प्रिंसपिल्स कनेक्ट द इकानॉमिक विद द सोशल प्रोसेस एडाल्फ लावी-इकानामिक्स एण्ड सोशियालाजी (१९६८ : ५८) मर्टन द्वारा उद्धृत।

७. मार्क्सिज्म इज ए होल ह्यूमन साइंस। इट डज नाट सेपरेट इकानॉमिक्स फ्राम पोलिटिकल, सोसियालोजी, हिस्ट्री इट्सेक्ट्रा। टू रिकलेक्ट द अमटीन साइंस इज ए वर्दी ह्यूमन एफर्ट—पी० सी० जोशी १९८३ : १।

८. मार्शल एनटायरली डिसक्लेम्ड एनी अटेम्पट् टू डेवलप ए जनरल सोशल थ्योरी—पारसन्स—१९४९ : १७०-१७१।

९. एयूनीफाइड सोशल साइंस हाऊएवर डिजाइरेबिल इज अनअटेनेबिल—मार्शल—१९६२ : ६३६.

१०. नोट्स आन इंडियन हिस्ट्री (N.D.) भूमिका पृ० ९.

११. इन इस्टीट्यूशनल फ्रेम वर्क आफ इंडियन एग्रीकल्चर लिटिल आर नन आफ द बेनिफिट्स आफ देयर एक्सट्रा एग्जजर्नस वुड एक्रू टू देमसेलव्ज। ऐनी फ्रेश गेन्स वर लाइकली टू वी टेकेन अप फ्राम देम वाइ द लैण्ड लाक, द मनी लेंडर मर्चेन्ट आर सम प्रेटी लोकल आफिशल—जोशी पी० सी० १९७६ : २३.

११ए. इंस्टीट्यूशनल इकानामिक्स इन इट्स अमेरिकन वेराइटी वाज नाट मेंट टु काम्पलीमेंट इकानामिक एनालिसिज ऐज इट हैड आलवेज वीन अंडरस्टुड बट टु रिप्लेस इट—मार्क ब्लाड १९६२ : ६८१.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२. कोम्ब विश्ड टू फाउंड सोशियालाजी आफ विच पोलिटिकल इकानॉमी वाज सिम्पली ए ब्रांच। हिस्टारिकल स्कूल इस्पेशली नाइज रिगडेड इकानामिक्स इन सेम स्प्रिरिट–गाइड तथा रिस्ट १९७६ : ४०७.

१३. श्मोलर होल्ड द व्यू दैट वी कैन होप टु बिल्ड अप एन इकानामिक थ्योरी दैट शैल टेक फुल एकाउण्ट आफ द कामप्लेक्सिटीज आफ इकानामिक फिनामिनन। वही पृ० ३९३.

१४. इन सोशल प्रासेज परसनालिटी फाइंडस वाइडेस्ट स्कोप फार एडजेस्टमेंट आफ इंडीविजूअल विल थ्रू वालेंटरिटिटज कोआपरेशन विद कम्यूनिटी आर गाइडेड वाइ ट्रेडीशन, द लेटर वींग ट्रीटेड एज ए सेपरेट मीडियम फार द डेवलपमेंट आफ परसानालिटी—सिंह योगेन्द्र—१९६७ पृ० २३-२४।

१५. लिविंग इन ग्रूप्स थ्रू स्टेजेस आफ ग्रोथ, अंटिल वन इज सो सोशियलाईज्ड दैट फ्रीडम बिल हैव बिकम कोटरमिनस विद एजेन्सीज एण्ड इंस्टीट्यूशन्स इंटू एजेन्सीज फाक ग्रेम डाइवसिंटीज—१९५८ : २३५।

संदर्भ-साहित्य

कीन्स, जे० एम० (१९६५) जनरल थ्योरी ऑफ़ इमप्लॉयमेंट, इन्टरेस्ट एण्ड मनी मैकमिलन एण्ड कम्पनी।

कॉमन्स, जे० आर० (१९२६) लीगल फ़ाउन्डेशन्स ऑफ कैपिटलिज्म-मैकमिलन एण्ड कम्पनी।

(१९३४) इन्स्टीय्यूशनल इकॉनॉमिक्स।

(१९५१) इकनॉमिक्स ऑफ कलेक्टिव एक्शन मैकमिलन एण्ड कम्पनी।

गाइड एंड रिस्ट (१९६४) ए हिस्ट्री ऑफ़ इकनॉमिक्स डॉक्ट्रीन्स जार्जहरय एंड कम्पनी लन्दन।

जोशी, पी० सी० (१९६२) लैण्ड रिफ़ार्मस इन इण्डिया।

जोशी, पी० सी० (१९८३) माक्सिज्म एण्ड सोशल चेज इन इंडिया—छठा उत्तर प्रदेश समाज शास्त्र सम्मेलन, देहरादून।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार्सन्स, टॉलकॉट (१९४९) स्ट्रक्चर ऑफ़ सोशल एक्शन फ्री प्रेस इलीन्वायस ।

(१९६८) स्ट्रक्चर ऑफ़ सोशल एक्शन पेपर बैक संस्करण ।

मार्क्स, कॉर्ल (१९५१) "सेलेक्टेड वर्क्स" खण्ड १ फॉरेन लैंग्वेज पब्लिशिंग हाउस मास्को ।

(n. d.) नोट्स ऑन इण्डियन हिस्ट्री ।

मर्टन, रॉबर्ट के० (१९६२) सोशल थियरी एंड सोशल स्ट्रक्चर फ्री प्रेस इलीन्वायस ।

मदान, टी० एन० (१९७७) ट्रेडीशन एंड मॉडर्निटी इन द सोशियोलॉजी ऑफ़ डी० पी० मुकर्जी "सोशियोलॉजिकल बुलेटिन" खण्ड २६ अंक २ ।

मुकर्जी, डी० पी० (१९३२) बेसिक कॉन्सेप्टस् ऑफ सोशियोलॉजी कीगन पाल ट्रेंथ ट्रूबनर एण्ड कम्पनी लंदन ।

(१९४६) "व्यूज़ एंड काउन्टर व्यूज़" युनिवर्सल पब्लिशिंग हाउस लखनऊ ।

(१९४८) "मॉडर्न इण्डियन कल्चर" हिन्द किताब, बम्बई ।

(१९५५ए) "समाजशास्त्र का भारतीय परिप्रेक्ष्य" सामाजिकी १९६५ संख्या १ ।

(१९२४) परसानॉलिटी एण्ड सोशल साइंस द बुक कम्पनी कलकत्ता ।

(१९५५) "इण्डियन सोशियोलॉजी एंड ट्रेडीशन्स" सोशियोलॉजी, सोशल रिसर्च एंड सोशल प्रॉब्लम्स् इन इण्डिया" सम्पादक आर० एन० सक्सेना एशिया पब्लिशिंग हाउस बम्बई १९६१ ।

(१९५८) "डाइवर्सिटीज़" पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस दिल्ली ।

मिल, जे० एस० (१९६५) "ए सिस्टम ऑफ़ लॉजिक" लॉगमैन्स ग्रीन एंड कम्पनी लन्दन ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्शल, एल्फ्रेड (१९६२) प्रिन्सिपिल्स ऑफ़ इकनॉमिक्स, मैकमिलन एण्ड कम्पनी लंदन।

मार्शल टी० एच० (१९६४) "फ्रीडम ऐज़ ए फ़ैक्टर इन सोशल डेवलपमेंट" सोशल एंड इक्नॉमिक चेंन्ज इन इण्डिया एडिटर बी० सिंह तथा वी० बी० सिंह इलाइड पब्लिशर्स बॉम्बे।

फ़िशर, इरविंग (१९३५) "मनी" अडेल्फ़ी कम्पनी न्यूयॉर्क।

ब्लाड, मार्क (१९६२) "इकनॉमिक थियरी इन रिट्रॉसपेक्ट" हीन मैन एंड एजुकेशनल बुक्स लन्दन।

वेबलन, थर्सटीन (१९५८) "वेबलन्" सम्पादक मैक्सलर्नर विकलिंग प्रेस।

बॉर्न्स, हेरी ऐलमर (१९६५) हिस्ट्री ऑफ़ सोशियोलॉजी शिकागो युनिवर्सिटी प्रेस।

ओपन, हीमर फ़ैन्डा एग्रेरियन फिलासफी आफ हिस्ट्री एण्ड सोशल रिफार्म्स पाल हानिगसीम।

वेबर, मैक्स (१९३०) प्रोटेस्टेन्ट इथिकस् एंड द राइज़ ऑफ़ कपिटलिज़म् अनुवादक टालकाट पारसन्स एलन एण्ड उनविन, लिमिटेड लंदन।

रॉबिन्स, एल० एन एसे ऑन द नेचर एंड सिग्नीफ़िकेन्स ऑफ़ इकनॉमिक्स साइंस।

लॉवी, एडॉल्फ़ (१९३५) इकनॉमिक्स एंड सोशियोलॉजी एलन एंड उनविन, लन्दन

आउटलाइन्स ऑफ़ पॉलिटिकल इकॉनामी।

सरन, ए० के० (१९६२) डी० पी० मुकर्जी—"एन अबेचुअरी ईस्टर्न एंथ्रापालोजिस्ट खण्ड १५ अंक २.

(१९५९) फ़ेथ ऑफ़ ए माडर्न इन्टलेक्चुअल राम एडवानी लखनऊ।

(१९६५) फेथ आफ ए माडर्न इंटलेक्युअल टूवर्ड्स ए सोशियालॉजी आफ कल्चर इन इंडिया—एडिटर्स योगेन्द्र सिंह तथा इन्द्र देव, प्रिन्सि हाल आफ इंडिया, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिंह, योगेन्द्र (१९७३) भारत के लिए समाजशास्त्र अनुवादक हरिकृष्ण रावत, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर।

(१९६७) सोशियोलॉजी फॉर इन्डिया प्रिंटिस हाल आफ इंडिया, नई दिल्ली।

शुम पीटर, जोसेफ़ ए० (१९६५) कैपिटलिज्म सोशलिज्म एंड डेमोक्रेसी उनविन युनिवर्सिटी बुक्स लन्दन।

(१९६१) दस महान अर्थशास्त्री, आत्मा राम एण्ड संस दिल्ली।

(१९५२) टेन ग्रेट इकानामिस्ट जार्ज एलन एण्ड उनविन लिमिटेड लन्दन।

शामबर्ट, वारनर कैपिटलिज्म इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज़ भाग दो संपादक सेलिग मैन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज विज्ञानों में हिन्दी माध्यम में अध्यापन समस्यायें एवं सुझाव

नरेश चन्द्र जोशी एवं
जे० पी० पचोरी

सामाजिक विज्ञानों में मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धों, समस्याओं एवं विचारधाराओं का अध्ययन किया जाता है। यह माना जाता है कि संसार में मनुष्य के जन्म लेते ही समाज का निर्माण हो गया था तथा समाज के निर्माण के साथ ही लिखित अथवा अलिखित रूप में समाज विज्ञानों का अस्तित्व किसी न किसी रूप में रहा होगा। आज भी कुछ सामाजिक परम्परायें, रूढ़ियाँ, रीति-रिवाज, अन्धविश्वासों एवं प्रथाओं का पालन समाज में लिखित अथवा अलिखित नियमों की अपेक्षा अधिक स्वेच्छा तथा सामाजिक दबाव के साथ किया जाता है। प्राचीन काल में यही परम्परायें, रूढ़ियाँ, तथा धार्मिक विश्वास मनुष्य के अलिखित सामाजिक विज्ञान के रूप में प्रचलित रहे होंगे, जिन्हें धीरे-धीरे लिपि के प्रचलन के साथ मनुष्य ने लिपिबद्ध करना शुरू किया।

आधुनिक शिक्षा के प्रचलन तथा सभ्यता के प्रसार के बाद सामाजिक वैज्ञानिकों ने सामाजिक सम्बन्धों तथा समस्याओं एवं परम्पराओं का वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण प्रारम्भ किया जिससे सामाजिक विज्ञानों के कई विशिष्ट क्षेत्रों के आधार पर अलग-अलग विधाओं का जन्म हुआ। जब मनुष्य का तकनीकी ज्ञान अधिक विकसित नहीं हुआ था, प्रेस का आविर्भाव नहीं हो पाया था और आवागमन के साधन उपलब्ध न थे तब क्षेत्रीय भाषा के आधार पर हस्त-लिखित पुस्तकों का जन्म हुआ। सन् १४५० में जर्मनी वैज्ञानिक केक्सटन ने प्रिन्टिग प्रेस का आविष्कार किया। टेकनोलोजी के विकास के फलस्वरूप राष्ट्रीय भाषाओं में प्रिन्टिग प्रेस का उपयोग किया गया। एक दूसरे के सम्पर्क में आने के कारण एक भाषा के साहित्य का दूसरी भाषाओं में अनुवाद होने लगा। समृद्ध भाषाओं में अधिक साहित्य का सृजन हो गया इसलिए

एन० सी० जोशी, शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर, गढ़वाल।
डा० जे० पी० पचोरी, प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर, गढ़वाल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक भाषा-भाषी लोगों का यह प्रयास रहता है कि अपनी भाषा में साहित्य लिखाकर या समृद्ध भाषाओं में साहित्य का अनुवाद कर अपने भाषा के साहित्य को समृद्ध करें।

हिन्दी भाषा का विकास

हमारा देश १५ अगस्त १९४७ को स्वतन्त्र हुआ था, हमने २६ जनवरी, १९५० को लागू अपने संविधान में राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार किया तथा कुछ समय के लिए द्वितीय भाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रचलन भी जारी रखा। राष्ट्रीयता के जोश में तथा भावावेश में हमारे नेताओं ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा तो स्वीकार कर लिया, परन्तु स्वयं अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त होने के कारण वे लोग स्वयं ही हृदय से इसे स्वीकार नहीं कर सके। इसका परिणाम यह हुआ कि संविधान लागू होने के ३६ वर्षों के बाद भी हम हिन्दी को राष्ट्रभाषा का स्थान नहीं दे पाये हैं।

यद्यपि हमने हिन्दी को विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम स्वीकार कर लिया, परन्तु आज भी राष्ट्रभाषा का स्थान तो दूर रहा हम हिन्दी को सरकारी भाषा भी कह सकने में समर्थ नहीं हैं। उदाहरणार्थ प्रत्येक डाक घर में हिन्दी सप्ताह मनाया जाता है तथा यह निर्देश लिखे मिलते हैं कि तार हिन्दी में कीजिए, परन्तु वहाँ हिन्दी में तार करने वाला आपरेटर ही नियुक्त नहीं किया जाता है। यही नहीं, हिन्दी में भेजा जाने वाला तार अंग्रेजी में भेजे जाने वाले तार से विलम्ब में प्राप्त होता है क्योंकि उसे लम्बे मार्ग से भेजा जाता है। दूसरी ओर केन्द्रीय सरकार जो हिन्दी को राष्ट्रभाषा का सम्मान दिलाने के लिए सबसे ज्यादा उत्तरदायी है, आपको किसी पत्र का जवाब हिन्दी में नहीं दे सकती है। यही नहीं, हिन्दी भाषा के सचिवालय तथा संस्कृत संस्थान जैसी संस्थाओं से भी जवाब प्रायः अंग्रेजी में ही मिलता है। ऐसी दोहरी नीति के कारण हिन्दी को विश्वविद्यालयीय शिक्षा का माध्यम स्वीकार करना स्वयं ही निरर्थक साबित हो जाता है। प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार भगवती चरण वर्मा ने अपने सुप्रसिद्ध उपन्यास 'सामर्थ्य और सीमा' में एक स्थान पर लिखा है कि **"महान कलाकार आवेश के क्षणों में सूक्तियों में बोलते हैं।** परन्तु आज का महान भारतीय आवेश के क्षणों में **सूक्तियों में नहीं अपितु फर्राटेदार अंग्रेजी में बोलकर अपनी विशिष्टता जाहिर करता है।'**

हिन्दी तथा राष्ट्रीय एकता

भारत में क्षेत्रीय जाति-प्रजाति, धर्म तथा सम्प्रदाय के आधार पर विभिन्नता हमेशा विद्यमान रही है। राष्ट्रीय अखण्डता तथा अपनी पहचान बनाये रखने के लिए हमने सम्प्रेषण के एक ऐसे माध्यम की आवश्यकता महसूस की जिसे अधिकतर भारतीय बोलते और समझते हों। इस राष्ट्रीय आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए हमने २६ जनवरी, १९५० को लागू अपने संविधान हिन्दी को राष्ट्रभाषा माना। भावावेश तथा राष्ट्रीयता के जोश में हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा तो स्वीकार कर लिया परन्तु सर्वत्र अंग्रेजी की व्यापकता को अपनाकर वे स्वयं ही इसे तहे दिल से स्वीकार न कर सके तथा हिन्दी को राष्ट्र भाषा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान न दिला सके। यद्यपि ३६ वर्ष यौवनावस्था के लिए कम नहीं होते परन्तु राजनेताओं की कुटिल नीति तथा उच्च शिक्षित व्यक्तियों एवं शिक्षाविदों की गुलाम मानसिकता के कारण हिन्दी अभी भी अपने शैशवावस्था में है। राष्ट्रभाषा को एक राजनैतिक प्रश्न बना दिया गया है। नेहरू युग से आज तक हमारे राजनेता हमेशा कहते रहे हैं कि हिन्दी को किसी पर थोपा नहीं जायेगा। यह एक गम्भीर प्रश्न है कि स्वतन्त्र भारत की अपनी एक ऐसी सम्पर्क भाषा तो होनी ही चाहिए जिसे राष्ट्र का बहुमत स्वीकार करता है। जब प्रजातन्त्र में बहुमत के आधार पर सरकार बनती बिगड़ती हैं, जब बावजूद प्रबल विरोध के भारत सरकार मुस्लिम महिला विधेयक पारित कर सकती है तो आखिर हिन्दी को राष्ट्रीय आवश्यकता मानकर हम इसे लागू करने में क्यों चूकते हैं ? परन्तु यह एक राजनैतिक प्रश्न बना हुआ है, क्योंकि आज की सरकारें राष्ट्र और राष्ट्रीय समस्याओं पर कम तथा वोट बैंक पर अधिक ध्यान देती हैं।

समाज विज्ञानों में हिन्दी माध्यम से पठन-पाठन में निम्नलिखित प्रमुख कठिनाइयां हैं—

१—हिन्दी माध्यम की पाठ्यपुस्तकों का अभाव

हिन्दी को हमने उच्च शिक्षा का माध्यम तो मान लिया है परन्तु उच्च शिक्षा के लिए हिन्दी में पुस्तकों का अभाव निरन्तर बना हुआ है। लेखकगण अंग्रेजी में पुस्तक लिखकर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित करना चाहते हैं तथा अंग्रेजी में लिखी पुस्तकों का मूल्य अच्छा मिल जाता है जिससे हिन्दी माध्यम से पाठ्य पुस्तकों का अभाव निरन्तर बढ़ता जा रहा है। सरकार द्वारा इसके लिए कोई सराहनीय प्रयास नहीं किये गये हैं। यद्यपि भारत सरकार द्वारा १९६९ में पांच हिन्दी भाषी राज्यों क्रमशः मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, हरियाणा तथा उ० प्र० में हिन्दी ग्रन्थ अकादमी की स्थापना की गई जिसका दायित्व उच्च शिक्षा के लिए हिन्दी माध्यम की पाठ्य पुस्तकें उपलब्ध कराना है। परन्तु सरकार का यह प्रयास नगण्य ही है। जब तक किसी भाषा के साहित्य को समृद्ध नहीं किया जाता तब तक उसके माध्यम से शिक्षा देकर हम देश व शिक्षा के साथ खिलवाड़ ही कर रहे हैं।

२—हिन्दी माध्यम की घटिया पुस्तकों का प्रचलन

हिन्दी माध्यम की पाठ्य पुस्तकों के अभाव के कारण हिन्दी में जैसी भी पुस्तक उपलब्ध हो पाती है छात्र उसी के अध्ययन के लिए बाध्य होता है। प्रायः यह देखने में आ रहा है कि कुछ व्यवसायी व्यक्तियों द्वारा हिन्दी में पुस्तकें लिखी जा रही हैं, जिनका आशय केवल धन अर्जन करना है। कभी-कभी एक ही व्यक्ति द्वारा चार-पांच विषयों में पुस्तकें लिखी जाती हैं। ऐसी स्थिति में या तो उसके पाण्डित्य का आदर करना पड़ेगा अथवा यह मानना पड़ेगा कि नकल करने की प्रवृत्ति केवल छात्रों में ही नहीं अपितु कुछ लेखकों में भी पाई जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि जो ज्ञान उन पुस्तकों से मिल पाता है वह गलत होता है तथा छात्र अपेक्षित ज्ञान प्राप्त करने से वंचित रह जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—अंग्रेजी भाषा व अन्य समृद्ध भाषाओं की पुस्तकों का पर्याप्त अनुवाद न होना

यह तो निःसंकोच मानना पड़ेगा कि पाश्चात्य साहित्य हमारे साहित्य से बहुत समृद्ध है। हिन्दी को राष्ट्र भाषा स्वीकार करने पर हमारा यह दायित्व हो जाता है कि हम अपनी राष्ट्रभाषा को समृद्ध करने का हर सम्भव उपाय करें। इसके लिए आवश्यक है कि हम समृद्ध साहित्य की पुस्तकों का अनुवाद कर अपने साहित्य को समृद्ध करें। सरकार द्वारा अब तक इस सम्बन्ध में किये गये, प्रयासों को नगण्य एवं चिन्ताजनक ही माना जा सकता है। परन्तु केवल सरकार को ही दोषी मानकर हमारे कर्तव्यों की इतिश्री नहीं हो जाती है। प्रत्येक उच्च शिक्षित व्यक्ति तथा विश्वविद्यालय प्राध्यापकों को इस दायित्व से मुक्त नहीं किया जा सकता है। पाठ्य पुस्तकों के मामले में प्राध्यापकों को दोष देना अनुचित न होगा क्योंकि वे स्वयं ही अंग्रेजी के मोह को नहीं छोड़ पा रहे हैं जिससे हिन्दी में अनुवाद का प्रश्न तो दूर रहा, शिक्षा के क्षेत्र में उनका योगदान भी हमें अंग्रेजी माध्यम से ही प्राप्त हो पाता है। जो स्वदेश के लिए कम तथा विदेश के लिए ज्यादा उपयोगी माना जा सकता है। अतः विश्वविद्यालय प्राध्यापकों को यह प्रवृत्ति त्यागनी होगी तभी हम राष्ट्र भाषा के माध्यम से पठन-पाठन में सक्षम हो सकेंगे।

४—अंग्रेजी लेखन को वरीयता

अंग्रेजी में लिखना, पढ़ना व बोलना हम आज आजादी के ४०वें वर्ष भी गौरव का विषय समझते हैं जो कि अत्यन्त ही दुखदायी है। जिस देश के नागरिक अपनी राष्ट्रभाषा में पढ़ने-लिखने और बोलने में हीन भावना महसूस करें उस राष्ट्र के सुखद भविष्य की क्या कल्पना की जा सकती है। आज के स्वतन्त्र भारत में भी हिन्दी के बजाय अंग्रेजी की ही अधिक वरीयता है। कोई भी सरकारी या गैर सरकारी आर्थिक सहायता हिन्दी माध्यम की पुस्तकों की अपेक्षा अंग्रेजी माध्यम के पुस्तकों के प्रकाशन के लिए जल्दी मिल जाती है। अधिकतर प्रकाशक भी हिन्दी के बजाय अंग्रेजी में पुस्तकें छापना अधिक पसन्द करते हैं। इन्हीं कारणों से आज भी सामाजिक विज्ञानों में हिन्दी माध्यम की पुस्तकों का अभाव बना हुआ है।

५—हिन्दी में मौलिक लेखन की कमी

सामाजिक विज्ञानों में हिन्दी माध्यम से मौलिक लेखन के प्रयास भी नगण्य हैं क्योंकि उच्च स्तर पर अंग्रेजी लेखन को वरीयता दी जाती है इसलिए लेखक भी अंग्रेजी में लिखना ही ज्यादा पसन्द करते हैं। हिन्दी में मौलिक लेखन को कुछ विश्वविद्यालयों द्वारा भी हतोत्साहित किया जाता है। जैसा कि पिछले कुछ दिनों देखने में आया कि कुछ शोध छात्रों द्वारा हिन्दी माध्यम से कार्य करने पर उनको तब तक उपाधि नहीं दी गई जब तक उनके द्वारा अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत नहीं किया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६—विश्वविद्यालय प्राध्यापकों का अंग्रेजी प्रेम

विश्वविद्यालय स्तर पर हिन्दी को शिक्षा का माध्यम तो स्वीकार कर लिया गया है, परन्तु सामाजिक विज्ञानों में हिन्दी की पाठ्य पुस्तकों का अभाव बना हुआ है। ऐसी स्थिति में इस कमी को पूरा करना सामाजिक, वैज्ञानिक तथा विश्वविद्यालय प्राध्यापकों का नैतिक दायित्व है तथा बिना उनके सार्थक सहयोग के यह कमी कभी भी पूरी नहीं हो सकती है। विश्वविद्यालयों में यह प्रवृत्ति देखने में आ रही है कि प्राध्यापकगण हिन्दी माध्यम से शिक्षण भी ज्यादा पसन्द नहीं करते हैं। यदि उन्हें हिन्दी माध्यम से शिक्षण करना भी पड़ता है तो उनका झुकाव फिर भी अंग्रेजी की ओर बना रहता है। वर्तमान में प्राध्यापकों को अपना यह नैतिक कर्तव्य मानना चाहिए कि विश्वविद्यालय शिक्षा में हिन्दी माध्यम की पुस्तकों के अभाव को पूरा करना उनका ही नैतिक दायित्व है।

७—निम्न मानसिकता

अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए माध्यम के रूप में किसी भाषा का होना आवश्यक है। हम सभी शिक्षाविदों की मानसिकता इतनी निम्न हो गई है कि जिस भाषा को हम बचपन से वृद्धावस्था तक हर समय बोलते हैं तथा यह जानते हुए कि हिन्दी के माध्यम से हम अपनी बात को ज्यादा अच्छी प्रकार व्यक्त कर सकते हैं, फिर भी अंग्रेजी भाषा को हम अपनी राष्ट्रभाषा से ज्यादा श्रेष्ठ मानते हैं। यह हमारी निम्न मानसिकता का ही परिचायक है।

हम सभी समाज वैज्ञानिक अच्छी तरह से जानते हैं कि भारत को छोड़कर अन्य जितने भी समाज वैज्ञानिक अन्य देशों में हुए हैं उन्होंने अपने विचार अपनी मातृभाषा में लिपिबद्ध किये हैं तथा उनका अनुवाद अन्य भाषाओं में किया गया है। लेकिन भारत में स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है। इसका कारण यह नहीं है कि हिन्दी में हम अपने विचारों को लिपिबद्ध नहीं कर सकते, अपितु वास्तविकता यह है कि वे हिन्दी में लिखना ही नहीं चाहते हैं। अभी भी हम गुलाम मानसिकता को लेकर आगे बढ़ रहे हैं।

सुझाव

समाज विज्ञानों में हिन्दी माध्यम से अध्यापन की कठिनाइयों को दूर करने हेतु निम्न सुझाव दिये जा रहे हैं—

१—हिन्दी में पाठ्य पुस्तकों के लेखन को सरकार, कल्याणकारी संस्थाओं तथा यू० जी० सी० द्वारा प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

२—हिन्दी माध्यम की पाठ्यपुस्तकों के छापने पर प्रकाशकों को टैक्स आदि में छूट दी जानी चाहिए।

३—सरकार द्वारा हिन्दी माध्यम से लिखी जानी वाली पुस्तकों के छापने के लिए आर्थिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुदान का प्राविधान कर हिन्दी में पुस्तकें लिखने व छपवाने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

४—सरकार द्वारा हिन्दी में छपने वाली घटिया स्तर की पाठ्य पुस्तकों के प्रकाशन पर रोक लगाई जानी चाहिए।

५—पेशेवर व्यक्तियों द्वारा एक साथ कई विषयों पर पुस्तकें लिखने की प्रवृत्ति को कम करने के लिए ऐसी पुस्तकों के स्तर की जाँच की जानी चाहिए।

६—समय-समय पर गोष्ठियाँ आदि आयोजित कर विद्वानों को हिन्दी में पुस्तकें लिखने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

७—समाज वैज्ञानिकों व विश्वविद्यालय प्राध्यापकों को विदेशी भाषा का मोह त्याग कर राष्ट्रभाषा में मौलिक कार्य व अनुवाद का कार्य करना चाहिए क्योंकि भारत की अखण्डता व एकता के लिए राष्ट्रभाषा का समृद्ध होना आवश्यक है।

८—राष्ट्रभाषा से सम्बन्धित संस्थाओं तथा राज्य एवं केन्द्रीय सरकार को पाश्चात्य समाज विज्ञान की पुस्तकों तथा अन्य भाषाओं के मौलिक साहित्य के अनुवाद का कार्य युद्ध-स्तर पर करना चाहिए।

९—विश्वविद्यालयों एवं अन्य प्रतियोगितात्मक परीक्षाओं में हिन्दी/अंग्रेजी माध्यमों के आधार पर मूल्यांकन में हो रहे पक्षपात को समाप्त किया जाना चाहिए।

१०—शोध-कार्यों में हिन्दी, अंग्रेजी माध्यम को विवाद का विषय बनाने के बजाय राष्ट्र भाषा के माध्यम से शोध कार्य करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१—मधोक, बलराज १९७२ भारतीय-करण, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली।

२—नारायण, जयप्रकाश १९७३ समाजवाद, सर्वोदय और लोकतन्त्र, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना।

३—सावरकर, बी० डी० १९७८ भारतीय इतिहास के छः स्वर्णिम पृष्ठ।

४—उपाध्याय, दीनदयाल, १९७१ राष्ट्रीय जीवन की दिशा, लखनऊ, राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन।

५—दुबे, एस० सी० १९६७ इण्डियन विलेज, एलाइड पब्लिशर्स, बम्बई।

६—देसाई, ए० आर० १९८२ सोशल बैकग्राउन्ड आफ इण्डियन नेशनैलिज्म, पापुलर प्रकाशन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७—धर्माधिकारी, डी० १९५८ सर्वोदय दर्शन, काशी अखिल भारतीय सेवा संघ।

८—श्रीनिवास, एम० एन० १९८२ इण्डियन सोशल स्ट्रक्चर, हिन्दोस्तान पब्लिशिंग कार्पोरेशन, दिल्ली।

९—गुप्ता, बी० डी० १९७२ साहित्य का समाजशास्त्र, सीता प्रकाशन, हाथरस।

१०—मजूमदार, डी० एन० १९६३ हिमालयन पोलिएण्ड्री, एशिया पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

११—प्रसाद, नर्मदेश्वर मानव व्यवहार एवं सामाजिक परिवर्तन, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिवासी स्तम्भ

ग्रेट निकोबार के शोम्पेन

अशोक कुमार पांडेय एवं
दिग्विजय नाथ पांडेय

अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह, बंगाल की खाड़ी में कलकत्ता से करीब १२०० समुद्री मील पर स्थित हैं। इन द्वीप समूहों में दो प्रकार के आदिवासी समुदाय आदिकाल से रहते चले आ रहे हैं, ये हैं (१) काली प्रजाति के आदिवासी समुदाय जिसके प्रतिनिधि समूह ओंगी, जरवा, सेंटीनल तथा अण्डमानी तथा (२) लाल शोम्पेन।

शोम्पेन जनजाति ग्रेट निकोबार द्वीप की मुख्य जनजाति है। अतः ग्रेट निकोबार के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर लेने के बाद ही जनजाति के सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्रिया कलापों तथा इसकी जीवन पद्धति पर इस द्वीप की अनोखी छाप के सम्बन्ध में कहा जा सकता है। ग्रेट निकोबार द्वीप, निकोबार द्वीप समूह के सुदूर दक्षिण में स्थित अन्तिम द्वीप है। इस द्वीप का दक्षिणी स्थल विन्दु जो कि सुमात्रा से केवल ९१ मील दूर है, पिगमेलियन बिन्दु (इन्दिरा बिन्दु) के नाम से प्रसिद्ध है।

अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह में ग्रेट निकोबार द्वीप की अपनी एक विशेषता है। इस सम्पूर्ण द्वीप सभूह में केवल इसी द्वीप में वर्ष पर्यन्त मीठे जल से भरी नदियां प्रवाहित होती हैं जिनके द्वारा यातायात भी सम्भव है। दूसरी प्रमुख विशेषता यह है कि इसी द्वीप में दो प्रकार की जनजातियां अपनी-अपनी संस्कृति एवं रीति-रिवाजों को कायम रखती हुई वहां के प्राकृतिक वातावरण के साथ सामन्जस्य बनायें हुए हैं। इस द्वीप का मौलिक नाम होकिरो-

---

अशोक कुमार पांडेय, वरिष्ठ सामाजिक अधिकारी, ओगी सेटलमेन्ट, दुग्रांग क्रीक, लिटिल अण्डमान
दिग्विजय नाथ पांडेय, क्रीटियोग्राफर, भारतीय मानव विज्ञान सर्वेक्षण, पोर्ट ब्लेयर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गलाग है, जो बंगाल की खाड़ी में स्थित है। इस द्वीप का उत्तरी भाग पर्वतीय है जबकि दक्षिणी भूभाग समतल है। उत्तरी पश्चिमी भाग में इस द्वीप की सबसे ऊंची पर्वत चोटी माउन्ट थुलियार है जिसकी ऊँचाई ६३८ मीटर है। इस भाग की प्रमुख नदिया गलेपिया, डेगमर, एलेक्जेण्ड्रिय एवं जुवली हैं। सभी नदियों का उद्गम स्थल इस द्वीप का केन्द्रीय भाग है। इन नदियों की गहराई कहीं-कहीं ५ फेथम तथा चौड़ाई ५ मीटर के लगभग है। ये नदियाँ पूर्ण रूपेण मगर, कछुए एवं मछलियों से भरी हुई हैं।

भूमध्य रेखा के सन्निकट होने के कारण यहां वर्षा प्रचुर मात्रा में प्रायः वर्ष पर्यन्त होती रहती है, तथा सूर्य की किरणों का प्रभाव भी तीक्ष्ण होता है। इस प्रकार वर्षा की प्रचुरता तथा सूर्य के प्रकाश में तीक्ष्णता के कारण यहां आर्द्रता ७५ से ८० प्रतिशत के बीच रहती है। तापक्रम भी २५ से ३० सें० के मध्य परिवर्तित होता रहता है। इस द्वीप का भूखण्डीय क्षेत्रफल ३३३ वर्गमील है। इस क्षेत्र में घने वन सदा हरे भरे रहते हैं। वनों में अधिकांश वृक्ष लम्बे पतले होते हैं तथा प्रायः सभी वृक्ष एक दूसरे से कटीली झाड़ियों के द्वारा संलग्न रहते हैं। ये वन खतरनाक जंगली जानवरों से प्रायः मुक्त है। इसमें मुख्य रूप से जंगली सूकर, सांप तथा दुर्लभ पक्षी मेगापोड़ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इस द्वीप में वर्षा मुख्यतया दो मानसूनी समयों में होती है तथा इसका वितरण पूर्वी एवं पश्चिमी तटों मे भिन्न है। पूर्वी तटीय भाग में अधिक वर्षा उत्तरी-पूर्वी मानसून द्वारा अक्टूबर से जनवरी के बीच होती है जब कि पश्चिमी तट में अधिक वर्षा दक्षिणी पश्चिमी मानसून से मई से अगस्त के मध्य होती है।

शोम्पेन जनजाति जो इस द्वीप की प्रमुख जनजाति है, एक निश्चित स्थान पर स्थायी रूप से निवास नहीं करती है तथा कुछ समय के अन्तराल के बाद अपनी आवश्यकतानुसार स्थान परिवर्तित करते रहते हैं। इस जनजाति के नामकरण एवं इसके इस भूभाग पर उद्भव के बारे में अभी तक स्पष्ट रूप से वैज्ञानिकों के विचार एकमत नहीं हैं। नामकरण के बारे में यह प्रचलित हैं कि निकोबारी शब्दकोष के आधार पर 'शोम्हेप' शब्द का अर्थ यह है, कि जो मानव समूह जंगलों के भीतर निवास करता है। इसी शब्द को ब्रिटिश लोगों ने अपने उच्चारण के अनुकूल 'शोम्पेन' शब्द प्रचलित कर दिया। इस शब्द का उच्चारण मुख्य रूप से तीन प्रकार से किया जा सकता है, शोम्पेन, शेम्पेन और शोम-पेन। पास्टर रोडेशन (१८३१) के पहले शोम्पेन जनजाति के बारे में जानकारी नगण्य थी। इनके द्वारा यह प्रचलित था कि ये निग्रिटों प्रजाति की जाति अन्डमानीज से मिलते जुलते हैं तथा इन्होंने इसके बारे में यह कहा कि अण्डमानीज शिकार हेतु इस भूभाग पर आये तथा यहां के मूल निवासिओं से मिश्रित हो जाने के फलस्वरूप इस जनजाति का उद्भव हुआ। वाह्य रूप से देखने से यह निकोबारियों से कुछ भिन्न दिखाई पड़ते हैं। इसी कारण इनके बारे में यह प्रचलन प्रमुख है कि दक्षिण के निकटतम व्यापारी देश सिंगापुर से अपने व्यापार हेतु इस भू भाग से होते हुए यात्रा करते थे तथा प्रायः यहां पड़ाव लगाया करते थे। उसी अवधि में मूल निवासियों के साथ मिश्रण के फलस्वरूप इस जनजाति का उद्भव हुआ। भारत के (१९३१) जनगणना के आधार पर ये उत्तरी अमेरिका में स्थित भारतीय मूल निवासी के समान दिखाई देते हैं। ई० एच० मैन के अनुसार शोम्पेन ग्रेट निकोवार द्वीप की मूल जनजाति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है जिसने कि मलाया से विस्थापित होने के बाद अपना आवास यहां स्थापित किया। वोडेन क्लास के विचारों के अनुसार निकोबार द्वीप समूह मूल रूप से मलाया रेस के मानव जाति से अधिग्रहीत था जो कि धीरे-धीरे बर्मा के तटीय किनारों से भारत चीन के तरफ विस्थापित हुए तथा उनका यह भी विश्वास था कि शोम्पेन मलाया से विस्थापित होने वाली अन्तिम प्रजाति थी।

शोम्पेन के जीवन शैली एवं उनके बारे में सर्वप्रथम प्रमाण १८४६ में एडमिरल स्टीलविल के द्वारा प्राप्त हुआ। इसके बाद डेगलिएथ स्टारर्फ एण्ड ई० एच० मैन (१८८४) ने भी इस भू भाग पर इस जनजाति के बारे में अध्ययन हेतु अनेक बार भ्रमण किया। परन्तु इन लोगों की यात्रा का मूल उद्देश्य इस मूलजाति के आविष्कार एवं उनकी स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त करना था। परन्तु सर्व प्रथम १९०५ में सी० डब्ल्यू० बी० एन्डर्सन ने लम्बे अवधि तक इस जनजाति के बीच रहकर इनके बारे में अध्ययन किया तथा अपने विचार प्रस्तुत किये। सर्व प्रथम चेनगप्पा (१९५२) में अपनी इस जनजाति के क्षेत्र की यात्रा के पश्चात् अपने लेख में उद्धृत करते हुए कहा था कि शीघ्रातिशीघ्र इस जनजाति के अध्ययन हेतु मानव विज्ञान सर्वेक्षण के अनुसंधानकर्ताओं को लम्बी अवधि के लिए भेजा जाये। इस जनजाति के क्षेत्र में इस द्वीप समूह के दो प्रशासनिक अधिकारियों सर्वश्री राजा राम (१९६०) एवं श्री राहा (१९७०) न भी भ्रमण किया परन्तु इनके भ्रमण का मूल आधार इनको प्रशासनिक विधियों के द्वारा विकसित करना था।

शोम्पेन जनजाति के वितरण की प्रणाली भी इस द्वीप में एक विशेष प्रकार के वातावरण के अनुरूप है। इनके वितरण को मुख्यतया दो भागों में इंगित कर सकते हैं, पूर्वी तटीय शोम्पेन बस्ती एवं पश्चिमी तटीय शोम्पेन वस्ती। पूर्वी तटीय शोम्पेन बस्ती तट से 2-3 किलोमीटर के मध्य तथा पश्चिमी तटीय शोम्पेन बस्ती तट से लगभग 10-15 किलोमीटर दूर जंगल के भीतर स्थित है। दूसरे तरह से हम इनको तटीय भाग व जंगलों के भीतर के शोम्पेन के रूप में संज्ञा दे सकते हैं।

इनके इस प्रकार के असमान दूरी पर वितरण होने का मुख्य कारण यह है कि पूर्वी तटीय भाग में एक निकोबारी बस्ती कैम्पवेलवें से दक्षिण में ४५ किमी० की दूरी पर है जबकि पश्चिम तट पूर्णरूप से निकोवारी वस्ती के निर्माण में तटीय निकोवारी बस्ती से घिरा हुआ है। इस तरह शोम्पेन बस्ती के निर्माण में तटीय निकोवारी बस्ती का प्रभाव महत्वपूर्ण है तथा इस आधार पर शोम्पेन के गुण, स्वभाव तथा जीवन शैली पर बृहद प्रभाव पड़ा है। पूर्वी तटीय शोम्पेन बाहर के लोगों से विशेष तौर से निकोवारी बस्ती के अभाव के कारण अपने पुराने रीति रिवाजों तथा व्यवहार को अभी भी संजोये हुए हैं। इनके व्यवहार को देखने से यह मालूम होता है कि ये शर्मीले तथा सुस्त स्वभाव के हैं तथा अपनी झोपड़ियों में प्राय: सोये रहते हैं और आवश्यकतानुसार दैनिक जीवन यापन के लिए भ्रमण करते हैं। जब भी बाहर के व्यक्ति विशेष तौर से प्रशासनिक या अध्ययन दल इनके क्षेत्र में प्रवेश करते है तथा इनसे मिलने की इच्छा व्यक्त करते है तो ये मित्रता पूर्वक मिलते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं जबकि पश्चिमी तटीय या जंगल के अन्दर निवास करने वाले शोम्पेन इनसे भिन्न दिखाई देते हैं। इनके तटों से इतनी दूरी पर निवास करने का मूलकारण यह है कि निकोवारी इन शोम्पेनों का शोषण करते थे जिसके कारण ये दूर भागने लगे तथा धीरे-धीरे इनके अन्दर दृढ़ता तथा प्रतिशोध की भावना जग उठी तथा ये प्रायः बाहरी व्यक्तियों से मित्रवत् सम्बन्ध नहीं रख पाते हैं।

प्रायः शोम्पेन अभी भी बाहरी लोगों से सम्पर्क स्थापित करने में डरते हैं। शोम्पेन बस्ती का पता लगाना एक कठिन कार्य है। क्योंकि इनके पास कोई निवास नहीं है तथा जंगलों में घूमते रहते हैं। ये नौका (होंडी) के द्वारा ही अपने स्थान का परिवर्तन करते हैं तथा बाहरी समाज के डर से जब अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंच जाते हैं तब अपने होडी को नदी के जल से निकाल कर जंगल के भीतर लगभग ५ से १० मीटर की दूरी पर रख देते हैं तथा इसे पत्तों से ढक देते हैं। अतः नालों के किनारे जब भी होडी दिखाई पड़े यह आभास प्राप्त हो जाता है कि इस क्षेत्र में शोम्पेन बस्ती अवश्य है।

अग्रवाल एच० एन० (१९६६) के अनुसार शोम्पेन पुरुषों की औसत ऊँचाई १५९-१५ से० मी० तथा औरतों की औसत ऊँचाई १४८-६६ से० मी० है। इनके शरीर का रंग भूरा एवं पीलायुक्त भूरा है। इनके बाल कुछ मुड़े हुए तथा सीधे हैं विशेष तौर से यह कहा जा सकता है कि इनकी आकृति निकोवारियों से कुछ भिन्न है।

शोम्पेन के जीवन प्रक्रिया पर ग्रेटनिकोबार द्वीप भूखण्ड के सूक्ष्म स्तर पर होने वाले जलवायु के परिवर्तनों का प्रभाव मुख्यतः पड़ा है शोम्पेन अपने झोपड़ी निर्माण करते समय जंगलों के भीतर तथा नालों व तटीय किनारों से कुछ दूरी पर स्थान चयन करते समय भू संरचना के ऊपर विशेष ध्यान देते हैं। पूर्वी तटीय शोम्पेन बस्ती तटीय भाग तथा नालों के कुछ ही दूरी पर स्थित होते हैं, अतः ये झोपड़ी के लिए समतल स्थान का चयन करते हैं तथा इस स्थान के चयन के समय वह ध्यान देते हैं कि समतल मैदान चारों तरफ के मैदान से कुछ ऊंचा हो। नाला जो कि समुद्र से संलग्न है ज्वार के समय चारों तरफ उसका पानी फैल जाता है। अतः स्थान चयन के समय यह भी ध्यान देते हैं कि झोपड़ी के लिए धरातल, फैलते जल के सीमा के बाहर हो। परन्तु जंगलों के भीतर जो शोम्पेन बस्ती हैं वे अपने झोपड़ी के स्थान चयन में पहाड़ी के धरातल पर छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में समतल भूमि पर अपनी झोपड़ियां बनाते हैं तथा कभी-कभी झोपड़ियों को पहाड़ियों की चोटी पर बनाते हैं। झोपड़ी के लिए स्थान चयन के साथ-साथ शोम्पेन यह भी ध्यान देते हैं कि बस्ती के चारों तरफ पेन्डनस का वृक्ष प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो तथा बस्ती के लगभग १ किलोमीटर के मध्य में झरना का स्त्रोत होना चाहिए क्योंकि शोम्पेन पीने के जल का उपयोग झरनों के स्त्रोत से ही करते हैं। यह बहते जल के धारा को पीने के लिए उपयोग नहीं करते क्योंकि उन्हें आभास है कि ज्वारभाटा तथा वर्षा की प्रचुरता के कारण बहते जल में जंगलों की मिट्टी व गन्दी वस्तुएँ मिल जाती हैं अतः यह जल पीने के योग्य नहीं होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोम्पेन द्वारा निर्मित बस्ती को देखने से यह आभास होता है कि किसी भी स्थान पर ५ से अधिक झोपड़ियाँ नहीं हैं कहीं-कहीं २ झोपड़ी भी हैं। पूर्वी एवं पश्चिमी तटों पर निवास करने वाले शोम्पेन में झोपड़ी निर्माण करने की विधि में विभिन्नता दिखाई पड़ती है। शोम्पेन की झोपड़ियाँ खम्भों पर निर्मित की जाती हैं परन्तु इन खम्भों की ऊँचाई धरातल से दोनों तटीय बस्तियों में भिन्न है। पूर्वी तटीय झोपड़ियों के खम्भों की ऊँचाई २.५ से ३ मीटर तक तथा पश्चिमी तटीय शोम्पेन बस्ती की झोपड़ियों के खम्भों की ऊँचाई धरातल से १ से १० मीटर के बीच है। इनके इस प्रकार के असमान होने का कारण यह है कि पूर्वी तटीय भाग में समतल मैदान अधिक उपलब्ध हैं तथा एक झोपड़ी से दूसरे झोपड़ी की ऊँचाई में असमानता कम है। जबकि पश्चिमी तटीय भाग में इस ऊँचाई के अधिक विभिन्नता का कारण यह है कि ये एक सतह पर झोपड़ियों की ऊँचाई ले आने की आवश्यकता समझते हैं। यह इस स्थान के ऊँचे नीचे भू-आकृति के कारण होता है क्योंकि समतल मैदान का अभाव है तथा झोपड़ियां ऊँचे नीचे सतह पर ही बनायी जाती हैं। ऊँचाई के साथ-साथ इनके झोपड़ियों के क्षेत्रफल में भी अन्तर है। पूर्वी तटीय झोपड़ी की आकृति ३ × ३ मी० से ८ × ३ मी० है जबकि पश्चिमी तटीय शोम्पेन झोपड़ियों की आकृति १-७५ × १-५० मीटर है।

झोपड़ी बनाने में लगने वाले सभी संसाधनों को ये जंगलों से ही प्राप्त करते हैं। सख्त लकड़ी तथा मोटे-मोटे बांस को खम्भों के रूप में प्रयोग करते हैं तथा झोपड़ी के प्लेटफार्म को भी इसी तरह सख्त लकड़ी के फट्टे बनाकर निर्मित करते हैं। झोपड़ी के छत को धानी पत्तों से जो कि सुलभता से उपलब्ध हैं, प्रयोग करते हैं। एक पत्ती के ऊपर लगभग २ से०मी० तक दूसरी पत्ती चढ़ा कर जंगल में उपलब्ध बेंत के द्वारा कई स्थानों पर अच्छी तरह से सिलाई कर देते हैं जो कि एक दूसरे से अच्छी तरह से संलग्न हो जाता है। सिलाई करने के लिए पतले-पतले सख्त बेंत के एक भाग को नुकीला करके प्रयोग में लाते हैं। ये एक पत्ते से दूसरे पत्ते को इस प्रकार जोड़ते हैं कि इनके रंध्रों से वर्षा के जलकण झोपड़ी में नहीं गिरते। झोपड़ी के प्लेटफार्म के एक भाग पर ६" परिधि का तथा लगभग १ मीटर लम्बी लकड़ी का एक टुकड़ा रखते हैं जिसे सोने के समय तकिये के रूप में उपयोग करते हैं। झोपड़ी के दीवालों की संरचना में भी तटीय वस्तियों में अन्तर दिखाई देता है। पूर्वी तटीय शोम्पेन झोपड़ी के बगल भी दीवालों का निर्माण छत के अनुरूप ही करते हैं, जबकि पश्चिमी तटीय शोम्पेन झोपड़ी के दीवालों के निर्माण में किसी प्रकार का विशेष ध्यान नहीं देते हैं तथा छत में किनारों पर कोणिए झुकाव करते हैं। ऐसी संरचना वर्षा के झकोरों को झोपड़ी में आने से रोकता है। इस प्रकार के निर्माण इसलिए करते हैं कि इनकी झोपड़ियाँ पहाड़ियों के बीच में होती हैं जिससे कि हवा का कोणीय झुकाव वर्षा के जलकण पर उतना प्रभावित नहीं होता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि इनकी झोपड़ियों के निर्माण में धानी पत्ती की ही अधिकता एवं प्रमुखता रहती है। झोपड़ियों के छत के निर्माण के समय छत का मध्य भाग ऊँचा होता है तथा झुकाव देकर दोनों तरफ से भाग को बनाते हैं तथा बाद में दोनों हिस्से के जोड़ों को पुनः अधिक धानी पत्ती के द्वारा संयुक्त कर देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोम्पेन अपने द्वारा निश्चित सीमा के अन्दर ही अपने-अपने समूहों में रहते हैं तथा यह देखा जाता है कि अपनी बस्तियों से चार पाँच किलोमीटर के अन्दर ही अन्य कार्य के लिए जाते रहते हैं । झोपड़ी निर्माण के समय यह भी ध्यान देते हैं कि इन झोपड़ियों को किसी भी प्रकार के वृक्षों से आच्छादित करें ।

शोम्पेन मुख्य रूप से डरे हुए तथा लज्जित स्वभाव के होते हैं तथा बहुत ही सुस्त दिखाई देते हैं । इनके अन्दर यह गुण मुख्यतया पौष्टिक आहार की कमी के कारण होता है। शोम्पेन अपनी झोपड़ियों में प्लेटफार्म के ऊपर स्वयं रहते हैं तथा इसके नीचे वाले भाग में इनके पालतू जानवर मुख्यतया सूकर और कुत्ते रहते हैं । सभी परिवारों के पास अलग-अलग झोपड़ी होती है तथा परिवार की संरचना नाभिकीय होती है जिसमें औसत ४ व्यक्तियों की संख्या होती है । शोम्पेन के परिवार में पति-पत्नी तथा १३ वर्ष के आयु तक के बच्चे होते हैं । जब ये बच्चे १३ वर्ष से अधिक होते हैं तो इनके लिए अलग झोपड़ी का निर्माण कर दिया जाता है । एक बस्ती में वृद्ध व्यक्ति मुखिया के रूप में कार्य करता है परन्तु इस जनजाति में मुखिया का कोई महत्व नहीं दिखाई पड़ता है ।

शोम्पेन जनजाति में कार्य प्रणाली का वितरण लिंग के आधार पर किया जाता है । कठिन तथा जंगलों के कार्यों को पुरुष तथा घर पर स्त्रियाँ हल्के कार्य मुख्य रूप से खाना बनाना तथा पालतू जानवरों की देखभाल व नजदीक के नालों में कभी-कभी मछली पकड़ने का कार्य भी करती हैं ।

शोम्पेन में शादी कोई विशेष रीति-रिवाज नहीं है तथा कम उम्र में औसत १४ वर्ष की आयु में युवक चयन की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है । शोम्पेन समुदाय में एक पत्नी प्रथा के साथ ही साथ बहु पत्नी प्रथा भी दिखाई पड़ती है । झाऊनाला में एक परिवार का युवक साथ में दो पत्नी रखे है । इनमें रजस्वला तथा बच्चा पैदा होने की अवधि को अशुद्धता के रूप में लिया जाता है । परन्तु इनके यहाँ किसी प्रकार के विशेष कार्यक्रम का आयोजन नहीं किया जाता है । जब किसी औरत को बच्चा पैदा होता है तो उसे एक अलग झोपड़ी में रख देते हैं तथा बस्ती की वृद्धा औरत दायी का कार्य करती है । इस झोपड़ी में बच्चा व मां एक माह तक रखे जाने के बाद दूसरी झोपड़ी में ले जाये जाते हैं । इस अवधि में पति को पत्नी के सम्पर्क से दूर रखा जाता है तथा बच्चे व उसकी मां को नया वस्त्र दिया जाता है । बच्चे पैदा होने के समय उस झोपड़ी में एक पत्थर का टुकड़ा रखा जाता है जिससे आवश्यकतानुसार हाखर मेडिसिन का पेस्ट बनाकर सिर पर लगाया जाता है ।

शोम्पेन के जनसंख्या सम्बन्धी आंकड़ों के अनुसार जो कि १९८१ में आदिम जनजाति विभाग समिति के द्वारा प्रस्तुत किया गया है २१४ है । शोम्पेन दैनिक खाद्य पदार्थों में ७० प्रतिशत भाग स्टार्च का तथा ३० प्रतिशत प्रोटीन का प्रयोग करते हैं ।

स्टार्च का मुख्य रूप से पेन्डुनस एवं विभिन्न प्रकार की जड़ों से तथा प्रोटीन मछली, सूकर के मांस तथा जंगली चिड़ियाँ में जापोड के अण्डे से प्राप्त करते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोम्पेन ही इस द्वीप समूह की एक मात्र जनजाति है जिन्हें प्रारम्भ से आग पैदा करना तथा उसके उपयोग के बारे में पूर्ण जानकारी थी तथा ये आग हमेशा जलाकर अपने झोपड़ियों में रखे रहते हैं। ये आग घर्षण विधि द्वारा पैदा करते हैं। इसके लिए जंगल के दो लड़की के टुकड़ों का उपयोग करते हैं।

शोम्पेन के भाषा सम्बन्धों के बारे में पूर्ण जानकारी अभी तक प्राप्त नहीं हुई है परन्तु व्यक्तिगत सर्वेक्षण के आधार पर यह कह सकते हैं कि जो शोम्पेन कैम्प वाले हैं, वे निकोबारियों से सम्पर्क बनाये हुए हैं वे कुछ हिन्दी के शब्द तथा निकोबारी शब्द से भिज्ञ हैं। वैसे शोम्पेन १० तक की गिनती गिनते हैं तथा कुछ रंगों व प्राकृतिक दृश्यों के नाम भी इनके द्वारा सुना गया है।

शोम्पेन अपनी प्रवृत्ति के अनुसार एक स्थान पर अधिक समय तक नहीं रहते हैं तथा एक बस्ती को छोड़कर दूसरी बस्ती में जाते रहते हैं। इनके एक स्थान से दूसरे स्थान के परिवर्तन करने के अनेक मुख्य कारण हैं।

विशेषतया शोम्पेन अपने प्रमुख खाद्य पदार्थ पेन्डुनस के शेष हो जाने पर दूसरे स्थान पर जहां पेन्डुनस उपलब्ध रहता है स्थान परिवर्तन करके चले जाते हैं।

शोम्पेन शिकार के लिए जंगलों में एक स्थान से दूसरे स्थान का परिवर्तन करते हैं परन्तु इस प्रकार का परिवर्तन एक सीमा के भीतर ही करते हैं। शिकार करते समय इनके साथ हारपून तथा पालतू कुत्ते होते हैं। ये कुत्ते शोम्पेन को शिकार में सहायता करने के साथ-साथ बाहर के लोग जब इनके पास आते हैं तब ये भौंकने लगते हैं।

शोम्पेन हमेशा जंगलों में घूमते रहते हैं। इस अवधि में खाद्य पदार्थों के साथ-साथ नींबू, मधु, सुपारी, पान के पत्ते, बेंत तथा कुछ औषधि एकत्रित करते हैं तथा इन वस्तुओं की बाहरी लोगों के साथ साझेदारी करते हैं एवं इनके बदले में अपने लिए कपड़ा, सूखा, बीड़ी इत्यादि ले आते हैं। पूर्वी तटीय शोम्पेन मुख्य रूप से साझेदारी कैम्पवलवे तथा पश्चिमी तटीय शोम्पेन निकोबारी वस्ती से करते हैं तथा इस कार्य के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान को स्थानान्तरित होते रहते हैं। शोम्पेन मौसम के अनुरूप भी अपनी बस्ती को स्थानान्तरित करते हैं क्योंकि ये जहां बस्ती बनाते हैं वहां के आस-पास के पेड़ पौधों को काट कर आग जलाने तथा आवश्यक कार्य हेतु उपयोग करते हैं जिसके फलस्वरूप झोपड़ी के ऊपर वृक्षों की छाया कम होती है तथा वर्षा का जल भी झोपड़ी में आता है इस कारण वे इस स्थान को बदल देते हैं।

शोम्पेन बस्ती में यदि कोई व्यक्ति बीमार पड़ जाता है तो भी ये लोग इस बस्ती को बदल देते हैं। जब भी किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है उस स्थान को ये छोड़ देते हैं। इन सभी तरह के स्थानान्तरण की प्रक्रिया में वे पूर्व स्थान पर अनुकूल वातावरण होने के बाद पुनः लौट सकते हैं परन्तु मृत्यु हो जाने की स्थिति में वे उस स्थान पर कभी नहीं जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झोपड़ी बनाने के साथ-साथ इन्हें बेंत के बास्केट, पेड़ों के छालों के ट्रे, नौका बनाना, अपने उपयोग के लिए कपड़ा बनाना तथा खाना बनाने के लिए भट्ठी बनाना, भली भांति आता है।

बेंत की बास्केट ये अपनी आवश्यकतानुसार छोटी तथा बड़ी बनाते हैं तथा इनमें अपने आवश्यकता के उपयोग की वस्तुए रखते हैं। नावों की रचना ये निकोबारी के सामान ही करते हैं परन्तु इनके नाव निकोबारी के नाव की तुलना में छोटे होते हैं। इनकी नाव की लम्बाई ६ फुट से १० फुट लम्बी तथा चौड़ाई मध्य में ३ फुट के लगभग होती है जिसके द्वारा ये मछली का शिकार तथा यातायात करते हैं। इसमें औसत दो व्यक्ति यात्रा कर सकते हैं।

पूर्वी तटीय शोम्पेन पश्चिमी तटीय शोम्पेन की तुलना में कमजोर तथा बहुत ही रोगों से ग्रसित होते हैं। इनमें फेफड़े तथा चर्म रोगों की अधिकता है। डा० पी० के० सोंधी ने १९५२ में इस क्षेत्र का भ्रमण करने के बाद यह बताया कि इस क्षेत्र के शोम्पेन दमा से बुरी तरह प्रभावित हैं।

शोम्पेन जनजाति की पूरी जनसंख्या हमेशा पान सोपारी, सूखा, चूना तथा बीड़ी का सेवन अधिक मात्रा में करते हैं जिससे इनके दाँत प्राय: काले रहते हैं तथा इनकी सफाई करने का कोई प्राविधान नहीं है। ये अपनी झोपड़ी के आस पास ही कभी-कभी सफाई करते हैं तथा बगल में ही लगा देते हैं। झोपड़ी के पास ही मल मूत्र का त्याग करते हैं, तथा हमेशा थूकते रहते हैं। ये दांत की सफाई नहीं करते हैं। स्नान तथा कपड़ों की सफाई कभी-कभी झरने के पास पानी ले आने के समय पानी में डुबकी लगा कर लेते हैं परन्तु प्रत्येक दिन दो तीन बार सर को केवल धोते हैं, परन्तु इनके इन क्रिया-कलापों का कोई नियम तथा प्राविधान नहीं है।

शोम्पेन खाद्य पदार्थों में केवल फल तथा वुम्मो को छोड़ कर सभी चीजों को उबाल कर, रोस्ट करके तथा फ्राई करके खाते हैं। सभी प्रकार के भोजन निर्माण में जल का ही माध्यम मुख्य रूप से होता है। शोम्पेन बस्तियों में पारस्परिक विधि द्वारा बनायी गयी भट्ठी का उपयोग पेन्डुनस उबालने में करते हैं यह भट्ठी प्रेशर कुकर की तरह का कार्य करती है। इस भट्ठी की आकृति नौका के समान होता है इसकी लम्बाई ५ मीटर, चौड़ाई ६० से०मी० तथा गहराई ७० से०मी० है तथा दोनों सकरे किनारों को लकड़ी के खम्भो पर रोका जाता है। यह भट्ठी धरातल से ३० से० मी० की ऊँचाई पर होती है। जहां से आग लगाई जाती है। इन भट्ठियों के दोनों किनारों की दीवालों को पौधों की छाल से ढक देते हैं। एक छाल के ऊपर दूसरे छाल को ३ फुट चढ़ा कर बेंत से सिलाई कर देते हैं। इसमें पेन्डुनस को इस भट्ठी में रख कर पानी डालते हैं तथा चौड़ी पत्तियों से सख्त ढक देते हैं जिससे भाप बाहर नहीं निकल सकती और पेन्डुनस उबल जाने के बाद खाने के कार्य में उपयोग किया जाता है। एक प्रचलित विधि यह भी है कि झोपड़ी के प्लेटफार्म के एक किनारे पर १० से १५ से० मी० मोटी मिट्टी की तह १० से ८० से० मी० चौड़े भाग को फैलाते हुए बिछा देते हैं तथा इस पर तीन पत्थर के टुकड़ों को रख कर रोस्ट करने और भूनने के उपयोग में लाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोम्पेन प्राचीन काल से ही अपने कपड़े स्वयं बनाते हैं तथा पुरुष व स्त्री दोनों कमर के नीचे के भाग को ढक कर रखते हैं। इन कपड़ों के बनाने में पेड़ों के छाल का उपयोग करते हैं। इसे पेड़ का कपड़ा कहते हैं। इस कपड़े का औसतन आकार २×१ मीटर होता है। वृक्ष के छाल को कुछ समय तक धूप में सुखाने के बाद इसे लकड़ी के टुकड़े से खूब पीटते हैं तथा इसके तन्तुओं को मुलायम करने के बाद स्वच्छ जल से भिगोकर सुखा लेते हैं तथा पहनने के लिए उपयोग करते हैं। यह कपड़े को पीटने की प्रक्रिया ६–८ घंटे तक चलती है। इस कपड़े के साथ ही ये कुछ आभूषण भी बनाते हैं। इनके आभूषणों में मुख्यतया गले के समुद्रीय छोटे-छोटे शोलों के माले तथा कान में २ इंच लम्बी तथा आध से० मी० परिधि के लकड़ी के टुकड़े पहने रहते हैं।

हारपून ये स्वयं बनाते हैं यह एक नोक से लेकर ५ नोक तक का होता है जो ६" से ८" तक लम्बा तथा औसत ३ मीटर लम्बे मजबूत बेंत के लट्ठे से लगा रहता है। शोम्पेन की आर्थिक क्रिया कलाप मुख्य रूप से दैनिक जीवन के उपयोग होने वाले वस्तुओं पर आधारित है। अपने आर्थिक क्रिया कलापों में खाद्य पदार्थों को इकट्ठा करना, शिकार करना, मछली पकड़ना, पालतू जानवरों का उपयोग, बागवानी, इत्यादि सम्मिलित हैं। इन क्रिया कलापों की अवधि में ये कुम्मा को खाने के लिए उपयोग करते हैं जिसका वृक्ष केले जैसा होता है और स्वाद में पत्ता गोभी के समान लगता है। पीने के पानी के रूप में बेंत का पानी उपयोग करते हैं। इनके आर्थिक क्रिया कलापों के लिए निश्चित समय तथा अवधि नहीं होती है परन्तु सामान्यतया शुष्क मौसम में ये आर्थिक क्रिया कलापों के लिए बाहर जाते हैं। बागवानी करने का कोई स्पष्ट लक्ष्य इनके अन्दर नहीं दिखाई देता परन्तु अपने चारों तरफ के पेन्डुनस व खाद्य पदार्थों के लिए उपयोग में आने वाले पौधों की देखभाल करते हैं। खाद्य पदार्थों के इकट्ठा करने की इनकी प्रवृत्ति नहीं है। कभी-कभी वर्षा काल में एक-दो दिन के लिए खाद्य पदार्थ इकट्ठा कर लेते हैं। आर्थिक क्रिया कलापों में समूह का बोध प्रायः नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झाबुआ जिले की भील एवं भिलाला जनजाति का सामाजिक एवं आर्थिक संगठन

डा० जी० पी० पटेल

परिचय

मध्य प्रदेश के झाबुआ जिले में भील एवं भिलाला जनजाति के लोग निवास करते हैं। इसके अलावा पटलिया जनजाति के लोग भी रहते हैं परन्तु इनकी संख्या बहुत कम है। इस जिले में ९०% से भी अधिक भील एवं भिलाला रहते हैं। झाबुआ जिला इन्दौर से १५० कि. मी. दूर अहमदाबाद सड़क पर स्थित है। यहां का समीपस्थ रेलवे स्टेशन मेघनगर है मेघनगर रतलाम से झाबुआ मात्र १६ कि. मी. है। मेघनगर रतलाम से १०० कि. मी. दूर है और बड़ोदा रेलवे लाइन पर है। इस जिले में बरसात कम होती है।

झाबुआ जिला ५ तहसीलों में बंटा है।

१ मेघनगर
२ थांदला
३ पेटलाबाद
४ अलीराजपुर
५ जोबट

यहां की भूमि उपजाऊ नहीं है। अधिकांश भूमि पथरीली है बरसात में मक्का बो देते हैं जो कि यहां की मुख्य फसल है।

झाबुआ जिले के आदिवासियों का मुख्य त्यौहार भगोरिया है जो कि काफी प्रसिद्ध है। यह फागुन माह में मनाया जाता है। भगोरिया को देखने बहुत दूर दूर से लोग आते हैं। पत्रकारों एवं फोटोग्राफरों का जमघट लगा रहता है। यहां के लोग अपराधी प्रवृत्ति के होते हैं।

डा० जी० पी० पटेल, मानववैज्ञानिक, भोपाल (म० प्र०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गरीबी बहुत ज्यादा पाई जाती है। कुछ लोगों को दो दो तीन तीन दिन भोजन नहीं मिलता। शराब यहां की संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग है। सभी उम्र के लोग शराब पीते हैं।

रहन सहन एवं आदतें

यहां के आदिवासी पुरुष एवं बच्चे लंगोटी लगाये रहते हैं। पूरा शरीर खुला रहता है। औरतें घुटने के ऊपर साड़ी पहने रहती हैं। ५० वर्ष से ज्यादा उम्र की औरतों का कमर के ऊपर का भाग खुला रहता है। जवान महिलायें ब्लाउज पहनती हैं। हाथों में गले में लोहे और चांदी दोनों से मिलकर बने हुए जेवरात पहनती हैं। विवाहित महिलायें पैरों में लगभग १ किलो वजन का टोडल पहनती हैं। ग्राम पटेल की पत्नी ५ से ६ किलो वजन का जेवरात पहनती है। इस जनजाति के लोग स्वभाव से क्रोधी होते हैं। सबसे ज्यादा अपराधी प्रवृत्ति के लोग अलीराजपुर तहसील एवं जोबट तहसील के हैं। यहाँ सबसे ज्यादा हत्यायें एवं लूटपाट हुआ करती है।

ये लोग ४-५ दिन में एक बार नहाते हैं। इन्हें अपने माता पिता, भाई बहनों के प्रति स्नेह नहीं रहता। परन्तु अपनी पत्नी को बहुत चाहते हैं। यदि कोई व्यक्ति इनकी पत्नी के साथ छेड़छाड़ कर दे तो ये लोग हिंसा करने पर उतारू हो जाते हैं।

सरकारी कर्मचारियों से बात करना पसंद नहीं करते। जब किसी गांव में शासकीय जीप पहुंचती है तो अधिकांश ग्रामों के लोग गांव छोड़कर भाग जाते हैं। ऐसे ग्रामों की संख्या कट्ठीवाड़ा विकास खंड एवं कल्याणपुरा विकासखंड में अधिक है। इसके अलावा झाबुआ विकास खंड के कालापीपल एवं भोचरा ग्रामों में एवं इसके आसपास के ग्रामों में इस प्रकार की घटना प्रकाश में आई है। पेटलाबाद तहसील एवं थांदला तहसील के भील एवं भिलाला तुलनात्मक दृष्टि से काफी सभ्य पाये गये। इनकी आर्थिक स्थिति भी ठीक है। पक्की सड़क के किनारे के ग्रामों के लोग सभ्यता के काफी नजदीक पहुंच गये हैं। परन्तु जो गांव पक्की सड़क से दूर हैं वहां के आदिवासी अभी भी सभ्यता से सैकड़ों वर्ष पीछे हैं।

ये लोग परिवार नियोजन से बहुत डरते हैं। जब कोई शासकीय जीप इनके ग्राम में आती है तो सबसे पहले वह यह प्रश्न करते हैं क्या परिवार नियोजन के लिये आये हैं? ऐसा प्रतीत होता है कभी इनसे परिवार नियोजन की ज्यादती की गई होगी। ये लोग अपना बड़ा परिवार बनाये रखना ज्यादा पसन्द करते हैं क्योंकि यहां का जीवन बहुत कठिन है। इस लिये ये लोग बड़ा परिवार पसंद करते हैं। वे लोग आमतौर पर एक से अधिक पत्नियां रखना पसंद करते हैं। ये आपस में मिल जुल कर रहती हैं। किसी प्रकार का आपस में तनाव नहीं रहता। पटलिया जनजाति के लोग काफी सभ्य हैं। पटलिया जनजाति कल्याणपुरा विकासखंड में सबसे अधिक हैं। ये लोग कल्याणपुरा विकासखंड के ग्राम संदला में बहुत रहते हैं। इनका रहन सहन भील एवं भिलाला से ऊंचा है। पुरुष महिलायें एवं बच्चे भी शराब पीते हैं। शराब के अलावा ताड़ी बहुत पीते हैं। खाने को उतना महत्त्व नहीं देते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितना कि शराब को। खाना भले न मिले यदि शराब या ताड़ी मिल जाये तो बहुत प्रसन्न रहते हैं। पानी गंदा पीते हैं क्योंकि पीने के पानी की संपूर्ण जिले में बहुत बड़ी समस्या है। लोग काफी दूर-दूर से पानी लाते हैं। कट्ठीवाड़ा एवं अलीराजपुर क्षेत्र में गंदा पानी पीने से नारू की बीमारी का प्रकोप बहुत अधिक है।

प्रत्येक आदिवासी महिला गुदना गुदवाती है। गुदना सौंदर्य का प्रतीक माना जाता है। हाथ पर और मुहं पर ज्यादा से ज्यादा गुदना पाया जाता है।

शारीरिक बनावट

भील जनजाति में पुरुषों की औसत ऊंचाई ५.४" है एवं भिलाला जनजाति में पुरुष ५.६" हैं, एवं औसत वजन ४० से ४५ कि. ग्रा. रहता है। महिलाओं का औसत वजन ३८ से ४४ कि. ग्रा. रहता है। भील सांवले एवं भिलाला गोरे रंग के होते हैं। ये लोग हमेशा अपने साथ तीर एवं धनुष रखते हैं। शुरू से ही तीर चलाने का प्रशिक्षण दिया जाता है। भिलाला जनजाति की महिलायें काफी खूबसूरत होती हैं। पुरुष एवं महिलायें दोनों खेतों में काम करने एवं मजदूरी करने जाते हैं।

महिलाओं की स्थिति

इस समाज में महिलाओं की स्थिति अच्छी है। जब किसी घर में लड़की पैदा होती है तो खूब खुशियां मनाई जाती है क्योंकि वधु मूल्य प्रथा है। महिलायें कभी भी पंचायत की सदस्य नहीं बन सकतीं, पैतृक सम्पति का अधिकार इन्हें नहीं रहता। यदि कोई लड़की किसी युवक को चाहती है तो वह उसके साथ भाग जाती है। उस युवक को वधू मूल्य चुकाना पड़ता है।

मकान

ये लोग अस्थाई झोपड़ा बना लेते हैं क्योंकि गरीबी इतनी ज्यादा है कि बड़ा मकान बनाने में असमर्थ हैं। २ या ३ कमरे के मकान पेटलावाद तहसील एवं चांदला तहसील के आदिवासियों में पाये गये हैं। वहां की भूमि उपजाऊ है परन्तु इसके अलावा संपूर्ण झाबुआ जिले में एक कमरे का अस्थाई झोपड़े का मकान देखा गया। उसी कमरे में खाना बना लेते हैं एवं उसी में सो जाते हैं। विवाह के पश्चात लड़का अपना अलग झोपड़ा बनाकर रहने लगता है। इस जनजाति के लोगों की यह विशेषता है। ये लोग अपनी जहां कृषि योग्य भूमि रहती है वहीं मकान बनाकर रहने लगते हैं। इस प्रकार एक गांव २ या ३ भागों में विभक्त रहता है। यहां के ग्रामों का औसत क्षेत्रफल ६ या ७ कि. मी. तक होता है।

खान-पान

संपूर्ण झाबुआ जिले में मक्का की रोटी एवं उड़द की उबली दाल खाई जाती है। ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग शाम को मक्के का आटा पानी मिलाकर उबाल लेते हैं इसे ये लोग रावड़ी कहते हैं । इसी को खाते हैं । ताड़ी के मौसम में सिर्फ ताड़ी पी जाती है । इन दिनों अधिकांश घरों में भोजन नहीं बनाया जाता, सारे दिन ताड़ी पीते रहते हैं । ताड़ी का मौसम १५ मार्च से १५ मई तक रहता है । शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों प्रकार का भोजन करते हैं । गाय, भैंस, बैल आदि भी चोरी करके उन्हें मार कर खा जाते हैं । कट्ठीवाड़ा में घने जंगलों के आदिवासियों ने बताया कि वे दो तीन तीन दिन तक भोजन नहीं करते क्योंकि उनके पास खाने को कुछ नहीं है । जब बरसात शुरू होती है उस समय इनको खाने की समस्या सुलझती है । बच्चा पैदा होने के बाद बच्चे की मां को रावड़ी दी जाती है यह पानी में मक्का का आटा मिलाकर बनती है । इन लोगों ने बताया कि यह आसानी से पच जाती है इसलिये ७ या ८ दिन तक सिर्फ रावड़ी ही दी जाती है ।

अधिकांश ग्रामों में यह देखा गया है कि जिस कमरे में सोते हैं उसी कमरे में जानवरों को भी रखते हैं । जैसे गाय, भैंस, बकरी, मुर्गा, मुर्गी, बैल आदि क्योंकि रात्रि में चोर आते हैं, वे इन जानवरों को चुराकर ले जाते हैं एवं खा जाते हैं । मिर्च मसाला बिल्कुल नहीं खाते हैं । एक मक्के की रोटी का वजन २०० ग्राम से २५० ग्राम तक रहता है । शासन की ओर से अधिकांश ग्रामों में दलिया एवं सोयाबीन मुफ्त वितरित किया जा रहा है । परन्तु इसका लाभ जो ग्राम मुख्य सड़क से काफी दूर हैं वहां नहीं पहुंच रहा है । कुपोषण बहुत ज्यादा पाया गया है । ९० प्रतिशत से भी अधिक बच्चें कुपोषण के शिकार हैं । जब बच्चा पैदा होता है उसे १ वर्ष से १ १/२ वर्ष तक सिर्फ मां के दूध पर निर्भर रहना पड़ता है । फिर इसके बाद उसे दिन में एक या दो बार रावड़ी दी जाती है । मां अपने बच्चे को सुबह दूध पिलाकर मजदूरी या खेत पर काम करने चली जाती है शाम को लौटती है । इस प्रकार बच्चे को पर्याप्त मात्रा में दूध नहीं मिल पाता । इसके अलावा पूरक भोजन भी १ १/२ वर्ष की उम्र के बाद दिया जाता है इस कारण कुपोषण बहुत ज्यादा है । इन लोगों में विटामिन ए की कमी बहुत अधिक पाई जाती है । कुपोषण होने का दूसरा कारण यह भी है ये लोग हमेशा गन्दे पानी का इस्तेमाल करते हैं । स्वास्थ्य विभाग द्वारा प्रदत्त दवाइयों का इस्तेमाल कभी नहीं करते ।

भगोरिया

संपूर्ण झाबुआ जिले में भगोरिया के त्यौहार का महत्व सबसे अधिक है । ४-५ माह पूर्व भगोरिया त्यौहार की तैयारी प्रारम्भ हो जाती है । यह त्यौहार प्रतिवर्ष होली के माह में मनाया जाता है । जिस दिन साप्ताहिक बाजार होता है उसी दिन यह त्यौहार मनाया जाता है । आदिवासी लोग सजधज कर नये कपड़े पहेन कर एवं साथ में बड़े बड़े ढोल नगाड़े लेकर आते हैं । प्रत्येक जाति के बच्चे एवं महिलाओं के चेहरे पर बहुत खुशी दिखाई देती है । ये लोग बाजार में आकर जलेबी एवं भजिये खाते हैं इसके बाद पान खाते हैं । इस भगोरिया को देखने बड़े बड़े राजनैतिक नेता पत्रकार, एवं फोटोग्राफर बहुत दूर दूर से आते हैं झाबुआ जिले में अलीराजपुर चाँदपुर एवं राणापुर का भगोरिया काफी प्रसिद्ध हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये लोग खूब नाचते एवं गाते हैं। जब कोई जवान लड़की किसी जवान लड़के पर पान थूक देती है इसका अर्थ यह लगाया जाता है कि वह लड़की उस युवक को चाहती है एवं वे दोनों भाग जाते हैं। कुछ दिनों तक साथ रहने के पश्चात अपने गांव वापस आ जाते हैं। गांव की पंचायत वधू मूल्य निश्चित करती है, उसके अनुसार उस युवक को वधू मूल्य चुकाना पड़ता है। यदि रुपये नहीं हैं तो वह अपनी संपत्ति बेचता है। इसके बाद भी पूर्ति नहीं होती तो पंचायत निर्णय करती है कि उस युवक को अपने सास ससुर के घर कितने दिनों काम करना है। उस अवधि तक उसे अपने सास ससुर के घर मजदूरों जैसा काम करना पड़ता है अवधि पूरी होने के पश्चात वह अपनी पत्नी को ले जाता है एवं अपना नया घर बसा लेता है।

भगोरिया का सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से काफी महत्व है। इस माह ये लोग मजदूरी पर नहीं जाते। खेती का काम भी बन्द रहता है।

विवाह

आमतौर पर लड़कियों का विवाह १४ वर्ष की आयु के बाद एवं लड़कों का १८ वर्ष के बाद किया जाता है। विवाह का प्रस्ताव हमेशा लड़के वाले की तरफ से आता है। विवाह की संपूर्ण प्रक्रिया 'बड़वा' माध्यम से संपन्न कराई जाती है। 'बड़वा' एक पुरोहित का कार्य होता है। यह वंशानुगत होता है। संपूर्ण ग्राम के लोग इसकी हर बात मानते हैं कोई भी महिला बड़वा नहीं बन सकती। विवाह की तिथि निश्चित होने के बाद वर पक्ष के लोग वधू के घर बारात लेकर आते हैं साथ में औरतें एवं बच्चे भी आते हैं और वर पक्ष वाले अपने साथ खूब शराब, मुर्गा, बकरा आदि लाते हैं। ये लोग मांसाहारी भोजन करने के साथ-साथ में शराब भी खूब पीते हैं। इस समय औरतें भी खूब शराब पीती हैं बच्चे भी शराब पीते हैं और खूब नाच गाने होते हैं। वर पक्ष को वधू मूल्य चुकाना पड़ता है। तलाक बहुत कम होते हैं।

यदि कोई लड़का बहुत गरीब है तो वह अपनी पसन्द की लड़की को भगाकर ले जाता है और पंचायत के निर्णय अनुसार सास ससुर के घर तक निश्चित अवधि तक कार्य करता है। इसके बाद अपनी पत्नी को अन्यत्र लेजाकर घर बसा लेता है।

कभी कभी युवक युवती का प्रेम चलता है और इसी बीच लड़की गर्भवती हो जाती है तो पंचायत उस लड़की से पूछती है यह किसका बच्चा है। उस व्यक्ति को उस युवती के साथ विवाह करना पड़ता है।

कानून व्यवस्था

प्रत्येक ग्राम में ग्राम पटेल रहता है जिससे प्रायः आपस के झगड़े निपटा लिये जाते हैं। ग्रामवासी ग्राम मुखिया की बहुत इज्जत करते हैं। प्रथाओं एवं परम्पराओं का मानना प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्तव्य समझता है। यदि कोई व्यक्ति प्रथाओं परम्पराओं का उल्लंघन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है तो उसे दंडित किया जाता है। यदि किसी व्यक्ति को जेल हो जाती है तो जेल से लौटने के पश्चात उसे सम्पूर्ण ग्राम को भोजन खिलाना पड़ता है।

अपराध

इस जनजाति के लोग बहुत अपराधी प्रवृत्ति के होते हैं। अपराध करना इनकी आदत बन गई है। मुख्यतः झाबुआ विकास खण्ड का काला-पीपल मोयरा के आसपास के ग्राम एवं संपूर्ण अलोराजपुर तहसील के ग्राम के लोग बहुत अपराधी प्रवृति के होते हैं। कई बार यह देखा गया है कि लोग बस एवं ट्रक के ड्रायवरों को तीर मार देते हैं एवं लूट लेते हैं। चट्ठीवाड़ा विकासखंड के जमानिया ग्राम के आस पास एवं भाभरा विकासखंड के ग्राम में भी अपराध की कई घटनायें देखी गई हैं। इसके अलावा आमुआ ग्राम के आस पास भी कई घटनायें प्रकाश में आई हैं। जिले में सबसे ज्यादा अपराध अलोराजपुर तहसील में पाये गये हैं। जावट, अलीराजपुर तहसील में कई ग्राम ऐसे मिले हैं जहाँ हर परिवार का कोई न कोई सदस्य जेल में था। यहाँ पिता पुत्र की, पुत्र पिता की, पति पत्नी की, पत्नी पति की हत्या कर देती है। अधिकांश अपराध के मामले मार्च से जून तक होते हैं। इस मौसम में ये लोग ताड़ी बहुत पीते हैं। नशा आने पर लूटपाट हत्या कर देना आम बात है। दूसरा कारण यह है कि गर्मी के मौसम में जीविकोपार्जन कठिन रहता है। भुखमरी फैली रहती है इसलिये लूटमार ज्यादा होती हैं। कई बार बसें एवं ट्रक लूट लिये जाते हैं। इन क्षेत्रों में शाम होने के पूर्व सभी अपने-अपने घर वापस आ जाते हैं। कई बार शाम के अंधेरे में लूटपाट हो जाती है। यहाँ के साप्ताहिक बाजार १ बजे समाप्त हो जाता है क्योंकि अपराधी क्षेत्र होने के कारण शाम होने के पूर्व सभी लोग अपने गंतव्य स्थान पर पहुंच जाना चाहते हैं। यहाँ की महिलायें भी अपराध करने में पीछे नहीं हैं। बरसात शुरू होने के पश्चात अपराध अपने आप धीरे-२ कम हो जाते हैं।

अर्थ-व्यवस्था

मुख्यतः ये लोग कृषि एवं मजदूरी करते हैं। काम न मिलने के कारण झाबुआ एवं आस पास के लोग इन्दौर एवं कोटा (राजस्थान) मजदूरी करने चले जाते हैं और बरसात शुरू होने पर वापस आ जाते हैं। अलोराजपुर, जोबट कठीबाड़ा के लोग बड़ौदा, अहमदाबाद, सूरत मजदूरी करने जाते हैं। दीपावली के पूर्व या कुछ दिन बाद पुनः चले जाते है। बरसात में खाने का अभाव रहता है। बरसात में मक्के के भुट्टे खाते हैं। हरी सब्जियों के पत्ते एवं जड़ें भी खाते हैं। इस क्षेत्र में बरसात बहुत कम होती है। कठीबाड़ा को छोड़कर सम्पूर्ण झाबुआ जिले में वृक्ष नहीं होते, इस कारण गर्मी बहुत पड़ती है एवं बरसात नहीं होती। वृक्ष ज्यों ही बड़े होते हैं ये लोग काट देते हैं एवं जलाने में उपयोग कर लेते हैं।

झाबुआ जिले की कंटकनाथ परियोजना बहुत प्रसिद्ध है। यह एक प्रकार की मुर्गे की जाति है यह काले रंग का रहता है इसका खून भी काला एवं हड्डिया भी काली रहती हैं। शासन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस परियोजना को बहुत विस्तृत कर रहा है। इसमें बहुत से लोगों को रोजगार मिला है औद्योगिक दृष्टिकोण से यह क्षेत्र बहुत पिछड़ा हुआ है। पिछले वर्ष मेघनगर में एक उद्योग प्रारंभ किया गया, कुछ आदिवासियों को रोजगार प्राप्त हुआ है। काम न मिलने के कारण ये लोग अपना गांव छोड़कर भाग जाते हैं। इसके अलावा प्रत्येक ग्राम में एक दुकान है। दुकानदार काफी आर्थिक शोषण करता है। महुये के बीज, चिरोंजी इत्यादि काफी सस्ते भाव में खरीदता है एवं ब्याज पर रुपये देता है जिस की दर बहुत ऊंची रहती है।

स्वास्थ्य

यहाँ के आदिवासियों के चेहरे को देखकर उम्र का पता लगाना बहुत कठिन है। उनकी औसत उम्र ४५ वर्ष से ५० वर्ष रहती है। ९० प्रतिशत से भी अधिक बच्चे कुपोषण से ग्रस्त पाये गये। ये लोग सरकारी दवाइयों पर भरोसा नहीं करते। इनका परम्परागत चिकित्सक 'बड़वा' रहता है। जब कोई बीमार हो जाता है सर्वप्रथम वह 'बड़वा' के पास जाता है। यदि वह अस्पताल जाने की अनुमति दे देता है तभी वह अस्पताल जाते हैं। अधिकांशतः अस्पताल नहीं जाते। भूत प्रेत पर ज्यादा विश्वास करते हैं। देवी देवताओं की नाराजी से बीमारियां हो जाती हैं ऐसा ये लोग मानते हैं। कई दिनों तक पूजा में लगे रहते हैं देवी को प्रसन्न करने हेतु सारे बकरे, बकरी, मुर्गा, मुर्गी काट कर देवी पर चढ़ा देते हैं।

इस क्षेत्र की मुख्य बीमारियाँ इस प्रकार हैं। अलीराजपुर, कठोवाड़ा, जोबट क्षेत्रों में गंदा पानी पीने के कारण अधिकांश लोग नारू नामक बीमारी से प्रभावित हैं। मेघनगर के आस पास के क्षेत्रों में टी० बी० के मरीज बहुत हैं। त्वचा की बीमारी, छोटी माता, हैजा, आंखों की बीमारी, मलेरिया, पेट की बीमारी बहुत ज्यादा पाई जाती है।

त्वचा की बीमारी ठीक करने हेतु ये लोग जामुन के वृक्ष की छाल को घिसकर लगाते हैं। इसके अलावा बच्चे पपीते से जो दूध निकलता है उसे त्वचा पर लगाने से ठीक हो जाते हैं ऐसी धारणा है। कुछ लोग घाव पर पत्थर को घिस कर लगा लेते हैं। इस प्रकार के कई उदाहरण झाबुआ से १४ कि० मी० दूर अंतेवेलिया नामक ग्राम में देखे गये। हैजा हो जाने पर एक विशेष प्रकार की जड़ पानी में घिस कर पी जाते हैं। पेट की बीमारी को ठीक करने हेतु बरसात में सेंटीपीड नामक कीड़े को ताबीज में रखकर गले में बांध लेते हैं यदि शरीर के किसी अंग में सूजन आ जाती है तो उस अंग को ये लोहे को गर्म करके उस अंग में छुआ देते हैं। अर्थात उस अंग को ये जला देते हैं। मुर्गे एवं बकरे का ताजा खून प्रसव के बाद दे दिया जाता है इनकी ऐसी धारणा है इससे कमजोरी दूर हो जायेगी।

ईसाई मिशनरी का प्रभाव

झाबुआ से ३० कि० मी० दूर कटठीवाड़ा एवं मेघनगर सड़क मार्ग पर गोपालपुरा नामक ग्राम में ईसाइयों के द्वारा मिशनरी केन्द्र बनाया गया। इसमें अस्पताल, छात्रावास एवं स्कूल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां पर ईसाईयों का समूह निवास करता है जो इस क्षेत्र के लोगों को प्रलोभन देकर धर्म परिवर्तन करता रहा है। इस क्षेत्र के काफी लोगों ने अपना धर्म परिवर्तन कर लिया है। इन लोगों के रहन सहन में थोड़ा सुधार पाया गया है।

सामाजिक परिवर्तन

शासन ने बहुत से ८वीं पास आदिवासियों को शिक्षक बना दिया है। शासन की ओर से कई परियोजनायें चल रही हैं परन्तु विकास की दर कुछ बहुत कम है। जो शासकीय सेवा में आ गये हैं उनके रहन सहन में बहुत सुधार हुआ है, परन्तु इन लोगों ने अपना सरनेम बदल लिया है, एवं बहुत कम अपने मूल ग्राम को जाते हैं। अपने रिश्तेदारों एवं माता पिता से भी स्नेह नहीं रखते यह प्रायः देखा जाता है। पक्की सड़क के किनारे के व्यक्ति सरकारी दवाईयों पर भरोसा करने लगे हैं। कई स्कूल एवं सामुदायिक कल्याण योजनायें खोली गई हैं परन्तु यह देखा गया है कि ये लोग रात्रि में छात्रावास से भाग जाते हैं। शासन से ऋण भी लेने लगे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक समीक्षा

हिमाचल प्रदेश : लोक संस्कृति और साहित्य, लेखक डा० गौतम शर्मा 'व्यथित', नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट आफ इण्डिया, पृष्ठ + २१४. मूल्य १३-५० रुपये ।

समीक्षक : **दीपक त्यागी, भारतीय मानव विज्ञान सर्वेक्षण, दक्षिण क्षेत्र, मैसूर ।**

आज के इस बदलते युग में मानव समुदाय के इतिहास, पौराणिक कथाओं और किंवदंतियों आदि को समायोजित करना एक महत्वपूर्ण कार्य है। विशेष रूप से उन समुदायों का, जो विकास के प्रथम चरण में है और/या पार्थक्य (आइसोलेशन) में रह रहे हैं। क्योंकि मानव के सांस्कृतिक, सामाजिक तथा जैविकीय उद्विकास को समझने के लिये हमें मानव के हर पहलुओं को समझना होगा और उन्हें क्रमबद्ध करके ही मानव (समुदायों) का सम्पूर्ण चित्रण प्रस्तुत किया जा सकता है। लेखक का इस पुस्तक में हिमाचल प्रदेश की लोक संस्कृति तथा साहित्य को प्रस्तुत करने का प्रयास सराहनीय है।

इस पुस्तक, जिसमें हिमाचल प्रदेश में रहने वाले लोगों (समुदायों) की लोक संस्कृति तथा साहित्य प्रस्तुत किया गया है, को ग्यारह अध्यायों (प्रदेश और लोग; पौराणिकी और मिथक; धर्म और जादू; प्रथाएं एवम् परम्पराएं; मेले, पर्व और त्यौहार; भाषा और बोलियां; मौलिक साहित्य; लोक कलाएं तथा मनोरंजन; लोक नृत्य, संगीत तथा वाद्य; परिशिष्ट) में विभाजित किया गया है। परिशिष्ट में कुछ लोक-गीत, लोक गाथा, लोक कथा, पहेलियां, कहावतें, स्वर लिपियां क्रमबद्ध की गई हैं। संक्षेप में दी गई इस सामग्री का अपना एक महत्व है।

पुस्तक में हिमाचल प्रदेश की सांस्कृतिक, सामाजिक आदि विविधताओं का बहुत संक्षिप्त वर्णन दिया गया है। जिससे प्रदेश की एक झलक मात्रा मिलती है। यह पुस्तक आम जनता के लिए लिखी गई लगती है। यदि लेखक ने प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में निवास करने वाले विभिन्न समुदायों को आधार बनाकर उनका अलग-अलग विवरण दिया होता तो ज्यादा अच्छा होता और अन्त में उनका सार एक अध्याय में प्रस्तुत कर सकते थे। क्योंकि प्रदेश में सांस्कृतिक विविधता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक है परन्तु फिर भी प्रदेश की अपनी एक संस्कृति है और जिसे हिमाचली कहा जा सकता है। अनेकता में एकता निहित है।

पुस्तक में कुछ टाईप की त्रुटियां भी पाई गई हैं (जैसे देखें पृष्ठ ५, ३७, ८२ आदि)। कई जगहों पर पर स्थानीय शब्द का प्रयोग किया गया है यदि इसे शब्द संग्रह (ग्लोसरी) में उनके अर्थ के साथ दिया जाता तो ज्यादा अच्छा होता। परिशिष्ट में दी गई सामग्री जहाँ से उद्धृत की गई है, के स्थान को नामांकित कर उसे और विशिष्टता प्रदान की जा सकती थी। यदि पुस्तक की व्यावहारिकता पर ध्यान दें तो कहा जा सकता है कि यह पुस्तक हिमाचल प्रदेश की लोक संस्कृति और साहित्य की एक झलक प्रस्तुत करती है जिससे प्रदेश निवासियों तथा उनके रीति-रिवाजों का एक आभास (आइडिया) प्राप्त होता है। पुस्तक की भाषा तथा वर्णन अच्छा है। जो लोग हिमाचल प्रदेश की लोक संस्कृति और साहित्य जानने के इच्छुक हैं, उनके लिए यह पुस्तक उपयोगी है। ऐसी पुस्तकें समाज को विभिन्न क्षेत्रों के बारे में ज्ञान प्रदान करेंगीं।

नोट :—इस अंक में प्रकाशित लेख 'अर्थशास्त्र एवं समाजशास्त्र—प्रो० डी० पी० मुखर्जी के चिंतन पर आधारित एक विश्लेषण' में किन्हीं अपरिहार्य कारणों से पृष्ठ संख्या एवं फोलियो अंक के अनुरूप नहीं हो सके हैं। असुविधा के लिए क्षमा।

●

मानव का अगला अंक संयुक्तांक रूप में शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरातात्त्विक नृविज्ञान

गोपाल शरण

अपनी पुस्तक, 'मेथड ऐण्ड थ्योरी इन अमेरिकन आर्कियॉलॉजी', में विली और फ़िलिप्स ने ब्रिटिश इतिहासज्ञ मेटलैण्ड के प्रसिद्ध वक्तव्य का इस प्रकार रूपांतरण किया है : "यदि अमरीकी पुरातत्त्व नृविज्ञान नहीं है तो वह कुछ भी नहीं है।" पुरानी दुनिया में, सामान्य रूप से, और भारतवर्ष में खास तौर से, पुरातत्त्व के लिये इस तरह का वक्तव्य इस समय देना संभव नहीं है। कुछ पुरातत्त्वविद् स्पष्ट रूप से कहते हैं कि वे नृवैज्ञानिक नहीं हैं। हम इसके लिये उनको दोष नहीं दे सकते हैं। हमें पहले यह ध्यानपूर्वक देखना चाहिए कि पुरानी दुनियाँ में किन-किन प्रकार के पुरातात्त्विक अध्ययनों की व्यवस्था है।

पुरानी दुनियाँ में पुरातत्त्व की एक धारा का सम्यक् आरंभ यूरोपीय पुनर्जागरण (यूरोपियन रेनेसाँ) की एक बौद्धिक विचारधारा में खोजा जा सकता है। इस समय से प्राचीन यूनान, रोम और बाइबिल में वर्णित क्षेत्र में अनेक यूरोपीय विद्वान अधिक रुचि लेने लगे थे। स्थापत्यकला, भव्यभवन निर्माण कला, तथा अन्य कलात्मक वस्तुओं की ओर लोगों का अधिक रुझान हुआ। उपर्युक्त प्राचीन क्षेत्रों और उनकी सभ्यताओं में रुचि लेने का परिणाम क्लासिकी पुरातत्त्व (क्लौसिकल आर्कियॉलॉजी) का आरंभ है।

क्लासिकी पुरातत्त्व और कला-इतिहास एक-दूसरे के बहुत निकट हैं। प्राचीन यूनानी और रोमन लोगों के बारे में पहले से संचित ज्ञान का भंडार था उसमें वृद्धि करना क्लासिकी पुरातत्त्व का प्रमुख काम है। क्रिस्टॉफ़र हॉक्स ने जिसे "ग्रंथाधारित" (टेक्स्ट-एडेड) पुरातत्त्व कहा है उसका सर्वोत्तम उदाहरण है क्लासिकी पुरातत्त्व। ऐतिहासिक काल के सभी प्रकार के पुरातत्त्व—जिनमें क्लासिकी पुरातत्त्व भी शामिल है—"ग्रंथाधारित" हैं। इन सबका आधार वे पुरावशेष (ऐण्टिक्विटीज़) या पुरातात्त्विक सामग्री है जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ज्ञात या ज्ञातव्य नहीं हैं।

प्रोफ़ेसर गोपाल शरण, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, मानव विज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त ऐतिहासिक ग्रंथों की प्रत्यक्ष सहायता से ग्रंथाधारित पुरातत्त्व मानव के प्राचीन क्रिया-कलापों के परिणामों को खोज निकालने का काम करता है। इनमें कुछ पुरावशेष ऐसे होते हैं जो पाये न जाने पर भी भुलाए नहीं जा सकते क्योंकि जिन कार्यों के फलस्वरूप उनका निर्माण हुआ होता है उनकी याद बनी रहती है। ऐसे पुरावशेषों की जानकारी पुरातात्त्विक शोध से मिल सकती है। कुछ भूली हुई वस्तुओं के फिर से मिल जाने के बाद उनसे मिलने वाली जानकारी से तथा उनके बारे में पठनीय उपलब्ध ऐतिहासिक लिखित प्रमाणों में वर्णित क्षेत्रों से उन्हें संबद्ध किया जा सकता है। इतिहास द्वारा प्रमाणित ऐसे उदाहरणों से ग्रंथाधारित पुरातत्त्व पुरावशेष-प्रकार बना सकता है जिनकी सहायता से कहीं भी पाये जाने वाले अपरिचित पुरावशेषों को भी पहचानना संभव होगा। इस प्रकार की तुलना पुरातत्त्वविद् की अपनी मर्ज़ी पर नहीं बल्कि उन ग्रंथों में पाये जाने वाले वक्तव्यों पर आधारित होगी जो इस बात की गारंटी देंगे कि ऐतिहासिक संस्कृतियों में तत्समान अवशेष पाये गए। इन प्रामाणिक उदाहरणों के प्रकारों और श्रेणियों का एक क्रम बनाया जा सकता है लेकिन अंत में ये सभी श्रेणियाँ मान्य ग्रंथों द्वारा पुष्ट इतिहास से संबद्ध होनी चाहिए। इस प्रकार का कोई प्रमाण पूर्व-निश्चित और ज्ञात तिथियों को खंडित नहीं कर सकता है। कई वर्षों से यह चेष्टा हो रही है कि हमारे महान् धर्माख्यानों (रामायण एवं महाभारत) में वर्णित कहानी का ठोस पुरातात्त्विक आधार खोज निकाला जाय। यदि उत्खनन द्वारा ग्रंथों के विवरण के अनुरूप पुरातात्त्विक अवशेष मिलते हैं तो यह ग्रंथाधारित पुरातत्त्व का एक और उल्लेखनीय उदाहरण होगा। यह स्पष्ट है कि ग्रंथाधारित पुरातत्त्व के लिये जिस प्रकार की सुविज्ञता (एक्स्पर्टाइज़) की आवश्यकता होती है वह साधारणतः नृवैज्ञानिक प्रशिक्षण से प्राप्त नहीं हो सकती है। इसलिये ग्रंथाधारित पुरातत्त्व के किसी भी प्रकार को सामान्यतः सम्यक् योगदान दे सकने में नृवैज्ञानिक समर्थ नहीं है। अब हम पुरातत्त्व के अन्य प्रकार के अध्ययन और उसकी क्षेत्रीय परम्पराओं का परीक्षण करेंगे।

भारत में पुरातात्त्विक अध्ययन उन्नीसवीं शताब्दी में तत्कालीन अंग्रेज़ प्रशासकों द्वारा शुरू किया गया। ब्रिटिश पुरातत्त्वविद् सर मॉर्टिमर ह्वीलर एक दक्ष उत्खनक थे और भारत के वरिष्ट पुरातत्त्वविदों को वैज्ञानिक उत्खनन का प्रशिक्षण उन्होंने ही दिया था। भारतीय पुरातत्त्व के अधिकांश विशेषज्ञ इतिहास के विद्यार्थी रहे हैं। अभी भी भारत के विश्वविद्यालयों में स्नातक-स्तर पर पुरातत्त्व नहीं पढ़ाया जाता और स्वतंत्र पुरातत्त्व विभाग अपवाद हैं। इतिहास के एक वैकल्पिक उप-विषय के रूप में पुरातत्त्व प्रायः प्राचीन (भारतीय) इतिहास, संस्कृति और पुरातत्त्व नामक विभागों में पढ़ाया जाता है। इन विभागों में अधिकांश पाठ्यक्रम इतिहास से संबंधित होता है और कुछ पर्चे पुरातत्त्व के बारे में भी होते हैं। भारतीय विश्वविद्यालयों के नृविज्ञान (ऐन्थ्रोपॉलॉजी) विभागों में प्रायः सभी जगहों पर प्रागितिहास या प्रागैतिहासिक पुरातत्त्व पर एक पर्चा स्नातक और स्नातकोत्तर विद्यार्थियों को अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाता है। जहाँ कहीं भी प्रागैतिहासिक पुरातत्त्व में विशेषीकरण की सुविधा उपलब्ध है वहाँ उपर्युक्त अनिवार्य पर्चे के अलावा नृविज्ञान के विद्यार्थी को कई पुरातत्त्व-विषयक पर्चे पढ़ने पड़ते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय पुरातात्त्विक सर्वेक्षण एक सौ वर्ष से भी अधिक समय से विद्यमान है। सर्वेक्षण, विश्वविद्यालयों तथा अन्य संस्थानों में कई दशकों से पुरातात्त्विक शोध का काम होता आ रहा है। फिर भी भारत में विश्वविद्यालय स्तर पर पुरातत्त्व को एक स्वतंत्र विषय की तरह मान्यता नहीं मिल पाई है। पुरातत्त्व के एक स्वतंत्र विषय के रूप में अस्तित्व के प्रश्न पर विचार करते समय इन तथ्यों को भूलना नहीं होगा।

सर मॉर्टिमर व्हीलर द्वारा ब्रिटेन के बाहर—खासतौर से पूर्व में—किये गए पुरातात्त्विक शोध को हेय दृष्टि से देखना उनकी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का परिचायक है। अपनी 'आर्कियॉलॉजी फ्राम द अर्थ' नामक पुस्तक में उन्होंने यह लिखा है कि ग्रेटब्रिटेन में पुरातत्त्व का जैसा आरंभिक प्रशिक्षण दिया जा सकता है वैसा दुनिया में कहीं और संभव नहीं है। वे पुरातत्त्व को तथ्य प्राप्त करने वाला विषय मानते थे। वह प्राकृतिक विज्ञानों द्वारा दी गई सामग्री का उपयोग करता है और उन्हीं विषयों से सहायता की अपेक्षा भी करता है। कुछ पुरातत्त्वविद् अपने विषय को प्राकृतिक विज्ञानों के अनुरूप बनाने की चेष्टा भी करते हैं। मॉर्टिमर व्हीलर पुरातत्त्व को एक स्वतंत्र विषय की तरह मान्यता दिलाने के इच्छुक थे। वे इसको एक अविभक्त धारा मानते थे। उसको वे 'प्रागैतिहासिक', 'आद्यैतिहासिक' या 'ऐतिहासिक' खण्डों में बाँटने के विरुद्ध थे। पुरातात्त्विक तथ्य एक प्रकार की ऐतिहासिक सामग्री हैं ऐसा मानते हुए, चाइल्ड पुरातत्त्व को कई असंबद्ध विषयों का जमघट मात्र नहीं बल्कि इतिहास का स्रोत समझते थे। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ग्लिन डेनियल के अनुसार पुरातत्त्व पादार्थिक सामग्री के आधार पर इतिहास-लेखन और उसका अध्ययन है। एक अन्य ब्रिटिश पुरातत्त्वविद्, स्टूअर्ट पिगॉट, का मत है कि पुरातत्त्व एक ऐसा विषय है जिसके अध्ययन के लिये साधना और आत्मसंयम की आवश्यकता पड़ती है। पुरातत्त्वविद् को कभी-कभी निराशाजनक सामग्री के आधार पर इतिहास गढ़ना पड़ता है जो बहुत कठिन काम है।

पुरातत्त्व के एक पृथक् विषय के अस्तित्व के बारे में ब्रिटिश पुरातत्त्वविद् एकमत नहीं हैं। सर मॉर्टिमर व्हीलर पुरातत्त्व को विशिष्ट प्रविधियाँ अथवा पद्धति मात्र मानने को बेकार बात कहते हैं। स्टूअर्ट पिगॉट का भी यही मत है। लेकिन कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में पुरातत्त्व के भूतपूर्व प्रोफेसर ग्रैहेम क्लार्क का दृढ़ मत था कि पुरातत्त्व को कालांतर में विद्यमान समाजों के बचे-खुचे अवशेषों की सहायता से उनकी भूतकालीन स्थिति का चित्र बनाने की पद्धति माना जाना चाहिए न कि अध्ययन का एक पृथक् विषय। उनका मत था कि मूलभूत विषय प्रागितिहास है। इसका समर्थन बेल्जियमवासी पुरातत्त्वविद्, द लात (De Laet) ने भी किया है। ग्लिन डेनियल ने कहा है कि "प्रागितिहासज्ञ पुरातत्त्वविद् है और सब समय उसे पुरातत्त्वविद् होना ही होगा" क्योंकि पुरातत्त्वविद् भूतकाल की पादार्थिक सामग्रियों का इस उद्देश्य से अध्ययन करता है कि उनसे ऐतिहासिक तथ्य निकाले जा सकें।

यद्यपि ब्रिटिश विद्वानों में पुरातत्त्व की स्वतंत्र सत्ता के बारे में मतभेद पाया जाता है लेकिन पुरातत्त्व और इतिहास के संबंध के बारे में मतभेद नहीं है। लेनार्ड वूली के अनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरातत्त्व और इतिहास के बीच कोई निर्धारित सीमा रेखा नहीं है। स्टूअर्ट पिगॉट तो पुरातत्त्व को इतिहास की एक शाखा ही मानते हैं। ग्रैहेम क्लार्क पुरातत्त्वविद् में इतिहास-बोध का होना आवश्यक मानते हैं। गॉर्डन चाइल्ड के अनुसार अन्य सभी इतिहासविज्ञों की तरह पुरातत्त्वविद् भी उस प्रक्रिया का अध्ययन और स्पष्टीकरण करता है जिससे मानव-जगत् का निर्माण हुआ है। ग्लिन डेनियल ने भी साफ़-साफ़ कहा है कि आज के पुरातत्त्वविद् का इतिहासज्ञ, होना ज़रूरी है। सभी प्रकार वस्तुओं के सिलसिलेवार अध्ययन के बाद इतिहास लिखना उसका काम है। क्रोबर-संपादित 'ऐन्थ्रोपॉलॉजी टुडे' में चाइल्ड और ग्रैहेम क्लार्क का तथा ब्रियू-संपादित 'वन हंड्रेड ईयर्स आव् ऐन्थ्रोपॉलॉजी' नामक पुस्तक में ग्लिन डेनियल का लेख छपा है लेकिन वहाँ पुरातत्त्व और नृविज्ञान के संबंध में विली और फ़िलिप्स के उपर्युक्त उद्गार के समान कोई बात नहीं कही गई है और न इतिहास के समान ही पुरातत्त्व के साथ नृविज्ञान के निकट संबंधों की ही चर्चा की गई है।

ग्लिन डेनियल ने अपनी पुस्तक 'ए हंड्रेड ईयर्स आव् आर्कियॉलॉजी' में आर्कियॉलॉजी शब्द के दो अर्थ बताये हैं। प्रथम, मनुष्य के प्रागैतिहासिक काल के पादार्थिक अवशेषों का अध्ययन करना। द्वितीय, पुरातत्त्व मनुष्य के भूतकालीन जीवन के पादार्थिक अवशेषों का अध्ययन करना। दूसरा अर्थ सामान्य पुरातत्त्व के लिये है जिसमें ऐतिहासिक और प्रागैतिहासिक दोनों ही प्रकार के पुरातत्त्व सम्मिलित हैं। डेनियल सभी पादार्थिक अवशेषों को पुरातत्त्व कहते हैं। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि पुरातत्त्वविद् स्थान और काल की वास्तविकता की अवज्ञा नहीं कर सकता है। विशेषीकरण अनिवार्य है लेकिन कभी-कभी कोई विशेषज्ञ अपनी विशेषता को ही संपूर्ण पुरातत्त्व मान लेने की गलती भी कर सकता है। ऐसे व्यक्ति को क्षमा कर देना चाहिए।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में क्लासिकी पुरातत्त्व से भिन्न एक अन्य पुरातात्त्विक परंपरा शुरू हुई थी। इसके पीछे भी पुनर्जागरण का ही एक विचार था जिसके अनुसार प्रस्तर, कांस्य और लौह पर आधारित तीन काल-क्रमों की बात की गई। डेन्मार्क में बिल, टीले और महापाषाण पाये गए। चूँकि वे प्राचीन यूनान अथवा रोम से संबंधित स्मारक नहीं लगते थे इसलिये उनके बारे में स्वाभाविक जिज्ञासा उत्पन्न हुई। विद्वान् लोग तुरन्त इसकी पहचान न कर सके लेकिन इसके बारे में वे एकमत थे कि उन्हें उन लोगों ने बनाया होगा जो भूतकाल में वहाँ निवास करते थे। इन पुरावशेष को परिचित ऐतिहासिक सामग्रियों के साथ जोड़ देने में अधिक समय नहीं लगा। जिस समय उपर्युक्त सामग्रियाँ मिली थीं उस समय डेन्मार्क, स्वीडेन तथा अन्य यूरोपीय देशों में कोई आदिम (जनजातीय) लोग निवास नहीं करते थे। अतः इन पुरातात्त्विक अवशेषों से प्राप्त होने वाली सूचना को डेनिश इतिहास के साथ जोड़ देने में कोई कठिनाई नहीं हुई। ज्ञात डेनिश इतिहास काल के साथ प्रागितिहास के जुड़ जाने से डेन्मार्क-वासियों का भूतकाल पहले से कहीं अधिक लंबा हो गया। राष्ट्रीयता की जड़ों को मज़बूत करने वाली इस प्रक्रिया से किसी को आपत्ति नहीं हो सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकार चाहे प्रजातंत्रीय हो अथवा तानाशाही, पुरातत्त्व को सदा प्रशासनिक मान्यता मिली है। इसका एक प्रमुख कारण लोगों की अपनी राष्ट्रीय उत्पत्ति के बारे में उत्सुकता रही है। पुरातत्त्व की इस धारा का उदय राष्ट्रीय इतिहास को अधिक से अधिक पीछे ढकेलने की इच्छा के कारण हुआ। लेकिन इस बात की आशंका सदा रहेगी कि अधिक आत्मश्लाघा और अतिविकसित राष्ट्रीय आकांक्षा के कारण पुरातात्त्विक तथ्यों को तोड़ा-मरोड़ा भी जा सकता है और पुरातत्त्व का दुरुपयोग हो सकता है। इटली के तानाशाह मुसोलिनी का यह दृढ़ मत था कि प्राचीन रोमन साम्राज्य की महानता को आधुनिक ढाँचे में पुनर्जागृत करने के उनके उद्देश्य की पूर्ति के लिये पुरातत्त्व एक उपयुक्त साधन बन सकता था।

क्लासिकी पुरातत्त्व और अन्य सभी प्रकार के ऐतिहासिक पुरातत्त्व ग्रंथाधारित हैं। इस प्रकार के अध्ययन में ऐतिहासिक काल की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष लिखित सामग्री, और ऐसे पुरावशेषों की सहायता से जिनकी ऐतिहासिकता सिद्ध है, मनुष्य के भूतकालीन क्रिया-कलापों का चित्र प्रस्तुत किया जाता है। जिन क्रियाओं के कारण इन पुरावशेषों का जन्म हुआ उनके बारे में पहले से मालूम तो होता है लेकिन पुरातात्त्विक सहायता से उसके बारे में अपेक्षाकृत पूरी जानकारी पाई जा सकती है। इसके विपरीत प्रागैतिहासिक पुरातत्त्व "ग्रंथ-रहित" (टेक्स्ट-फ्री) होता है। इसमें जिन लोगों के क्रिया-कलापों के परिणामस्वरूप बने पादार्थिक अवशेष बच रहते हैं उनके बारे में उनके निर्माताओं की राय जानने का कोई सम्यक् साधन नहीं है। ग्रंथों तथा अन्य लिखित सामग्री के अभाव में इनकी प्राप्ति के पूर्व इनके बारे में कोई सूचना उपलब्ध नहीं होती है। ऐतिहासिक काल के पहले के युग में मनुष्य के सांस्कृतिक और जैविक विकास-क्रम से उसके जीवन के बारे में जाना जा सकता है। मनुष्य की भौतात्त्विक पुरातनता और खोद कर निकाली गई पादार्थिक सामग्री इन तथ्यों की पुष्टि करते हैं। प्रागैतिहासिक प्राप्तियों के निहितार्थ समझने का ढंग ऐतिहासिक स्मारकों और कला-कृतियों के अध्ययन से सर्वथा भिन्न है क्योंकि इनके बारे में पहले से ऐतिहासिक ज्ञान उपलब्ध रहता है। इसीलिये क्रिस्टॉफ़र हॉक्स ने प्रागैतिहासिक पुरातत्त्व को "ग्रंथ-रहित" कहा है।

ग्रंथरहित पुरातत्त्व की मुख्य मान्यताएँ इस प्रकार हैं। जो पुरावशेष मिलते हैं वे मनुष्यों के कार्यों से बनते हैं ! इन कार्यों को मानकों (आदर्शों = नॉर्म्स) में आबद्ध पाया जाता है। संस्कृति ऐसे ही आदर्शों का एक संकलित रूप है। संस्कृति को स्थान और काल की सीमाओं में बाँधा जा सकता है। तत्संबद्ध पादार्थिक सामग्रियों के आधार पर संस्कृति को पहचाना जा सकता है। सभी तथ्य एक समान नहीं होते हैं इसलिये प्रकारों का निर्माण करना पड़ता है। आदर्शों (मानकों) का महत्त्व इसलिये है कि इनके बिना पदार्थों की तुलनात्मकता संभव नहीं हो सकेगी। क्रिस्टॉफ़र हॉक्स तुलनात्मकता को आवश्यक मानते हैं। पुरातात्त्विक सामग्रियों की तुलना से ही पुरातत्त्वविद् आगमनात्मक (इंडक्टिव) तर्कों के माध्यम से उन मानव क्रियाओं तक पहुंच सकेगा जो इन पुरावशेषों के निर्माण के मूल कारण थे। हॉक्स इसको शुद्ध पुरातात्त्विक अनुमिति (इन्फ़रेन्स) की प्रक्रिया मानते हैं। उनका मत है कि चाहे कितना भी अधिक वैज्ञानिक उप-करण और बौद्धिक परिमार्जन उपयोग कर लिया जाय, पुरातत्त्व को उसी अनुमिति के रास्ते पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलना होगा और मनुष्य के क्रिया-कलापों में दृष्टव्य मानक (आदर्श) उसकी आधार-शिला होंगे। हॉक्स ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि मानक (नॉर्म) एक नृवैज्ञानिक सामान्यीकरण है जिसका आधार प्रौद्योगिकीय परंपरा में आदिम मानव की अत्यधिक रूढ़िवादिता है। इस धारणा के बिना पुरातत्त्व विषय ही खंडित हो जाएगा। ग्रंथरहित पुरातत्त्व प्रयोगात्मक (एक्सपेरिमेण्टल) वर्गीकरण पर निर्भर होने के कारण अधिक कठिन है। कठिनता इस कारण और बढ़ जाती है कि ग्रंथरहित पुरातत्त्व के सैद्धान्तिक पक्ष का कोई पूर्व निर्धारित आधार न होने के कारण अध्ययनकर्त्ता द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त ही महत्त्व रखता है। क्रिस्टॉफ़र हॉक्स यह बतलाते हैं कि १८८६ ई० में हुए प्रथम अंतर्राष्ट्रीय प्रागैतिहासिक सम्मेलन के समय से ही प्रागैतिहासिक पुरातत्त्व अपने को नृविज्ञान का एक अंग मानता है। मानव के प्राकृतिक इतिहास को वैज्ञानिक रंग देना इसका काम है। स्तरीकृत तथ्यों को उद्‌विकास के सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में परीक्षण कर और पुरातात्त्विक सामग्री को प्रकारों में वर्गीकृत कर इसको लागू किया गया।

अब हम लोग नई दुनिया में पुरातत्त्व की पृष्ठभूमि से परिचय प्राप्त करेंगे। क्रोबर ने एक जगह लिखा है कि अमरीकी भावना स्पष्ट रूप से इतिहास-विरोधी है। नई दुनिया में आने वाले अधिकांश अप्रवासी अपनी जन्मभूमि में यातना से बचने और नए देश में बेहतर जीवन की आशा लेकर आए थे। चूंकि ये अप्रवासी अमरीका में यूरोप के देशों से पहुंचे थे इसलिये सभी अमरीका-वासियों का एक ही भूतकालीन इतिहास नहीं हो सकता था। इसके अलावा अनेक लोग अपने भूतकालीन जीवन से ऊब चुके थे इसलिये उससे ऐतिहासिक संबंध जोड़ने को कदापि उत्सुक नहीं थे। इससे आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि वर्त्तमान् अमरीकी अपने विशिष्ट भूतकाल की नहीं बल्कि अस्पष्ट और सामान्य भूतकाल की ही कल्पना करते हैं।

जिसे हम अमरीकी इतिहास की तरह जानते हैं वह कोलंबस द्वारा नई दुनियाँ की खोज के बाद वहाँ जाकर बसने वाले गोरे अमरीकियों के कार्यों, उनकी संस्थाओं और उनके जीवन से संबंधित घटनाओं का विवरण है। इस सीमित अवधि के इतिहास को प्राचीन मध्यकालीन और आधुनिक कालों में बाँटने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। डेन्मार्क, स्वीडेन या पुरानी दुनियाँ के अन्य किसी देश की तरह अमरीकी इतिहास में प्रागितिहास जोड़कर इसकी अवधि को बढ़ाना संभव नहीं है। शायद इसीलिये अमरीकी नृवैज्ञानिक एवं पुरातत्त्वविद्, राबर्ट ब्रेडवुड, ने लिखा है कि अधिकांश गोरे अमरीकियों को भूतकाल सीधा और अनुत्साहवर्द्धक लगता है।

जब गोरे लोग नई दुनियाँ में पहले-पहल पहुंचे तो उन्होंने वहाँ के आदिम निवासी अमेरिकन इंडियन लोगों तथा उनके भूतकाल को अपने ही जीवन के परिप्रेक्ष्य में देखा। पहली खेप में आये गोरे लोग तो अमरीका में पहले से रह-रहे आदिवासियों को मनुष्य मानने के लिये भी तैयार नहीं थे। उनकी कल्पना में मनुष्य का संसार पश्चिमी मानव का संसार था। यूरोप से आये हुए अप्रवासियों ने शुरू-शुरू में बड़े-बड़े टीलों और विशाल भवनों के खंडहरों को अमेरिकन इंडियन लोगों से संबद्ध पाया। १६वीं और १७वीं शताब्दियों में अमेरिकन इंडियन लोग कहीं-कहीं बड़े शिविरों में रहते थे। १७वीं शताब्दी के अंत होते-होते उनका पुराना वैभव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाप्त हो चुका था। इस शताब्दी के बाद आने वाले गोरे लोगों ने अमेरिकन इंडियन लोगों को दयनीय अवस्था में छोटे-छोटे शिविरों में रहते पाया। उन्हें प्राचीन समृद्धि के द्योतक बड़े-बड़े स्मारकों के साथ तत्कालीन अमेरिकन इंडियन लोगों के भूतकाल को जोड़ना अटपटा-सा लगा होगा।

बहुत पहले के आवास-स्थलों का भूमि पर नामोनिशान नहीं था। टीलों, किलेबंदियों और चबूतरों के रूप में जो अवशेष विद्यमान थे उनके निर्माता तत्कालीन अमेरिकन इंडियन लोगों के पूर्वज रहे होंगे। १७वीं और १८वीं शताब्दियों में पश्चिमी मानव इतिहास को धार्मिक परिप्रेक्ष्य में देखने लगा था। उस समय का पश्चिमी विद्वान अमेरिकन इंडियन इतिहास को ईसाई परंपरा से अलग करके देखने को तैयार नहीं था। इसलिये अमरीका में मिले पुरावशेषों को अमेरिकन इंडियन लोगों से असंबद्ध और ईसाई-मूल का माना गया। अमरीकी स्वतंत्रता के साथ उत्पन्न हुआ अमरीकी ज्ञानोदय (अमेरिकन रेनेसाँ) अपने साथ दो विचार लाया। यह कि नई दुनियाँ में पाये गए पुरावशेष अमेरिकन इंडियन लोगों की कीर्त्तियाँ न होकर ईसाई लोगों की देन थे।

१७९१ ई० में जार्ज बार्ट्रम ने एक पुस्तक प्रकाशित की जिसका शीर्षक था 'ट्रैवेलस थ्रू नार्थ ऐण्ड साउथ कैरोलाइना, जार्जिया ऐण्ड फ्लोरिडा'। इस पुस्तक में पहली बार यह घोषणा की गई थी कि जो अवशेष अमरीका में पाये गए वे पुराने थे लेकिन ईसाई-जगत् से उनका कोई नाता नहीं था। अमेरिकन इंडियन लोगों के जीवन से जुड़े होने के कारण वे वहाँ के आदि-वासियों के इतिहास का अंग थे। जैसा कि पहले बताया जा चुका है इस पुस्तक के प्रकाशित होने के पहले इसके विपरीत मत व्यक्त किया गया था।

अमरीकी ज्ञानोदय यूरोपीय ज्ञानोदय से भिन्न था। अमरीकी स्वतंत्रता के साथ आया यह काल ऐसा था जिसमें दर्शन और सार्वजनिक हित दोनों को ध्यान में रखा गया था। टॉमस जैफ़र्सन, जो अमरीकी स्वतंत्रता के अग्रणी नेताओं में थे, का दृष्टिकोण बुद्धिवादी था। उन्होंने साफ़-साफ़ शब्दों में यह सवाल उठाया कि अमरीकी आदिवासी कहाँ से और कब नई दुनियाँ में आये थे। उनका निष्कर्ष था कि हालाँकि पहले लोगों को जहाज़रानी का सीमित ज्ञान होता था फिर भी यूरोप से अमरीका की समुद्री यात्रा संभव थी।

यह कहा जा सकता है कि १८१२ ई० में अमेरिकन ऐण्टिक्वेरियन सोसाइटी की स्थापना के साथ ही वहाँ पुरातत्त्व का भी आरम्भ हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी में अमरीकी ज्ञानोदय, जिसमें ज्ञान और तर्क को महत्त्व दिया गया था, के विरुद्ध प्रतिक्रिया के फलस्वरूप सामान्य बुद्धि, सामान्य व्यक्ति और सामान्य मान्यताओं को ज्ञान और उसकी पिपासा, शिक्षा-आदि के क्षेत्र से अलग किया गया और अनुभव को ज्ञान से अधिक महत्त्व दिया गया।

उन्नीसवीं शताब्दी में पुरातत्त्व के अध्ययन को और अधिक प्रश्रय मिला जब उस शताब्दी के मध्य में स्मिथसोनियन इन्स्टीट्यूशन की स्थापना हुई और उसके तत्त्वावधान में स्मिथ-सोनियन कॉण्ट्रिब्यूशन्स टु नॉलेज का प्रकाशन शुरू हुआ। हार्वर्ड विश्वविद्यालय में पीबॉडी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म्यूज़ियम आव् अमेरिकन आर्कियॉलॉजी ऐण्ड एथ्नॉलॉजी १८६७ ई० में स्थापित हुआ। अमेरिकन काँग्रेस ने १८७९ ई० में कानून बनाकर स्मिथसोनियन इन्स्टीट्यूशन की एक शाखा के रूप में ब्यूरो आव् एथ्नॉलॉजी की स्थापना की। इसका काम अमेरिकन इंडियन लोगों के बारे में जातिविज्ञानी (एथ्नोलॉजिकल) अध्ययन और शोध करना था। उन्नीसवीं शताब्दी होते होते शिक्षित, प्रशिक्षित और दीक्षित पुरातत्त्वविदों ने तथ्यों के आकलन के क्षेत्र में पूर्वगामी शताब्दी के लोगों से अधिक सुचारु रूप से काम किया।

१८९८ ई० में साइरस टॉमस ने अमेरिकन आर्कियॉलॉजी नामक पुस्तक प्रकाशित की। साइरस टॉमस के साथ मिल कर जार्ज मैकगी ने १९०५ ई० में 'प्रीहिस्टारिक नार्थ अमेरिका' नामक पुस्तक लिखी। उस समय के संजातिवृत्तीय (एथ्नोग्रैफिक) शोधों का परीक्षण कर ये लोग इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि पुरातत्त्व केवल अवशेषों का अध्ययन न होकर संस्कृतियों के स्वरूप का चित्रण करने में भी रुचि रखता है। साइरस टॉमस की पुस्तक में पुरातत्त्व के बारे में ऐसा मत व्यक्त किया गया है जो लगभग एक शताब्दी के बाद आज भी नृविज्ञान के विद्यार्थियों के लिये अनुकरणीय है। उन्होंने कहा कि जो लोग जीवित नहीं हैं उनके जीवन को उत्प्राणित करना तथा भूतकाल के लोगों, उनके क्रिया-कलापों, उनकी विशेषताओं और उनकी प्रथाओं को चित्रित करना पुरातत्त्व का काम है। इसे नोट करना होगा कि साइरस टॉमस ने कहा कि पुरानी दुनियाँ में इतिहास और प्रागितिहास एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। उनके अनुसार उत्तरी अमरीका में पुरातत्त्व के अध्ययन का सबसे अच्छा ढंग यह होगा कि ज्ञात अवस्था से धीरे-धीरे पीछे अज्ञात अवस्था की ओर बढ़ा जाय। वर्त्तमान आदिवासियों और उनके स्मारकों एवं कीर्त्ति स्तम्भों से शुरू कर हम एक-एक पग चल कर भूतकाल का क्रमिक चित्र प्रस्तुत करें। यह वक्तव्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि साइरस टॉमस की पुस्तक के प्रकाशित होने के साठ वर्ष बाद लिखे गए एक लेख में ब्रिटिश पुरातत्त्वविद्, क्रिस्टॉफ़र हॉक्स, ने पुरानी दुनियाँ के पुरातत्त्वविदों को यह परामर्श दिया है कि उन्हें वर्तमान काल की ज्ञात ऐतिहासिक स्थिति से क्रमशः पीछे की ओर चलना चाहिए क्योंकि इस भौगोलिक क्षेत्र में ऐसा नहीं किया गया।

यह याद रखना चाहिए कि बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में पुरातत्त्व एक स्वतंत्र अध्ययन-विषय के रूप में जाना-जाने लगा था। उपयुक्त पद्धति एवं समुचित सूचनाओं के आधार पर पुरातत्त्व आगे ज़रूर बढ़ा। विश्वविद्यालयों में विद्यार्थी पुरातत्त्व की शिक्षा पाने लगे। अमरीका में यह शिक्षा स्वतंत्र पुरातत्त्व विभागों की बजाय नृविज्ञान विभागों में दी जाती थी। यह स्पष्ट हो गया कि अमेरिकन इंडियन लोगों के जीवन का जो भी पक्ष था—चाहे वह उनकी वर्त्तमान स्थिति के बारे में हो या उनकी भूतकालीन अवस्था के बारे में—वह नृविज्ञान के अध्ययन की विषयवस्तु है।

अमरीकी पुरातत्त्व के बदलते हुए स्वरूप पर भी एक नजर डालनी होगी। १९३४ में एक संस्था की स्थापना हुई जिसका नाम था द सोसाइटी फ़ार अमेरिकन आर्कियॉलॉजी। इस दशक में वह दृष्टिकोण उभर कर सामने आया कि पुरातत्त्व का काम करने वाले लोगों के हाथों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ही पुरातात्त्विक कार्यों का नियंत्रण होना चाहिए। यह ऐसा दशक था जिसमें पुरातत्त्व को नृविज्ञान से अलग करने की पहल की गई हालाँकि ऐसा पूर्व-नियोजित ढंग से नहीं किया गया था। पृथक्करण के इस आंदोलन का आधार यह बतलाया गया कि नृविज्ञान के अन्य उपविभागों में जिस प्रकार की सामग्री की आवश्यकता होती है पुरातत्त्व के लिये उससे सर्वथा भिन्न सामग्री चाहिए। इसलिये पुरातत्त्व का नृविज्ञान से अटूट या अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। इस विचार-धारा के पनपने के साथ अमरीकी पुरातत्त्वविद् अपनी सामग्री का नृवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में निरूपण अपेक्षाकृत कम करने लगे। मैकर्न ने विशेष रूप से यह चेष्टा की कि नृवैज्ञानिक सिद्धान्त से पृथक् पुरातात्त्विक सिद्धान्त प्रतिपादित किये जायें।

इस पृथक्करण आन्दोलन पर रोक लगाने का प्रभावकारी काम किया वाल्टर डब्ल्यू टेलर ने। अपनी पुस्तक 'द स्टडी आव् आर्कियॉलॉजी' जो चौथे दशक में लिखी गई और १९४८ में प्रकाशित हुई में टेलर ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि पुरातत्त्व के विद्यार्थी को उसी प्रकार के निष्कर्षों की ओर बढ़ना चाहिए जैसा संस्कृति के विभिन्न पक्षों के बारे में नृविज्ञान के अन्य विद्यार्थी निकालते हैं। उनके अनुसार पुरातत्त्व विशेष प्रकार की प्रविधियों के समन्वय, अर्थात् वह पद्धति जिसके द्वारा हम सांस्कृतिक सूचना प्राप्त करते हैं, के अलावा कुछ नहीं है: उन्होंने अपने समुच्चय बोधक (कंजंक्टिव) पद्धति की चर्चा की और यह बताया कि पुरातत्त्वविद् जो कुछ भी अध्ययन सामग्री प्राप्त करता है उसका अंततोगत्वा संस्कृति पर प्रकाश डालना ही उद्देश्य होता है। अपनी विवादग्रस्त, किन्तु अत्यन्त प्रभावशाली पुस्तक के माध्यम से टेलर ने जो किया वह नृविज्ञान के दृष्टिकोण से बहुत महत्त्वपूर्ण काम था।

नई दुनियाँ में १९५० के दशक के पुरातत्त्व की स्थिति को बताने वाली पुस्तक है 'मेथड ऐण्ड थियरी इन अमेरिकन आर्कियॉलॉजी' जिसके लेखक थे हार्वर्ड विश्वविद्यालय के गॉर्डन आर० विली और फ़िलिप्स। इस पुस्तक के लेखकों ने साफ़-साफ़ कहा कि "यदि अमरीकी पुरातत्त्व नृविज्ञान नहीं है तो वह कुछ भी नहीं है।" दूसरे शब्दों में नृविज्ञान से पृथक् पुरातत्त्व का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता है। टेलर द्वारा पृथक्करण की प्रक्रिया पर रोक लगाने के काम को आरम्भ करने की पूर्णाहुति हुई विली और फ़िलिप्स की पुस्तक के द्वारा। १९६० के दशक में नृविज्ञान के सैद्धान्तिक पक्ष को बहुत अधिक महत्त्व देकर कुछ नवयुवक पुरातत्त्वविदों ने यह साबित करने की चेष्टा की कि उनके पूर्वगामी पुरातत्त्वविदों ने अवशेषों के प्राकृतिक गुणों को प्राथमिकता दी थी। ये लोग सांस्कृतिक प्रक्रिया का सफल चित्रण नहीं कर पाये थे। इस कारण पुरातत्त्व नृविज्ञान के सैद्धान्तिक पक्ष को समुचित योगदान नहीं कर पाया था। इस संबंध में एक नये दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने वाले लुई बिन्फ़ोर्ड और उनके सहयोगियों ने पुरातत्त्व की इस धारा को 'नव-पुरातत्त्व' नाम दिया।

यह निर्विवाद सत्य है कि गोरे लोगों के अमरीका में आकर बसने के बहुत पहले से अमेरिकन इंडियन लोग वहाँ रहते आये थे। पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्व के अमेरिकन इंडियन इतिहास के बारे में कोई लिखित सामग्री उपलब्ध नहीं है। अतः अमेरिकन इंडियन लोगों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूतकाल गोरे अमरीकी इतिहासकारों के अध्ययन का विषय नहीं बन पाया। जहाँ पुरानी दुनियाँ में प्रागितिहासज्ञ पुरातात्त्विक सामग्री को ऐतिहासिक क्रम और ढाँचे में ढाल कर इतिहास के क्षेत्र को और पीछे ले जाता था वहाँ नई-दुनियाँ में रहने वाले लोगों के जीवन को 'इतिहास-रहित' माना जाता रहा। जब यह तय हो गया कि अमरीका में पाये जाने वाले अवशेष ईसाइयों के नहीं बल्कि अमेरिकन इंडियन लोगों के हैं तो कोलंबस-पूर्व काल में रहने वाले अमरीका-वासियों के जीवन की प्राचीनता के बारे में संदेह नहीं रह गया। लेकिन भूतकाल में कितने पीछे तक जाया जा सकता था यह बात बीसवीं शताब्दी के आने तक निश्चित नहीं हो पाई थी। काल-क्रम निर्धारण का कोई सुनिश्चित तरीका नहीं तय हो पाया था इसलिये ऐतिहासिक दृष्टिकोण अमरीकी पुरातत्त्व में देर से स्थान पा सका।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि क्रमशः अमेरिकन इंडियन लोगों की संस्कृतियों का अध्ययन नृविज्ञान की ज़िम्मेदारी हो गई थी। इनकी प्रथाएँ, संस्थाएँ, भाषाएँ, धार्मिक विश्वासों एवं क्रिया-कलापों का अध्ययन पूरी तरह नृवैज्ञानिकों का काम हो गया था। अमरीकी नृवैज्ञानिकों को शीघ्र ही पता चल गया कि समकालीन अमेरिकन इंडियन लोगों के जीवन को ठीक तरह समझने के लिये ऐसी प्रभावकारी प्रविधियों का इस्तेमाल करना होगा जिससे उनके भूतकालीन जीवन को ठीक से चित्रित किया जा सके। इनके इतिहास का अध्ययन संजातिवृत्त-कार (एथ्नोग्रैफ़र) और पुरातत्त्वविद् दोनों का संयुक्त उत्तरदायित्व हो गया। इसलिये नई दुनियाँ में संजातिवृत्त (एथ्नोग्रैफ़ी) और पुरातत्त्व जिस प्रकार संबद्ध हो पाये वैसा पुरानी दुनियाँ में अभी तक नहीं हो पाया है।

अमरीकी नृवैज्ञानिकों ने धीरे-धीरे प्रायः सभी अमेरिकन इंडियन संस्कृतियों का अध्ययन कर डाला। सुव्यवस्थित ढंग से क्षेत्रीय वर्गीकरण भी किये गए। संस्कृतियों के केन्द्र बिन्दु की खोज के लिये संस्कृति-क्षेत्र (कल्चर एरिया) और क्रमिक-आयु-निर्धारण (एज ऐण्ड एरिया) नामक अवधारणाओं का इस्तेमाल किया गया। यह भी अनुमान लगाया गया कि किसी सांस्कृतिक केन्द्र से संस्कृति-विशेषक (कल्चर ट्रेट) सांस्कृतिक क्षेत्र की सीमा की ओर वृहत्तर वृत्तों की तरह बिकीरित हुए होंगे जिससे केन्द्रीय स्थल पर उसका प्रभाव सबसे गहन और सीमा पर सबसे कम होना चाहिये। क्रोबर का यह मत है कि १९१५ और १९३० के बीच अमरीकी आदिवासी संस्कृति का ऐतिहासिक विकास समझने के लिये तथ्यों के आकलन और उनकी व्याख्या के काम में संजातिवृत्त उत्खनन-पुरातत्त्व से कहीं आगे निकल गया था। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि उत्खनन-पुरातत्त्व और संजातिवृत्त के मिले-जुले प्रयत्नों से ही आदिवासी अमरीकी लोगों के भूतकाल के रहस्य पर से पर्दा उठना संभव हो सका।

अधिकांश संजातिवृत्तीय अध्ययन उस समय किये गये जब गोरे लोगों के सम्पर्क में आने से आदिवासी अमरीकी संस्कृतियों में काफ़ी परिवर्तन हो चुका था। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में भी कुछ ऐसे बूढ़े लोग मौजूद थे जो अपने बचपन में पारंपरिक अमेरिकन इंडियन संस्कृतियों के सदस्य रह चुके थे। वे लोग अपनी स्मृति के आधार पर पहले के सांस्कृतिक जीवन की झाँकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत करने की स्थिति में थे। ऐसे प्रौढ़ सूचनादाताओं की स्मृति के आधार पर तैयार की गयी भूतकाल की सांस्कृतिक झाँकी को 'स्मृति-संस्कृति' (मेमोरी कल्चर) के नाम से जाना गया। नई दुनियाँ में संजातिवृत्त और पुरातत्त्व के बीच तालमेल और इनके विशेषज्ञों के बीच तालमेल शायद इस तरह शुरू हुआ होगा। कुछ उत्साही नृवैज्ञानिकों को लगा होगा कि संजातिवृत्तीय अध्ययन से अमेरिकन इंडियन लोगों के भूतकालीन जीवन का जो चित्र खींचा जा रहा है वह अपर्याप्त है क्योंकि 'स्मृति-संस्कृतियों' को पूरी तरह विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। स्मृति-संस्कृति में जिन स्थलों की चर्चा की गई होगी यदि वहाँ पहुँचना संभव था तो कुछ नृवैज्ञानिक वहाँ पहुँचे भी होंगे। प्राप्त अवशेषों के परीक्षण के बाद और अधिक सूचना पाने की इच्छा के वशीभूत हो उत्खनन किया गया होगा। इस प्रकार संजातिवृत्तीय अध्ययन की पृष्ठभूमि में अमेरिकन इंडियन के भूतकालीन जीवन-संबंधी जानकारी में पुरातत्त्व द्वारा योगदान शुरू हो सका।

उपर्युक्त संदर्भ में कई स्थलों पर उत्खनन से केवल स्मृति-संस्कृति-संबंधी तथ्यों की पुष्टि ही नहीं हुई होगी वरन् आशा से अधिक सामग्री हाथ लगी होगी। क्रमशः ऐसे और अधिक प्रयत्नों के परिणामस्वरूप संजातिवृत्त और पुरातत्त्व के विशिष्ट किन्तु पूरक अध्ययनों से अनक्षर और तथाकथित 'इतिहास-रहित' समाजों के सांस्कृतिक इतिहास के बारे में जानने का एक नया ढंग शुरू हुआ। ऐसे अध्ययनों के परिणामस्वरूप अमेरिकन इंडियन संस्कृतियों की प्राचीनता धीरे-धीरे अधिक प्रतीत होने लगी और अमरीकी पुरातत्त्व का विस्तार-क्षेत्र भी बढ़ता गया। वर्तमान और ज्ञात अवस्थाओं से पीछे की ओर बढ़ते हुए अमरीकी पुरातत्त्वविद् धीरे-धीरे अमेरिकन इंडियन लोगों के अज्ञात भूतकाल पर प्रकाश डालने लगा। कुछ समय बाद उसे यह महसूस होने लगा कि पुरानी दुनियाँ की तरह ही नई दुनियाँ में भी मनुष्य शायद प्रागैतिहासिक काल से रहता आया है।

अमरीकी नृवैज्ञानिक मॉर्टन फ़्रीड ने पुरातत्त्वविदों द्वारा विशेष स्थलों के अनुसंधान को सामाजिक-सांस्कृतिक नृवैज्ञानिकों द्वारा विशिष्ट क़बीलों और समुदायों के अध्ययन से तुलना की है। क्रोबर का मत है कि आदिवासी अमरीकियों के सांस्कृतिक इतिहास को समझने में संजातिवृत्तीय अध्ययनों ने कम-से-कम उतना योगदान तो दिया है जितना कि पुरातात्त्विक अध्ययनों ने। पुरातत्त्वविदों से हमें संस्कृति-वर्धन का सही सिलसिला और उसके स्थानीय रूपांतरण का पता चलता है। इस ढाँचे को पूरा सांस्कृतिक वाह्य रूप देने और पूरे गोलार्द्ध में हुए विकास की लंबी रूपरेखा के पुनः कल्पन (रीकन्स्ट्रक्शन) के क्षेत्र में जातिवैज्ञानिकों (एथ्नॉलॉजिस्ट्स) ने पुरातत्त्वविदों के बराबर या शायद उनसे भी अधिक योगदान किया है।

संक्षेप में : जिस भूतकाल के अध्ययन का काम अमरीकी नृवैज्ञानिक-पुरातत्त्वविद् करते थे वह यूरोपीय नस्ल के गोरे अमरीकियों का भूतकाल न होकर अमेरिकन इंडियन लोगों के पूर्ववर्त्ती जीवन से संबद्ध था। पुरानी दुनियाँ के पुरातत्त्व का अध्ययन करने वाले अमरीकी नृवैज्ञानिक रॉबर्ट ब्रैडवुड ने ठीक कहा है कि "अमेरिकन इंडियन में रूमानी रुचि हो सकती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन उनके प्राचीन रस्मो-रिवाज़ अधिकांश (गोरे) अमरीकियों के सांस्कृतिक दाय (विरासत) का भाग नहीं बन सकते।" लिखित सामग्री के अभाव में सामान्य इतिहास नहीं लिखा जा सकता था। इस कारण कोलंबस-पूर्व की सभी सांस्कृतिक साक्षी पुरातत्त्व के अध्ययन का विषय बन गयी जो अमरीका में नृविज्ञान का अंश माना जाता है। साधारणतः पुरानी दुनियाँ के प्रागैतिहासिक पुरातत्त्व और आद्यैतिहासिक पुरातत्त्व जैसे उपविभागों की तरह नई दुनियाँ में पुरातत्त्व का विभाजन संभव नहीं है। पुरानी दुनियाँ का प्रागितिहास नई दुनियाँ के पुरातत्त्व के समान ग्रंथरहित है और दोनों ही पुरानी दुनियाँ के ग्रंथाधारित क्लासिकी पुरातत्त्व से सर्वथा भिन्न हैं। अमरीकी पुरातत्त्वविद् भी संस्कृति के अध्ययन में रुचि रखता है जैसा कि अन्य अमरीकी नृवैज्ञानिक करते हैं। संस्कृति किसी भी एक जनसंख्या के जीवन-यापन के ढंग और प्रतिमानों (पैटर्न्स) से संबंध रखती है, यह बात उत्खनन-पुरातत्त्वविदों के ऊपर भी उतनी ही लागू होती है जितनी अन्य नृवैज्ञानिक विशेषज्ञों के ऊपर। हाँ यह जरूर है कि पुरातत्त्वविद् को केवल अक्षय (नष्ट न हुए) अवशेषों से ही पूरी संस्कृति पर प्रकाश डालना पड़ता है।

मॉर्टन फ़ीड द्वारा बतलाई गई एक इकाई के अध्ययन में पुरातत्त्वविद् और सामाजिक-सांस्कृतिक नृवैज्ञानिक कार्यों में पाई जाने वाली समानता की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। पुरानी दुनियाँ की परम्परा से सर्वथा भिन्न, अमरीकी पुरातत्त्वविद् अपने अध्ययन में ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़े। पुरानी दुनियाँ के पुरातत्त्वविदों ने मनुष्य के भूतकाल के प्रागैतिहासिक, आद्यैतिहासिक और ऐतिहासिक सभी पक्षों को एक साथ और एक ही समय में जानना चाहा। सभी क्षेत्रों में इसके परिणाम समान रूप से प्रभावकारी नहीं रहे हैं। इस बात को ध्यान में रख कर ही आक्सफ़र्ड के प्रागितिहासज्ञ-पुरातत्त्वविद्, क्रिस्टॉफ़र हॉक्स, ने अमरीकी पुरातत्त्वविदों द्वारा अपनाई गई अध्ययन-शैली पुरानी दुनियाँ के लिये भी अपनाने की सलाह दी है जिसमें पुरातात्त्विक अध्ययन ज्ञात वर्त्तमान अवस्था से एक-एक पग अज्ञात भूतकाल की ओर बढ़ता है।

पुरातत्त्व को एक से अधिक दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है। ऐसा एक प्रयत्न निम्नलिखित है :

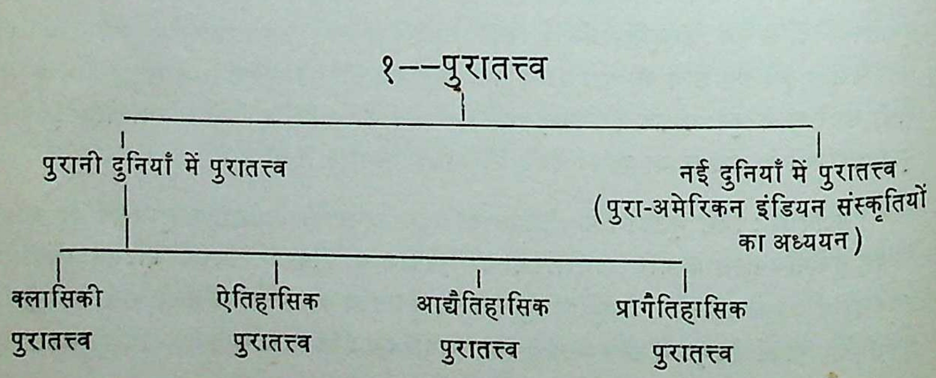

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

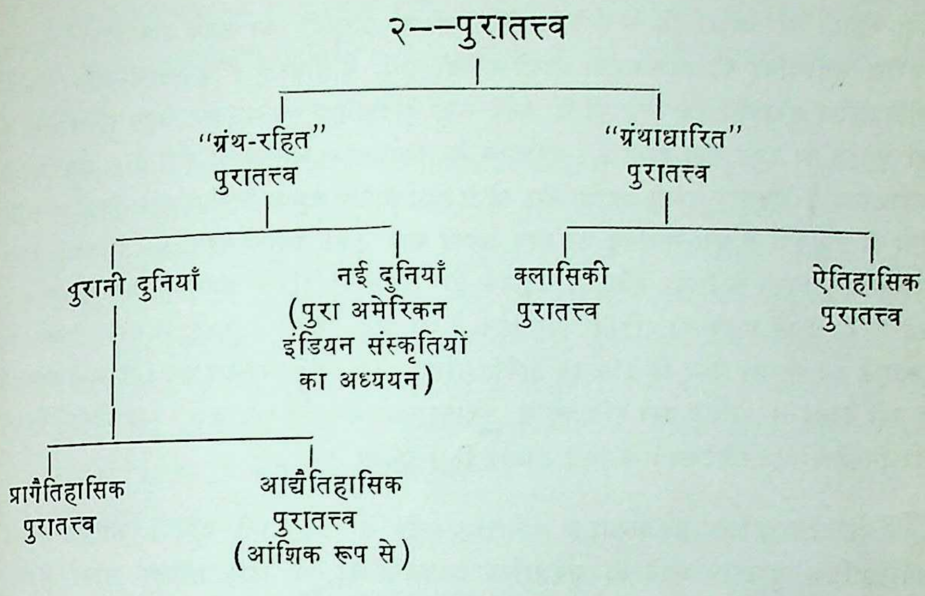

(२)

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो गया होगा कि पुरातत्त्व इतिहास भी है और नृविज्ञान भी। अब हम पुरातत्त्व के ऐतिहासिक और नृवैज्ञानिक पहलुओं पर क्रमशः प्रकाश डालेंगे। पुरातत्त्वविद् का एक काम यह है कि वह किसी एक भौगोलिक क्षेत्र में पाये जाने वाले स्तरीय अनुक्रमो (स्ट्रैटिग्रैफ़िक सीक्वेन्सेज़) का सविस्तार विवरण दे और इनके निर्माताओं की पहचान बताए। नई दुनियाँ के माने हुए एक विशेषज्ञ, गॉर्डन विली, का यह मत है कि तत्कालीन लिखित अभिलेख न होने पर भी एक निश्चित भौगोलिक—ऐतिहासिक अनुक्रम के स्पष्टीकरण तथा एक निश्चित काल और स्थान-संबंधी तथ्यों के निरूपण को इतिहास या इतिहास-लेखन (हिस्टोरियोग्रैफ़ी) की संज्ञा प्रदान की जानी चाहिए। पुरातत्त्वविद् नृविज्ञान से सीख सकता है। विली यह मानते हैं कि संजातिवृत्त (एथ्नोग्रैफ़ी) और जन इतिहास (एथ्नोहिस्ट्री) किसी विशिष्ट विन्यास की सूचना अवश्य दे सकते हैं लेकिन ऐतिहासिक पुनःकल्पन (हिस्टारिकल रीकान्स्ट्रक्शन) ही पुरातत्त्वविद् का प्रमुख काम रहेगा।

इतिहास के विद्यार्थी के ही समान पुरातत्त्वविद् भी 'कब' और 'कहाँ' प्रश्नों का उत्तर जानने में रुचि रखता है। दूसरे शब्दों में वह यह चित्रित करना चाहता है कि मनुष्य किस तरह वर्त्तमान स्थिति को पहुँचा। भूतत्त्वविद् और इतिहासकार की ही तरह पुरातत्त्वविद् भी काल-अनुक्रम जानना चाहता है। यदि इतिहासकार को किसी व्यक्ति विशेष की भूमिका स्पष्ट करना हो तो इस काम के लिये एक दशक का समय भी अच्छी अवधि है। लेकिन एक वंश के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रिया-कलापों का ब्योरा देने के लिये अर्द्धशताब्दी या शताब्दी का समय ठीक होगा। इसके विपरीत, भूतत्त्वविद् की काल-गणना लाखों-करोड़ों वर्षों में होती है। पुरातत्त्व—खास तौर से प्रागैतिहासिक पुरातत्त्व—के विद्यार्थी के लिये जहाँ ऐतिहाहिक कालानुक्रम बहुत छोटा होता है वहाँ भूतत्त्व का बहुत बड़ा होता है। पुरातत्त्व के लिये दोनों अनुपयोगी होते हैं। अतः अपनी आवश्यकता के अनुसार लम्बी-अवधि और छोटी तथा सापेक्ष अथवा निरपेक्ष काल-निर्धारण प्रविधियों की सहायता से पुरातत्त्वविद् को स्वयं अपना कालानुक्रम बनाना पड़ता है। ऐतिहासिक या क्लासिकी पुरातत्त्व के लिये इतिहास सहायक हो सकता हैं लेकिन प्रागैतिहासिक पुरातत्त्व के लिये नहीं। इसमें समय का परिमाप आवश्यक है जो इतिहास की सहायता से नहीं किया जा सकता है। हमने यह देखा कि इतिहास प्रागैतिहासिक पुरातत्त्व को कालानुक्रम (टाइम-सीक्वेन्स) तो नहीं दे सकता लेकिन क्या इतिहास से पुरातत्त्व को अनुमिति-योजना (इन्फ़रेन्स-मेकिंग) और निरूपण (इंटरप्रिटेशन) के लिये आधार मिल सकेगा ?

क्रिस्टॉफ़र हॉक्स का कहना है कि १८६० ई० से ही पुरानी दुनियाँ का 'ग्रंथरहित' प्रागैतिहासिक पुरातत्त्व अपने को नृवैज्ञानिक अध्ययन का एक अंश मानता आया है और मनुष्य के इतिहास को वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करना उसने अपना उद्देश्य बना रखा है। लिखित इतिहास के पहले के 'इतिहास' के पुनर्गठन के तीन मुख्य आधार थे : (१) स्तरीकरण के द्वारा स्थापित भौतात्त्विक दृष्टि से मनुष्य की प्राचीनता; (२) भौतिक वस्तुओं के प्रारूपिक (टाइपोलाजिकल) वर्गीकरण का वैज्ञानिक आधार और (३) उद्विकास—विशेष रूप से जैविक उद्विकास (बायोलाजिकल इवोल्यूशन) का सिद्धान्त। ये दोनों प्रागितिहास के मुख्य काम भी हैं।

"ग्रंथरहित" प्रागितिहास की अनुमिति-योजना जिस ज्ञान के सिद्धांत पर आधारित है उसकी कुछ स्वयंसिद्धियाँ (ऐक्ज़िएम्स) हैं। सभी प्राप्त पुरातात्त्विक साक्षियाँ मानव के कार्यों का ही परिणाम हैं। मानव के क्रियाकलापों को आदर्श के अनुरूप होना चाहिए। संस्कृति बनती है मानव क्रियाकलापों या उनसे उत्पन्न हुए वस्तुओं के अवलोकन से प्राप्त हुए आदर्शों के समुच्चय से। संस्कृति की स्थान-काल संबंधी सीमाओं का निर्धारण संभव है। पुरातत्त्व के विद्यार्थियों के लिये संस्कृति की पहचान और सीमांकन का आधार "पादार्थिक सामग्रियों की मानक सीमा" है। "मानक सीमा" के अंतर्गत प्ररूप (टाइप) की अवधारणा सम्मिलित है। कुछ पुरातत्त्वविद् उपकरणों को "जीवाश्म सूचक (फ़ासिल इंडेक्स)" मानते हैं। पुरातात्त्विक सामग्रियों की प्ररूपिका बनाते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि कि इन्हें इस्तेमाल करने वाले मानव समूह के स्थायी उद्देश्य क्या रहे होंगे और सफल तथा कुशल जीवन के लिये उन्होंने पारिस्थितिकी से किस प्रकार अनुकूलन किया होगा। आदर्शों (नार्म्स) की स्थापना के लिये भी सामग्रियों की मानक-परिधि का महत्त्व है। प्ररूपों में परिवर्तन सामाजिक-सांस्कृतिक विन्यास में पूर्णरूप से परिवर्तन का द्योतक है जिसमें आदर्श भी शामिल हैं। क्रिस्टॉफ़र हॉक्स ने ठीक ही कहा है कि पुरातात्त्विक सामग्री के निरूपण और उससे निष्कर्ष निकालने के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्श (नार्म) की धारणा का मूल महत्त्व है। इतिहास से किसी प्रकार की सहायता या निर्देश के बिना 'शुद्ध पुरातात्त्विक अनुमिति' की धारणा के बारे में हॉक्स का दृढ़ मत इस प्रकार किया गया है :

"पुरातात्त्विक तथ्यों की तुलना से, आगामिकता द्वारा (इंडिक्टिवली), तर्कपूर्वक उन मानवीय क्रियाकलापों को ढूँढ़ने की चेष्टा की जाएगी जो उन्हें बनाने के लिये ज़िम्मेदार होंगे। इसी को मैं "शुद्ध पुरातात्त्विक अनुमिति (इन्फ़रेन्स) की प्रक्रिया मानता हूँ। इस काम के लिये चाहे जितना वैज्ञानिक संयंत्र एवं बौद्धिक परिमार्जन इस्तेमाल क्यों न किया जाय इसकी दिशा वही रहेगी। इसे मानवीय क्रियाकलापों के आदर्श की धारणा पर आधारित करना होगा जो एक नृवैज्ञानिक सामान्यीकरण (जेनरलाइज़ेशन) है और जिसकी नींव आदिम मानव की प्रौद्योगिकीय परम्परा में अधिक रूढ़िवादिता पर रखी है। इस धारणा के बिना विषय छिन्न-भिन्न हो जाएगा।"

"ग्रंथाधारित" पुरातत्त्व में मानवीय क्रियाकलापों के बारे में निष्कर्ष ऐतिहासिक अभिलेखों, पुरावशेषों और पुरातात्त्विक सामग्रियों के आधार पर निकाले जाते हैं। कुछ चीज़ों का पता न हो लेकिन उनके बारे में धुंधली स्मृति हो सकती है। ऐसी वस्तुएँ जब खोज निकाली जाती हैं तो उनका सम्यक् अध्ययन और उनकी तुलना आवश्यक हो जाती है। इस प्रकार की पुरातात्त्विक सामग्री को उसके ऐतिहासिक परिवेश में रखना होगा। यह काम उन पर अंतर्लेखों (इन्स्क्रिप्शन्स), या उनके सम्बन्ध में शिलालेखों के परीक्षण और ऐतिहासिक ग्रंथों के माध्यम से उन स्थलों की पहचान से किया जा सकता है।

इस प्रकार के पुरातत्त्व में ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर प्ररूप (टाइप्स) बनाये जाते हैं। तुलना के द्वारा पहले से अज्ञात उदाहरणों को एक विशेष श्रेणी में रखा जाता है। ग्रंथाधारित पुरातत्त्व में तुलना अध्ययनकर्त्ता के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त पर आधारित नहीं होती है। ग्रंथों में इस प्रकार की ऐतिहासिक संस्कृतियों की विद्यमानता के विवरण मिलते हैं। ऐसे ग्रंथों के आधार पर लिखा गया इतिहास जिन तिथियों को प्रमाणित और स्थापित करता है वे नई खोजों से बदली नहीं जा सकती हैं। ग्रंथाधारित पुरातत्त्व में अनुमिति अभिलेखों पर निर्भर होने के कारण सीमाओं में बँध जाती हैं। प्राप्त लिखित प्रमाणों से कोई इस डर से अधिक दूर नहीं जा सकता कि ऐसे निरूपण से परिप्रेक्ष्य-जनित अर्थ से हटने के कारण अर्थ का अनर्थ हो सकता है। बुनियादी तौर पर प्रागक्षर (प्रीलिटरेट) और अनक्षर (नॉनलिटरेट) लोगों के भूतकाल का अध्ययन होने के कारण ग्रंथरहित पुरातत्त्व में अनुमिति पर इस प्रकार का परिप्रेक्ष्य-जनित दबाव नहीं पड़ता है। अध्ययनकर्त्ता किसी तरह के ऐतिहासिक ढाँचे की पाबंदियों से बंधे बिना अपना सिद्धान्त प्रस्तुत करने को स्वतंत्र है। मूलभूत बात यह है : ग्रंथ-रहित पुरातत्त्व को इतिहास से न कालानुक्रम प्राप्त होता है और न निरूपण का सिद्धान्त ही। तो फिर ये चीज़ें इसको मिलती कहाँ से हैं ? प्राकृतिक विज्ञानों के क्षेत्र में आधुनिक प्रविधियों के विकास से आयु-निर्धारण के काम में पुरातत्त्व को बड़ी सहायता मिलती है। लेकिन हॉक्स

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने ठीक ही कहा कि ये विज्ञान पुरातत्त्व के सैद्धान्तिक पक्ष को उजागर नहीं कर सकते हैं। वास्तविक एवं समकक्ष संस्कृतियों के सादृश्य (एनॉलॉजी) और सामान्य सिद्धान्त (जेनेरल-थियोरी) के लिये पुरातत्त्व को नृविज्ञान की ओर ही उन्मुख होना पड़ता है।

(३)

पुरातात्त्विक ग्रंथों को पढ़ते समय कई शब्दों की ओर ध्यान आकृष्ट होता है, जैसे : हस्त-कृति या उपकरण (आर्टिफ़ैक्ट), पुरातनिक (आर्केइक), समुच्चय (असेम्ब्लेज), क्षेत्र (एरिया), सह-परंपरा (को-ट्रेडिशन), घटक (कंपोनेण्ट), विकास-काल (फ़ार्मेटिव), क्षितिज (होरा-इज़न), उद्योग (इडस्ट्री), पहलू/पक्ष/स्थिति (फ़ेज़), प्रदेश (रीजन), बस्ती (सेटिलमेण्ट), और सबसे महत्त्वपूर्ण, संस्कृति (कल्चर) अपने विषय के विशिष्ट परिवेश में पुरातत्त्वविद किसी एक या सभी शब्दों को विशेष अर्थ देना चाहे तो तब तक आपत्ति नहीं हो सकती जब तक विशेष अर्थों के कारण उलझन न पैदा हो जाय। यह बात संस्कृति की अवधारणा के ऊपर खासतौर से लागू होती है।

संस्कृति शब्द का अर्थ अलग-अलग लोगों के लिये अलग-अलग हो सकता है। विकृति वैज्ञानिक (पैथॉलिजिस्ट) संस्कृति शब्द का प्रयोग उन जीवाणुओं (बैक्टीरिया) के लिये करता है जिन्हें वह अपनी प्रयोगशाला में उपजाता है। साहित्यिक व्यक्ति सुसंस्कृत और संस्कृतिविहीन व्यक्तियों में भेद करना पसंद करते हैं। इस दृष्टि के अनुसार किसी भी समाज के सभी सदस्य सुसंस्कृत नहीं हो सकते क्योंकि इसके लिये परिष्कृत और परिमार्जित आचरण को सीखना और अपनाना जरूरी होता है। यह स्पष्ट है कि जहाँ अनक्षर और प्रागक्षर लोगों के क्रियाकलापों को समझना मुख्य काम हो वहाँ विकृतिविज्ञान-सम्बन्धी या साहित्यिक अर्थ में संस्कृति शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। ऐसे समाजों में औपचारिक शिक्षा अथवा प्रशिक्षण से समाज के किसी एक वर्ग द्वारा विशेष योग्यता और शुद्ध आचरण ग्रहण करने की कोई व्यवस्था नहीं होती। चूँकि पुरातत्त्वविद् को ऐसे ही लोगों का जीवन चित्रित करना पड़ता है, अतः उसके लिये संस्कृति शब्द का क्या अर्थ हो सकता है?

किसी स्थल या स्थान पर पाये गए उपकरणों के समुच्चय को पुरानी दुनियाँ के पुरातत्त्व-विद् 'उद्योग' कहते हैं। एक इलाके में पाये गए संबंधित उद्योगों को 'संस्कृति' कहा जाता है। संस्कृति का यह अत्यंत सीमित दृष्टिकोण है। शायद इस दृष्टिकोण के कारण पुरानी दुनियाँ के पुरातत्त्वविद् प्रागैतिहासिक उपकरणों के प्रारूरिक वर्गीकरण के स्तर से आगे न बढ़ सके। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक, 'पीसिंग टुगेदर द पास्ट' में वी० गॉर्डन चाइल्ड ने स्वीकार किया है कि पुरातत्त्वविद—इतिहासकार है लेकिन वह संस्कृति का इतिहासकार है। इसी पुस्तक में उन्होंने संस्कृति की पुरातात्त्विक अवधारणा को मुख्यतः सांख्यिकीय बतलाया है। पुरानी दुनियाँ की परंपरा के अनुसार चाइल्ड ने यह भी मत व्यक्त किया है कि संस्कृति उपकरणों का ऐसा ढेर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है जो एक प्रकार के निवास स्थानों में बार-बार साथ पाये जाते हों और एक ही अनुष्ठान से सम्बन्धित होकर दफनाये गए हों।

चाइल्ड ने अपनी आत्मकथा-सम्बन्धी टिप्पणी में मेलिनॉस्की के नृवैज्ञानिक योगदान की उनके ऊपर पड़े प्रभाव की चर्चा की है। उन्होंने यह महसूस किया कि पुरातात्त्विक तथ्यों का भी प्रकार्यात्मक संदर्भ (फंक्शनल कांटेक्स्ट) में निरूपण किया जा सकता है। इसी के परिणाम-स्वरूप उन्होंने प्रागैतिहासिक 'क्रांतियों' का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। आज के पुरातत्त्वविद् को—जो यह मानता है कि संस्कृति का विकास क्रमशः हुआ न कि क्रांतिकारी ढंग से, उसे चाइल्ड की 'क्रांति' की अवधारणा अतिसामान्य लग सकती है। किन्तु यह सच है कि नवपाषाण को खाद्योत्पादक क्रांति और कांस्ययुग को नागरिक क्रांति के रूप से देखना उस समय सर्वथा नया विचार था। पुरातात्त्विक अवशेषों को केवल उपकरणों के प्रारूपिक वर्गों में विभाजित करने की जगह उनको सामाजिक-आर्थिक ढाँचे में प्रस्तुत करने में एक अप्रत्याशित नवीनता थी जो पुरानी दुनियाँ के पुरातत्त्व को चाइल्ड का महान् योगदान था। चाइल्ड ऐसा इसलिये कर पाये क्योंकि उन्हें नृविज्ञान से सैद्धान्तिक अर्न्तदृष्टि मिली थी। उपर्युक्त विचार व्यक्त करने के बाद भी चाइल्ड पर नृविज्ञान का स्पष्ट प्रभाव संस्कृति की निम्नलिखित परिभाषा और स्पष्टीकरण में देखने को मिलता है :

"संस्कृति दार्शनिकों के अध्ययनों में चर्चित अनुभव निरपेक्ष (ए प्रायोरी) वर्ग नहीं है जिसे कार्यरत पुरातत्त्वविदों के ऊपर बाहर से लाद दिया जाय। संस्कृतियाँ प्रेक्षित तथ्यों पर आधारित होती हैं। क्षेत्र कार्यकर्त्ता एक श्रेणी के कब्रों और निवास-स्थानों में विशिष्ट उपकरणों, हथियारों, आभूषणों आदि को बार-बार एक साथ संबद्ध पाता है और दूसरे प्रकार के कब्रों और बस्तियों में पाये जाने वाले औजारों से उनका भेद बताता है। प्रेक्षित सामग्री के अर्थ-निरूपण का आधार संजातिवृत्त प्रदान करता है। संस्कृति के विशेषकों को पुरातत्त्वविद् एक साथ इसलिये प्रस्तुत करता है कि वे एक लोगों द्वारा उनके अनुभव के आधारभूत वातावरण से तादात्म्य स्थापित करने के लिये बनाये गए होते हैं। उनसे निश्चित सामाजिक परम्पराओं से बँधे हुए एक सामाजिक समूह की विशिष्ठता व्यक्त होती है। इस विचारधारा से यह सिद्ध होता है कि प्रागितिहास एक मानवकीय विषय है न कि प्राकृतिक विज्ञान।"

होल और हाइज़र नई दुनियाँ के नृवैज्ञानिक परम्परा के पुरातत्त्वविद् हैं लेकिन उनकी निम्नलिखित बातें ऐसा भ्रम-सा पैदा करती हैं कि मानो इन लोगों को नृविज्ञान से कुछ मतलब ही न हो : "अधिकतर पुरातत्त्वविदों के अनुसार संस्कृति का ठोस स्वरूप बनता है उपकरणों, मिट्टी के वर्तनों, शवाधानों, गृहशैली, आभूषणों और कलाकृतियों के बार-बार साथ मिलने से।" लेकिन उनका नृवैज्ञानिक दृष्टिकोण इस बात से प्रकट होता है कि जो लोग एक निश्चित भू-भाग में रहते हैं वे लोग एक ही तरह की पादार्थिक सामग्री भी इस्तेमाल करते हैं। इसके फलस्वरूप भाषा, उचित एवं अनुचित वक्तव्य-व्यवहार-सम्बन्धी धारणाएँ, कला, धर्म और अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमूर्त विशेषक भी उसके साथ जुड़े-पाये जाते हैं। इससे संस्कृति सम्बन्धी उनकी धारणा नृवैज्ञानिक मुख्य धारा का भाग बन जाती है।

संस्कृति की नृवैज्ञानिक अवधारणा का क्षेत्र विशाल है। पुरातत्त्व में जिस प्रकार उपलब्ध अवशेषों का अध्ययन कर उनसे लोगों के जीवन की प्रक्रिया का पुनःकल्पन किया जाता है उसके लिये संस्कृति की नृवैज्ञानिक अवधारणा सर्वथा उपयुक्त है। जन (पीपुल) या जनसंख्या (पापुलेशन) शब्द समाज की ही तरह समग्रता की ओर संकेत अवश्य करते हैं लेकिन संस्कृति ही एक ऐसा शब्द है जो किसी समुच्चय के जीवन की समग्रता को सुस्पष्ट रूप में व्यक्त करने में समर्थ है। संस्कृति का अपना प्रतिरूप (पैटर्न) होता है जो ऐतिहासिक तथ्यों से उभरता है। संस्कृति की नृवैज्ञानिक अवधारणा की कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं : (१) समष्टिमूलक दृष्टिकोण (होलिस्टिक पर्स्पेक्टिव); (२) किसी भी निश्चित भू-भाग में रहने वाले लोगों के पादार्थिक-प्रौद्योगिकीय, व्यवहार-एव-सम्बन्ध विषयक और विचारों-आदर्शों सभी पक्षों का पूरा अध्ययन; (३) संस्कृति रूपी समाष्टि की व्यष्टियों (अंशों) के बीच प्रकार्यात्मक (फ़ंक्शनल) सम्बन्ध का होना; (४) क्लुखाँन के शब्दों में ऐतिहासिक रूप से उत्पन्न "जीवन निर्वाह के (विशिष्ट) ढंग।"

पुरातत्त्व—विशेषतः प्रागैतिहासिक पुरातत्त्व—के लिये उद्विकास का सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शक नियम की तरह काम में आता है। उद्विकास की धारणा वैसे तो पुरानी है किंतु चार्ल्स डार्विन को अपने प्रांगिक उद्विकास (ऑर्गैनिक इवोल्यूशन) के सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिये प्रेरणा अठारहवीं शताब्दी के अन्त और उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ के सामाजिक विचारकों, विशेष रूप से माल्थस, से मिली थी। इन विचारकों ने सामाजिक तथ्यों के उद्-विकास (विकास) की धारणा को, जीवविज्ञानों में इसका स्थान बनने के बहुत पहले, स्थापित कर दिया था। नृविज्ञान जैविक अथवा सामाजिक उद्विकास के सिद्धान्त पर एकाधिपत्य का दावा नहीं कर सकता है। लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के नृवैज्ञानिकों ने इसमें रुचि ली और इसका काफ़ी उपयोग किया।

यह हम सभी को पता है कि इस पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति के साथ शुरू हुई उद्-विकास की प्रक्रिया का परिणाम है मानव का उद्भव। पशु जगत् में मनुष्य एक अभूतपूर्व प्राणी है और मानव उद्विकास के लक्षण असामान्य हैं। इस शताब्दी के एक महान् आनुवंशिक वैज्ञानिक, थियोडोसियस डाब्ज़ैन्स्की, का कहना है कि "मनुष्य, और एकमात्र मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो प्राकृतिक शक्तियों द्वारा निर्धारित उद्विकासीय दिशा को अपनी अटल नियति मानने के लिये तैयार नहीं है। मनुष्य अपने उद्विकास को समझ सकता है, उसको नियंत्रित कर सकता है और उसे एक निश्चित दिशा प्रदान कर सकता है। यह इसलिये संभव हो सका क्योंकि केवल मनुष्य ही सांस्कृतिक जीवन बिताता है। मानव उद्विकास के जैविक और सांस्कृतिक दोनों आयाम हैं और दोनों ही प्रकार के तत्त्वों की अन्योन्य क्रिया से इसका स्वरूप बनता है। चाहे अन्य लोग इस बात पर ध्यान न दें लेकिन आदि मानव की संस्कृति के अध्ययन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रुचि लेने वाले पुरातत्त्वविद ऐसा नहीं कर सकते हैं। यहाँ भी उसका पथ-निर्देशन नृविज्ञान के सिद्धान्त ही कर सकते हैं। अन्य विषय मनुष्य-सम्बन्धी एक पक्ष में रुचि लेते हैं तो दूसरे को लगभग पूरी तरह छोड़ देते हैं। लेकिन डाब्ज़ैन्स्की की सूक्ति के अनुसार : "नृविज्ञान (ऐन्थ्रोपॉलॉजी), जो मानव विज्ञान है, अनिवार्य रूप से जैविक विज्ञान और संस्कृति का विज्ञान दोनों ही है। सच तो यह है कि नृविज्ञान को मनुष्य से सम्बन्धित जैविक विज्ञानों और सामाजिक विज्ञानों में तालमेल बैठाना चाहिए।"

उपर्युक्त उद्धरण में डाब्ज़ैन्स्की ने इसकी सिफ़ारिश की है कि मनुष्य के बारे में सामाजिक-सांस्कृतिक और जैविक ज्ञान का एकीभवन सबसे अच्छी तरह आदिमानव और उसकी संस्कृति के माध्यम से हो सकता है। इस काम के लिये पुरातत्त्वविद् को केवल सूचना ही नहीं बल्कि सैद्धान्तिक ढांचा भी चाहिए। रेडियो-कार्बन-आयु-निर्धारण विशेषज्ञ प्राय: पुरातत्त्व की बारीकियों से अपरिचित होता है तो दूसरी ओर काल-निर्धारित करने के रेडियो-कार्बन या अन्य प्रविधि की तकनीकी बातों से सामान्य पुरातत्त्वविद् सर्वथा अनभिज्ञ हो सकता है। लेकिन पुरातत्त्व का विद्यार्थी आयु-सम्बन्धी सूचना को सहर्ष इस्तेमाल करता है। आदि मानव और उसकी संस्कृति के उद्विकास सम्बन्धी ज्ञान को रेडियो-कार्बन डेट की तरह मात्र अतिरिक्त सूचना नहीं समझा जा सकता है। आदि मानव के बारे में उपलब्ध तथ्यों की सर्वोत्तम व्याख्या के लिये पुरातत्त्व के विद्यार्थी को या तो स्वयं नृवैज्ञानिक होना चाहिए जो नृविज्ञान की सैद्धान्तिक परम्परा में दक्ष हो या उसे नृवैज्ञानिक विशेषज्ञों के साथ मिल कर काम करना चाहिए।

अपने समकालीन अन्य विशेषज्ञों की तरह उन्नीसवीं शताब्दी के नृवैज्ञानिकों ने धर्म, विवाह, परिवार, संपत्ति आदि की प्रथम उत्पत्ति की खोज में रुचि ली थी। चरणों (स्टेजेज़) की धारणा इसके साथ अनिवार्य उपसिद्धान्त की तरह संबद्ध है। इन लोगों ने समाज और संस्कृति के विभिन्न अंशों के उद्विकास के चरणों का ख़ाका खींचा। मार्गन और उनके समकालीन नृवैज्ञानिकों ने वन्यता (सैवेजरी), ग्राम्यता (बार्बरिज्म) और सभ्यता (सिविलाइज़ेशन) तथा उनके उपविभागों को उनकी पहचान कराने वाले लक्षणों के साथ स्पष्ट किया। इस सम्बन्ध में लुई हेनरी मार्गन का योगदान उत्कृष्ट था। लेकिन उनकी और उनके समकालीन विद्वानों की यह धारणा गलत थी कि मानवजाति के सभी 'क़बीले' सभ्यता के स्तर तक पहुँचने के पहले ग्राम्यता और वन्यता के स्तरों से या तो गुजर चुके हैं या सभ्य बनने से पहले उन्हें इन स्तरों से गुजरना होगा। मानवता के लम्बे इतिहास में हमें अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जब कोई समुदाय अथवा समाज 'वन्यता' (सैवेजरी) के चरण से 'ग्राम्य' श्रेणी तक पहुँचे बिना ही 'सभ्यता' की श्रेणी तक पहुँच गया हो। इस कमी के बाद भी मार्गन द्वारा बनाई गई रूपरेखा (स्कीम) पुरातत्त्व के लिये मूल्यवान सिद्ध हुई। परवर्त्ती उत्खनन-पुरातत्त्व की साक्षियों से इस स्कीम की मोटे तौर पर पुष्टि भी हो चुकी है। इसकी सफलता की कुंजी है अभिज्ञेय (आइडेण्टिफाएबुल) और प्रत्यक्ष सांस्कृतिक तत्त्वों और तथ्यों द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक विकास के चरणों को स्पष्ट करने का सर्वप्रथम प्रयत्न। जैसा कि पहले कहा जा चुका है पिछले सौ वर्षों में इस स्कीम की मोटी-मोटी बातों की प्रामाणिकता सिद्ध हो चुकी है।

(४)

पुरानी दुनिया में पुरातत्त्व के लिये सामाजिक-सांस्कृतिक नृविज्ञान (जिसे उन्नीसवीं शताब्दी में जातिविज्ञान या एथ्नॉलॉजी कहा जाता था, एक अपरिहार्य विषय हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक सरल समाज विद्यमान थे जिन्हें 'वन्यता' और 'ग्राम्यता' के विभिन्न स्तरों पर रखा जा सकता था। वास्तव में ये लोग 'इतिहास-रहित' नहीं थे। चूँकि ये अनक्षर लोग थे इसलिये इनके बारे में सम्यक् रूप से 'लिखित इतिहास' नहीं था। सादृश्य के आधार पर उन्हें प्रागक्षर (प्रीलिटरेट) अथवा प्रागैतिहासिक मानव के समकक्ष माना गया। सभ्यता के विकास के तथाकथित विक्टोरिया-युगीन चरमोत्कर्ष तक पहुँचने के पहले मनुष्यों को जिन श्रेणियों से गुजरना पड़ा होगा उसके सुलभ उदाहरणों के लिये उन्नीसवीं शताब्दी के सरल समाजों का इस्तेमाल किया गया। हालाँकि यह धारणा सादृश्य का सही इस्तेमाल नहीं कही जा सकती है फिर भी पुरातत्त्व के लिये इसका बहुत अन्वेषणात्मक (ह्यूरिस्टिक) महत्त्व था।

आदिम समाजों के निवासियों द्वारा काम में लाई जाने वाली पादार्थिक सामग्रियों, औजारों और हथियारों के बनाने में इस्तेमाल की गई प्रविधियों और बिताये गए सामाजिक जीवन से प्रागितिहासज्ञ को उन लोगों के जीवन और कार्यों के पुनःकल्पन की पृष्ठभूमि तैयार होती है जिनके बनाए गए औज़ार-हथियार उत्खनन से मिले हैं। अपनी पुस्तक, ऐन्शिएण्ट हंटर्ज़ ऐण्ड देयर मॉडर्न रिप्रेज़ेण्टेटिव्स में एस० जे० सोलास ने एक नया प्रयोग किया जिसमें प्रागैतिहासिक के प्रागक्षर लोगों का जीवन चित्रित करने के लिये उस समय के अनक्षर लोगों के जीवन के बारे में लिखे गए संजातिवृत्तीय विवरणों को सादृश्य की तरह काम में लाया गया। मार्गन के उद्विकासीय रूपरेखा की तरह सोलास ने इस अपरिष्कृत सादृश्य में नृविज्ञान का इस्तेमाल किया।

अपनी पुस्तक 'पीसिंग टुगेदर द पास्ट' में वी० गॉर्डन चाइल्ड ने लिखा है कि तत्कालीन आदिम लोगों की प्रौद्योगिकी और अन्य सामग्रियों के उपयोग में पुरातत्त्व के विद्यार्थी को, अन्य प्रकार से न समझ में आने वाले अवशेषों और स्मारकों की "विश्वसनीय एवं प्रदीपक (इल्यूमिनेटिंग) व्याख्या" करना संभव हो सका। उन्होंने यह माना कि पूर्ववर्त्ती समाजों की पादार्थिक सामग्री के पुनःकल्पन में (आधार सामग्री) संजातिवृत्तीय आँकड़े पुरातात्त्विक आँकड़ों के पूरक हो सकते हैं। चाइल्ड पुरानी दुनिया की उस पुरातात्त्विक परम्परा के पोषक हैं जिसकी मान्यता है कि यह कभी भी पता नहीं चल सकता है कि प्रागैतिहासिक मानव कैसे रहता था। इस परम्परा की मान्यताओं के अनुरूप चाइल्ड ने यह कहा है कि "सौभाग्यवश अधिकतर पुरातात्त्विक सामग्री उस तरह की होती है जिसके लिये 'पादार्थिक संस्कृति' जैसा घिसा-पिटा शब्द इस्तेमाल किया जाता है। वस्तुनिष्ठता का यह तक़ाज़ा है कि पुरातत्त्वविद् कम से कम अनुमान (इन्फ़रेन्स) का सहारा ले। वैज्ञानिक पुरात्त्व से यह अपेक्षा थी कि पुरातात्त्विक सामग्री से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन के सूक्ष्म अंशों, जैसे 'आध्यात्मिक संस्कृति' और 'अनुष्ठान' आदि, के बारे में जाना जा सकेगा।" लेकिन चाइल्ड ने यह माना कि "प्रागैतिहासिक समाजों के अंधविश्वासों और अप्राप्य अकांक्षाओं को सविस्तार नहीं जाना जा सकता है।"

पहले हम इसकी चर्चा कर चुके हैं कि समकालीन वन्य और बर्बर क़बीलों द्वारा इस्तेमाल की गई पादार्थिक सामग्री और टेक्नॉलॉजी में पुरातत्त्वविदों को लगातार उत्साहवर्द्धक और विश्वसनीय उदाहरण मिलते रहे हैं जिनके सहारे न समझ में आने वाले पुरातात्त्विक तथ्यों पर भी प्रकाश पड़ता है। चाइल्ड की राय के विपरीत नई दुनिया के पुरातात्त्विक नृवैज्ञानिकों का दृढ़ मत है कि उपकरणों के स्थानिक (स्पेशियल) और कालिक (टेम्पोरल) विवरण का अध्ययन कर यह पता लगाने की चेष्टा की जाती है कि "प्रागैतिहासिक लोग वास्तव में कैसे रहते थे।" इन लोगों को वे तरीकें ढूँढ़ने में रुचि है जिनसे "प्रागैतिहासिक सांस्कृतिक प्रणाली के अनेक पहलुओं के बारे में जाना जा सके जो पहले पुरातत्त्वविद् की आधार सामग्री और क्षमता की परिधि के बाहर समझे जाते थे।" पुरातात्त्विक नृवैज्ञानिक का यह दृढ़ मत है कि "सामाजिक नृविज्ञान में सांस्कृतिक प्रणाली के व्यवहार पक्ष में जिस प्रकार संबंधों को दर्शाया जाता है उसी प्रकार विलुप्त साँस्कृतिक प्रणाली के सुसंगठित संबंध-माला को पादार्थिक संस्कृति के माध्यम से प्रकट किया जा सकता है।"

पुरानी दुनिया और नई दुनिया में पनपे हुए पुरातत्त्व की धाराओं में उल्लेखनीय अन्तर पाये जाते हैं। पुरानी दुनिया के पाषाणयुगीन पुरातत्त्व, जिसको प्रागितिहास भी कहा जाता है, को प्रस्तर उपकरणों के स्वरूप वर्गीकरण के लिये जाना जाता है। ऐसा लगता है मानो पुरानी दुनिया के प्रागितिहास में पाषाण युग का सर जॉन लुबाक द्वारा 'पुरापाषाण' और 'नवपाषाण' नामकरण का परिणाम यह हुआ कि यहाँ सांस्कृतिक इतिहास लिखे जाने की जगह उपकरण-प्ररूपों के वर्गीकरण पर ज़ोर दिया गया। ग्रैब्रियल द मार्गितये, एवेब्रीयुल, डेनिस पेग़ोनी तथा फ़्राँस्वां बोर्देज़ जैसे अनेक यूरोपीय अग्रणी प्रागितिहासज्ञ पुरापाषाण को आनुक्रमिक (सीक्वेन्शियल) चरणों मे विभाजित करने का एकमात्र आधार पत्थर के उपकरणों के वर्गीकरण को बनाते रहे हैं। पुरानी पीढ़ी के अमरीकी पुरातत्त्वविद्, हैलेम एल० मोवियस, जो पुरानी दुनिया के प्रागितिहास के विद्यार्थी हैं, प्रस्तर-उपकरण-प्ररूप-वर्गीकरण के व्यापक प्रभाव से नहीं बच सके थे। इस क्षेत्र में काम करने वाले पुरातत्त्वविदों को प्रागैतिहासिक मानव के जीवन के बारे में मूलभूत प्रश्नों का उत्तर देने की चेष्टा करनी चाहिए थी लेकिन अपने अध्ययन का मुख्य ध्येय ही उन्होंने उपकरण-प्ररूप-वर्गीकरण को बना लिया। नई पीढ़ी के एक अमरीकी पुरातात्त्विक नृवैज्ञानिक, सैकेट, ने यह जानना चाहा है कि पुरानी दुनिया में उच्चपुरापाषाण काल में रहने वाले लोग अपना भरण-पोषण करने के लिये कौन से तरीके अपनाते थे? इनसे कितनी घनी आबादी वाली बस्तियों और उनमें रहने वाले कितने लोगों को खिलाया जा सकता था? उनकी आवास-व्यवस्था किस प्रकार की थी? उच्च पुरापाषाण के क्रमिक उपकरण प्रकार क्या विशिष्ट प्रकार की आर्थिक या सामाजिक संगठन के द्योतक हैं? कहीं वे एक ही सांस्कृतिक परम्परा की विभिन्न शैलियों के परिचायक तो नहीं हैं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब हम पुरातत्त्व को नृविज्ञान का एक अंग मानते हैं तो इसका अर्थ यह कदापि न समझना चाहिए कि पुरातात्त्विक सूचना की कमी को पूरा करने के लिये संजातिवृत्त का सरसरी तौर पर सादृश्य के रूप में इस्तेमाल किया जाएगा। चाइल्ड तथा अन्य पुरातत्त्वविदों को भी इस प्रकार के सादृश्य की बात मान्य थी यह उनके ग्रंथों से पता चलता है। सामाजिक नृविज्ञान का शोध उस विषय के उद्देश्यों, सैद्धान्तिक ढाँचों और तत्कालीन प्रचलित धाराओं के अनुरूप किया जाता है। अधिकांश एथ्नोग्रैफी का काम सामाजिक-सांस्कृतिक नृवैज्ञानिकों ने किया है। इसका मतलब यह नहीं है कि इस कारण यह सामग्री पुरातत्त्व के लिये उपयोगी नहीं है। व्यवहारों और सामाजिक संबंधों के बारे में व्यक्त किये गए विचार मनुष्यों के प्रत्यक्षदर्शन और उनके व्यवहारों के अवलोकन पर आधारित होते हैं। पुरातत्त्व के विद्यार्थी को ऐसा अनुभव प्राप्त नहीं हो सकता है और उसे इन व्यवहारों के कारण बनी और काल के प्रभाव से बच रही ठोस सामग्री का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हो सकता है। राबर्ट ऐशर की "पुरातत्त्व के लिये उपयोगी संजातिवृत्त (एथ्नोग्रैफी)" की माँग समीचीन और समसामायिक है। चूँकि पुरातत्त्वविद् को प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हो सकता है वह व्यवहार के बारे में जानने के लिये उन कार्यों पर ध्यान देता है जिनके समान परिणाम निकलते हैं। पुरातात्त्विक सामग्रियों के ज़रिये जाने जा सकने वाले व्यवहारों के बारे में युक्तिसंगत निष्कर्ष निकालने के लिये यह आवश्यक है कि उत्खनन द्वारा पाये गये ठोस पदार्थों और अवलोकित व्यवहारों में काफी अनुरूपता होनी चाहिए। इस दृष्टिकोण से कुछ सामाजिक नृवैज्ञानिकों के अध्ययन पुरातत्त्व के लिये ख़ासतौर से उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

!कुंग बुशमैन लोगों का अध्ययन करते समय सामाजिक नृवैज्ञानिक रिचर्डली ने जो कुछ किया है उसे 'सक्रिय (ऐक्शन) पुरातत्त्व' कहा जा सकता है। उन्होंने यह अनुमान लगाया है कि आदिम लोगों के जीवन में एक बड़े आखेट के लिये कितने लोगों और कितनी अवधि की आवश्यकता पड़ सकती है। इसके आधार पर पुरातात्त्विक काल के आखेट-एवं-खाद्य-संचयन द्वारा जीवन निर्वाह करने वाले मानव समूह के सामाजिक संगठन-संबंधी तथ्यों के बारे में अनुमान कैसे लगाया जा सकता है? चालीस !कुंग बुशमैन लोगों के लिये २५० पौंड मांस तीन दिनों की पूरी खाद्य सामग्री है। बुशमैन लोग १० से ३० व्यक्तियों के झुण्ड में रहते हैं। कालाहारी मरुस्थल की जलवायु में मांस अधिक दिनों तक ठहर नहीं सकता है। इसलिये जब एक बुशमैन समूह किसी बड़े आकार के पशु का शिकार करने में सफल होता है तो उसके सौभाग्य के भागीदार के रूप में दूर-दूर से अन्य बुशमैन लोग आकर खाद्य-सामग्री ग्रहण करते हैं।

एक हाथी के शिकार से लगभग ढाई हज़ार पौण्ड मांस मिलता है। इसको खत्म करने के लिये ४०० व्यक्तियों को तीन दिन लग जायेंगे। हाथी से प्राप्त होने वाले मांस का केवल दसवाँ हिस्सा मांस रखने वाले पशु का शिकार करने के लिये जितने लोगों का सहयोग चाहिए उससे कहीं अधिक संख्या में लोगों की जरूरत होगी यदि हाथी का शिकार किया जाय। यह सही है कि प्रातिनूतन (प्लाइस्टोसीन) काल के अत्यन्त शीतल जलवायु में मांस काफ़ी समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक सुरक्षित रह सकता था। उपलब्ध प्रमाणों से यह पता चलता है कि उच्च पुरापाषाण काल के शिकारी, जो बड़े-बड़े जानवरों का अक्सर शिकार करते थे, !कुंग बुशमैंन झुण्डों से बड़े आकार के समूहों में रहते होंगे। रिचर्डली की राय है कि !कुंग बुशमैंन यदि बड़े जानवरों का अक्सर शिकार करते होते तो उनके लिये बड़े आकार के समुदायों में रहकर सारे माँस का भक्षण करना अधिक आसान होता। वर्त्तमान स्थिति में छोटे-छोटे झुँडों को दूर-दूर से घटना-स्थल पर आकर मांस का बँटवारा कर फिर वापस अपने खेमों को लौटना पड़ता है। यह कष्टप्रद है और अपेक्षाकृत कम विकसित सामाजिक व्यवस्था का द्योतक है। इस उदाहरण से पुरातत्त्वविद् यह अनुमान लगा सकता है कि यूरोप में उच्च पुरापाषाण काल में मनुष्य आज के बुशमैन की अपेक्षा बड़ी बस्तियों और अपेक्षाकृत पेचीदा सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत निवास करता होगा।

रिचर्डली की तरह के संजातिवृत्तीय अध्ययनों के जीवन-निर्वाह-सम्बन्धी ऐसी साक्षियाँ पुरातत्त्व के विद्यार्थियों को मिलती रहीं हैं जो उनके द्वारा किये गए अध्ययनों से उन्हें प्राप्त हो ही नहीं सकती थीं। संजातिवृत्त हमें यह बतलाता है कि आखेट-एवं-खाद्य-संचयन करने वाले अधिकांश लोगों की खाद्य-सामग्री का अच्छा ख़ासा हिस्सा वनस्पतियों, छोटे-छोटे मेरुदण्डी पशुओं और समुद्री जीवों के रूप में प्राप्त होता है। भूतकाल का अनुकल्पन करते समय पुरातत्त्वविद् को उपर्युक्त तथ्यों को याद रखना चाहिए। अमरीकी नृवैज्ञानिक-पुरातत्त्वविद्, जेम्स डीट्ज़ के अनुसार आदि मानव के जीवन-निर्वाह का ढंग जानने के लिये तत्कालीन गुफाओं की दीवालों पर की गई चित्रकारी पर अधिक निर्भर नहीं करना चाहिए। "यदि चित्रकार को यह निर्णय लेना हो कि वह हिरन का चित्र बनाएगा अथवा महाकुंजर (मैमथ) का तथा दूसरी ओर उसे बीज या जड़ में से एक को चित्रित करना हो तो यह जानने में हमें कठिनाई नहीं होगी कि उसका निर्णय क्या होगा।"

कुछ पैराग्राफ पहले हमने सक्रिय पुरातत्त्व के सम्बन्ध में सामाजिक-सांस्कृतिक नृविज्ञान की भूमिका की चर्चा की थी। यह पूछना स्वाभाविक है कि क्या पुरातत्त्वविद् इसके बारे में अपने-आप कुछ नहीं कर सकता है। यदि कुछ कर सकना संभव हो तो उसे यह काम अकेले करना चाहिए अथवा सामाजिक-सांस्कृतिक नृवैज्ञानिक के साथ मिल कर? डेस्मण्ड क्लार्क की राय है कि पुरातत्त्व के विद्यार्थी को संजातिवृत्तकार (एथ्नोग्रैफ़र) के साथ कर काम करना आवश्यक है क्योंकि तभी पुरातत्त्वविद् के लिये उपयोगी सामग्री प्राप्त की जा सकती है। वर्त्तमान काल की किसी संस्कृति में, जो पुरातत्त्वविद् के काम से सम्बद्ध लगती है, सामाजिक-सांस्कृतिक नृवैज्ञानिक के साथ रह कर पुरातत्त्व के विद्यार्थी द्वारा फ़ील्डवर्क की आवश्यकता पर ज़ोर देने का एक अन्य कारण भी रिचर्डली ने बताया है। इस प्रकार के संपर्क से पुरातत्त्वविद् के अनुभव में वृद्धि के कारण "अंतर्दृष्टि के स्तर पर समझने की क्षमता भी बढ़ेगी अतः वह अपना काम और अधिक अच्छी तरह कर पाएगा।"

न्यू गिनी के दानी लोगों के अध्ययन से हुए अनुभवों के आधार पर कार्ल हायडर ने पुरातत्त्व के विद्यार्थियों से ज़ोर देकर अपील की है कि संजातिवृत्तीय साहित्य (एथ्नोग्रैफ़िक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिटरेचर) से केवल ऊपर-ऊपर (छिछला) परिचय ही नहीं प्राप्त करना चाहिए। हायडर के अनुसार पुरातत्त्वविदों को "विस्तृतक्षेत्र के संजातिवृत्तों की गहराई से छान-बीन करनी चाहिए। इन संजातिवृत्तों के आधार पर बनाई गई धारणाओं के बारे में स्पष्ट, विवेचनात्मक किंतु सतर्क चुनाव करना चाहिए। आखेटक-खाद्य-संचयक लोगों के संजातिवृत्तों के सावधानी से अध्ययन करने के बाद जेम्स डीट्ज़ ने यह सलाह दी है कि प्रागैतिहासिक आखेटक और खाद्य-संचयक लोगों के जीवन का पुन:कल्पन करने के लिये बुशमैन या एस्किमो लोगों के जीवन को आधार नहीं बनाना चाहिए। सभी वर्त्तमान संस्कृतियों पर दूसरी संस्कृतियों का प्रभाव पड़ा है। लेकिन डीट्ज़ यह मानते हैं कि "वर्त्तमान काल के संजातिवृत्तीय विवरणों से यह पता चलता है कि प्रागैतिहासिक सामाजिक इकाइयों के अधिक निकट जान पड़ते हैं आदिम आस्ट्रेलियाई लोग और पूर्वी ब्राज़ील के 'गे' तथा थोड़ा कम समीप लगते हैं आदिम कैलिफ़ोर्नियावासी। सभी शिकारी दलों में से इन तीन में प्राक्-नवपाषाण सामाजिक संरचना का परिचायक म्वाइटी संगठन विशेष रूप से विकसित है। डीट्ज़ यह मानते हैं कि यह समानता आकस्मिक नहीं है इसलिये सामाजिक संगठन का पुन:कल्पन करते समय इसे याद रखना चाहिए।

पुरातत्त्व के विद्यार्थी की सबसे पहली आवश्यकता है प्राप्त तथ्यों को अपेक्षाकृत सरलता और विश्वास के साथ निरूपित करना। इस काम के लिये पुरातत्त्वविद् द्वारा बनाए गये मॉडेल को यदि स्वतंत्र और गैर-पुरातात्त्विक सूचना-स्रोतों की कसौटी पर कसा जा सके तो उसकी मॉडेल-निर्माण-क्षमता को ठोस आधार मिल सकेगा। यदि कोई ऐसा आवास-स्थल हो जिसे वहाँ रहने वालों ने हाल में ही छोड़ा हो उसका सावधानी से पुरातात्त्विक दृष्टिकोण से अध्ययन उपयोगी हो सकता है। इस काम की शुरुवात पुरातत्त्वविद् उस क्षेत्र के सीमांकन से कर सकता है जो वहाँ रहने वालों के कब्ज़े में था। घर की बनावट से यह पता चल सकता है कि वह निवास-स्थान स्थायी था अथवा अस्थायी। स्थल की लम्बाई चौड़ाई और स्वरूप से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वहाँ रहने वाली सामाजिक इकाई का आकार कितना बड़ा था। उपकरणों और औज़ारों को यदि किसी ख़ास जगह में रखा गया हो तो उससे स्थान का अलग-अलग कामों के लिये उपयोग करने पर प्रकाश पड़ सकता है। अलग-अलग तरह के चूल्हों से विविध व्यंजनों और पाक-कला के बारे में कुछ पता चल सकता है। यदि ऐसे किसी स्थान पर रहने वाले लोगों से पुरातत्त्वविद् संपर्क स्थापित कर सके तो उसे अपनी अनुमिति (इन्फ़रेन्स) की सत्यता परखने का अवसर मिल सकेगा। यदि वहाँ रहने वाले लोग न मिल सकें तो ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों का पता लगाना चाहिए जो इन लोगों को जानते हों। इस तरह पुरातत्त्वविद् वर्त्तमान सामाजिक समूहों के संगठन और व्यवहार-संबंधी अनुमिति की अपनी क्षमता एवं किसी पुरातात्त्विक स्थल पर पायी गई पादार्थिक सामग्रियों की पहचान और उनके विवरण में उसकी उपयोगिता इन दोनों का परीक्षण कर सकेगा।

अमरीकी पुरातत्त्वविद्, लाँगाक्रे और आयर्स ने हाल में ही छोड़े गए अपाची निवास-स्थल का परीक्षण किया। अपनी अनुमिति की उन्होंने वहाँ रहने वाले अपाची लोगों को जानने वाले एक व्यक्ति से जाँच की और उसे सही पाया। उनका निष्कर्ष यह था : "आवास-स्थल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आकार और स्वरूप से यह पता चला कि वहाँ एक प्राथमिक परिवार के लोग रहते थे। कार्य-क्षेत्रों और खास-खास कामों के लिये औज़ारों का इस्तेमाल उनके स्त्रियों से संबद्ध होने की ओर इशारा करते हैं। इससे यौन के आधार पर स्पष्ट कार्य-विभाजन का पता चलता है। कैम्प में होने वाली प्राथमिक क्रियाएँ स्त्रियों से संबंधित हैं। उस स्थान पर एक ही ऐसा औज़ार मिला जो पुरुषों के काम आ सकता है। वह औज़ार था कुल्हाड़ी का फल। लेकिन जलाने की लकड़ी इकट्ठा करने के लिये स्त्रियाँ भी कुल्हाड़ी का इस्तेमाल करती थीं।...... यह शिविर था तो स्थायी लेकिन इसका इस्तेमाल वर्ष के कुछ मौसमों में ही होता था। पुरुषों के काम को दर्शाने वाले तथ्यों का अभाव हमें यह बतलाता है कि इस स्थल का स्पष्ट उपयोग एक अस्थायी शिविर की तरह प्राथमिक परिवार के सदस्यों को सम्यक् सहायता पहुँचाने के लिये किया जाता था क्योंकि परिवार का पुरुष सदस्य मौसम के अनुरूप उपयुक्त सामग्री प्राप्त करने का काम शिविर से दूर कहीं और करता था।"

यह आपत्ति उठाई जा सकती है कि उपर्युक्त उदाहरण वर्त्तमान काल में विद्यमान संस्कृति का संजातिवृत्तीय विवरण है। इसके लिये खुदाई की कोई आवश्यकता नहीं है। अतः इसको पुरातात्त्विक तथ्य नहीं माना जा सकता। पुरातात्त्विक अध्ययन में खोदे गए स्थल की आयु से भी अधिक अन्य बातों का महत्त्व है। जिन अवधारणाओं और सिद्धान्तों के आधार पर पुरातात्त्विक काम किया जाता है उससे उपलब्ध सामग्री से निकाली गई अनुमिति का स्वरूप निर्धारित होगा। यह बात निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जाएगी।

जेम्स डीट्ज़ ने अट्ठारहवीं शताब्दी की एक अमेरिकन इंडियन संस्कृति का अध्ययन किया है। इस काम के लिये पुरातात्त्विक सामग्री अरिकारा के मिट्टी के वर्तन थे। इनसे डीट्ज़ ने अरिकारा समाज में नातेदारी के क्षेत्र में हुए परिवर्तनों का पता लगाने का प्रयत्न किया। पुरातत्त्वविद् यहाँ यह जानना चाहता था कि पादार्थिक अवशेषों से संस्कृति के अन्य अंशों के बारे में कैसे पता लगाया जाय। डीट्ज़ ने कहा है कि व्यवहार संस्कृति का नश्वर अंश है जबकि पादार्थिक संस्कृति ऐसा नहीं है। लेकिन स्थान, संरचना और उपकरणों से व्यवहार बाकायदा झलकते हैं। पुरातत्त्व के विद्यार्थी का काम है कि "पुरातात्त्विक सामग्रियों के माध्यम से उनकी प्रकृति और संभावित कारणों का अनुमान लगा कर प्रागैतिहासिक सामाजिक व्यवस्था पर प्रकाश डाले।" डीट्ज़ ने पुरातत्त्व की चार आनुमानिक समस्याओं के अनुरूप व्यवहारों के चार स्तरों की चर्चा की है। वे स्तर हैं : (१) वैयक्तिक; (२) व्यक्तियों के सार्थक समूह जैसे परिवार, लीनिएज–आदि; (३) व्यवितयों के आमने–सामने संपर्क (फ़ेस-टु-फ़ेस) के आधार पर संगठित समूह जैसे समुदाय; (४) एक समन्वित इकाई की तरह समूचा समाज। इन भिन्न-भिन्न स्तरों के लिये विश्लेषण के अलग-अलग ढंग भी अपनाने होंगे।

पुरातात्त्विक सामग्री से डीट्ज़ ने सामाजिक जीवन के निवास (रेज़िडेन्स) और उद्भव (डिसेण्ट) के सूक्ष्म व्यवहार-सम्बन्धी लक्षणों का अनुमान लगाने की चेष्टा की है। वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि उद्भव-नियमों का शुद्ध रूप निर्धारित करना आसान काम नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। वे सामूहिक क्रियाओं से बनते हैं और पुरातत्त्व के माध्यम से उनका पता चलना बहुत कठिन है। फिर भी वे इन नियमों को जानना चाहते हैं क्योंकि उनके मतानुसार पुरातत्त्व का यह फ़र्ज़ बनता है कि वह संस्कृति की सुव्यवस्थित प्रक्रिया की क्रमबद्ध प्रणाली पर प्रकाश डाले। "इन अनुमितियों का सच्चा मूल्य नृवैज्ञानिक सिद्धान्त को अंततोगत्वा हुए लाभ की दिशा से पता चलेगा।" डीट्ज़ की यह शिकायत है कि सामाजिक नृवैज्ञानिकों ने ऐसे सवाल पूछने या उनका जवाब ढूंढ़ने से मुँह चुराया है कि "जिन समाजों में एकमार्गी उद्भव व्यवस्था है उससे उनको क्या लाभ है ?" उद्भव-समूहों और नियमों का अध्ययन सामाजिक नृविज्ञान का एक विशिष्ट कार्य है लेकिन इसके सम्बन्ध में एक दूसरी प्रक्रिया की अभिव्यक्ति है। इससे निगमित (कार्पोरेट) समूहों के बनने का पता चलता है जो किसी विशिष्ट सामाजिक परिवेश में काम करने के लिये संगठित किये जाते हैं।" डीट्ज़ का यह योगदान पुरातत्त्व द्वारा नृविज्ञान की सेवा का एक सुन्दर उदाहरण है।

कार्टर रैंच प्यूब्लो (१०५०-१२५० ई०) में किये गए उत्खनन के माध्यम से विलियम लाँगाक्रे ने "नृविज्ञान के बढ़ते हुए ज्ञान और सिद्धान्त" में पुरातत्त्व के माध्यम से योगदान करने का प्रयत्न किया है। मिट्टी के बर्तनों के ६००० से भी अधिक टुकड़ों का सतर्कता से परीक्षण किया गया। मिट्टी के बर्तनों के 'डिजाइन तत्त्व का विश्लेषण' करते समय उन्होंने यह बात ध्यान में रखी कि यदि गाँव में स्थानिक मातृमार्गी उद्भव-समूहों (लोकलाइज्ड मैट्रिलीनियल डिसेंट ग्रुप्स) की प्रथा विद्यमान थी तो मिट्टी के बर्तनों के बनाने और उन्हें सजाने का काम स्त्रियाँ करती रही होंगी जैसा कि वर्त्तमान समय में पश्चिमी प्यूब्लो लोगों के समाज में प्रथा है। यह काम लीनिएज के दायरे के अंदर ही रहेगा और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को विरासत में मिलेगा। इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था का होना डिज़ाइन के लक्षणों के सुव्यवस्थित रूप से पसंद किये जाने से पता चलता है। इस अध्ययन से उन्हें अमरीका के दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्र में १२५० ई० तक निगमित कार्पोरेट या स्थानिक (लोकलाइज्ड) मातृ-लीनिएज होने की बात पता चली।

केण्ट फ्लैनरी और माइकेल कोने मध्य अमरीकी प्रागितिहास की 'फ़ार्मेटिव स्टेज' (१५००-८० ई० पू०) को समझने के लिये समाजशास्त्रीय ढाँचा बनाने की बात कही है। लेखकों का यह मत है कि अर्थ-व्यवस्थाएँ निश्चित प्रकार की परिस्थितियों से सम्बद्ध होती हैं और उनका समाज के विशिष्ट स्वरूपों के साथ प्रकार्यात्मक सम्बन्ध होता है। इन विद्वानों की राय में सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्थाएँ अनुकूलित (एडैप्टिक) व्यवस्थाओं की तरह काम करती हैं। इन लोगों ने 'लघुवातावरणों' या 'संसाधन क्षेत्रों' पर आधारित दो प्रकार की उपयोग-व्यवस्थाएँ पाई हैं। ग्वाटीमाला के निचले गाँवों में प्रत्येक कुटुम्ब को उस क्षेत्र में इस्तेमाल होने वाली सभी उत्पादन विधियों का लाभ मिल सकता था जिसको "संसर्गज वितरण" (कंटेजियस डिस्ट्रिब्यूशन) कहा जाता है। ग्वाटीमाला के ऊपरी क्षेत्र में विद्यमान है 'सहजीवी स्थिति' (सिम्बाएटिक सिचुएशन) जो संसर्गज व्यवस्था के सर्वथा विपरीत है। विशिष्ट संसाधनों की उपलब्धि और विशिष्ट कार्यों के निपटाने में बहुत अन्तर होने पर भी विभिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवासों और समुदायों को संतुलित वितरण होता था। शुरू में इन पुरातत्त्वविदों ने यह अनुमान लगाया था कि विविधता वाले वातावरण में पुर्नवितरण इस्तेमाल का एक अच्छा तरीका है। इस आधार पर उन्होंने संसर्गज विभक्तीकरण प्रक्रिया (कंटेजियस सेग्मेण्टेशन प्रासेस) और एकमार्गी–बहिर्विवाही वंश (यूनिलेटरल एक्ज़ोगैमस वलैन) संगठन तथा बहुशाखी संगठन और पुर्नवितरण के साथ सहभागी अर्थव्यवस्था के बीच प्रकार्यात्मक सम्बन्ध होने की बात कही। बाद में इन लोगों ने स्वीकार किया कि ऊपर चर्चित सम्बन्ध पूरी तरह सही नहीं पाये गए।

यह मानना होगा कि सामाजिक-सांस्कृतिक नृविज्ञान के इतिहास में अनुभवजनित तथ्यों पर आधारित सिद्धांत के अभाव होने पर भी 'फ्लैनरी' और 'को' ने पुरातात्त्विक साक्षी के आधार पर पुर्नवितरण की उत्पत्ति की चर्चा का साहसिक क़दम उठाया। इन पुरातात्त्विक नृवैज्ञानिकों की आलोचना इसलिये नहीं की जाती है कि पुरातत्त्व के स्वरूप या पुरातात्त्विक निरूपण का इनका दृष्टिकोण गलत है। डेविड एवर्ली का मत समीचीन जान पड़ता है कि इस प्रकार के पुरातात्त्विक निरूपण (आर्कियॉलॉजिकल इण्टरप्रिटेशन) के लिए एथ्नॉलॉजी और आर्कियॉलॉजी के बीच बराबर संपर्क और आदान-प्रदान होना आवश्यक है।

(५)

भारतवर्ष में पुरातात्त्विक अध्ययन सौ वर्षों से भी पहले शुरू हुआ था। भारतीय पुरातात्त्विक सर्वेक्षण पहले-पहल १८६० में स्थापित किया गया। अलेक्ज़ैण्डर कनिंघम पहले पुरातात्त्विक सर्वेक्षक नियुक्त हुए। रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के महामंत्री, जेम्स प्रिन्सेप ने १८३३ और १८३७ ई० के बीच में ब्राह्मी और खरोष्टीलिपियों के बारे में रहस्योद्घाटन कर महत्त्वपूर्ण योगदान किया। वर्त्तमान पुरातात्त्विक सर्वेक्षण विधिवत रूप से १९०२ ई० से काम कर रहा है। सर्वेक्षण की नीति और योजना तैयार करने में चालीस वर्ष का समय लग गया। भारतीय पुरातात्त्विक सर्वेक्षण ने चार नीतियों पर चलने की कोशिश की है: (१) नए क्षेत्रों का पता लगाना; (२) स्मारकों का संरक्षण; (३) पुरालेखीय (एपिग्रैफ़िक) शोध; तथा, (४) संग्रहालयों का विकास। यह ध्यान देने योग्य है कि इस कार्यक्रम में भूतकाल की संस्कृतियों के निरूपण और पुनःकल्पन की कोई चर्चा नहीं है।

१८४० ई० में फ्रांस के सोम नदी के सोपानों में बूशऽ द पर्थे ने सचमुच प्राचीन उपकरणों की प्राप्ति की घोषणा की थी। उस समय के तीन प्रसिद्ध ब्रिटिश विशेषज्ञ—इवान्स, फ़ाक्नर और प्रेस्विच—ने १८५९ ई० में इस दावे को स्वीकार किया। १८६३ ई० में लाएल ने "मनुष्य की प्राचीनता—संबंधी भूतात्विक साक्षियाँ" नामक ग्रंथ प्रकाशित किया। भारतीय भूतात्त्विक सर्वेक्षण के ब्रूस फ़ूट ने १८५९ ई० में मद्रास के पास पहला भारतीय पुरापाषाण पाया। उन्होंने बाद के चालीस वर्षों में पूरे दक्षिण भारत में घूम-घूम कर काफ़ी संख्या में प्रागैतिहासिक उपकरण इकट्ठे किये। एल० ए० कैमिएड ने जो उपकरण इकट्ठे किये थे उनका उस समय के जाने-माने प्रागितिहासज्ञ, माइल्स बर्किट ने १९३० में परीक्षण किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९३५ ई० में भारत में येल-कैम्ब्रिज शिष्टमण्डल आया। भारत के प्रागितिहास के अध्ययन में एक नया अध्याय जुड़ा। इस शिष्टमण्डल ने चतुर्थक (क्वाटर्नरी) युग के स्तरीकरण के बारे में अध्ययन किया और साक्षियाँ प्रस्तुत कीं। यह याद रखने की बात है कि भारत के किसी भी विश्वविद्यालय ने अथवा भारतीय पुरातात्त्विक सर्वेक्षण ने प्रागितिहास के अध्ययन में उस समय तक कोई योगदान नहीं किया था।

भारतीय पुरातात्त्विक सर्वेक्षण के एक भूतपूर्व निदेशक, श्री घोष ने हमें यह बतलाया है कि १९४० ई० के आसपास पुरातात्त्विक सर्वेक्षण ने खोज दल संगठित किये और तभी से पुरापाषाण-संबंधी-फ़ील्डवर्क एवं उत्खनन में रुचि ली जाने लगी। उसके पहले लगभग सारा शोधकार्य उन अधिकारियों द्वारा किया गया जो भूतात्त्विक सर्वेक्षण से संबंधित थे। जो काम हुआ वह वस्तुओं को खोद कर निकालने से संबंद्ध था। जिन लोगों ने उन वस्तुओं को बनाया था उनके जीवन एवं संस्कृति को चित्रित करने की ओर उन लोगों का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ जो उत्खनन या पुरावशेष-संचयन में लगे थे।

जैसा पहले बताया जा चुका है, एक सौ वर्ष से भी पहले ब्रूस फ़ूट ने प्राचीन प्रस्तर उपकरणों को एकत्र करना शुरू किया। लेकिन उनके द्वारा इकट्ठा किये गए उपकरणों की विशाल ढेरी से प्रागैतिहासिक संस्कृति की कहानी उभर कर नहीं आ सकी। यह नहीं भूलना चाहिए कि भारतीय पुरातत्त्व में नाटकीय और अविस्मरणीय सफलता प्रागितिहास के क्षेत्र में न होकर आधितिहासक (प्रोटोहिस्ट्री) के क्षेत्र में प्राप्त हुई थी। सिंधु घाटी की सभ्यता का पता लगाना, उसकी खुदाई करना और वहाँ मिली सामग्री का निरूपण करना स्थायी महत्त्व का काम था। आद्यितिहास के क्षेत्र में शोध करने वाले पुरातत्त्वविद् को नृविज्ञान पर किसी प्रकार की निर्भरता की ज़रूरत नहीं पड़ती है चाहे बात सैद्धान्तिक पक्ष की हो या तथ्यों के सांस्कृतिक परिवेश में निरूपण करने की। यहाँ पर पुरातत्त्वविद् अपने ऐतिहासिक या सामान्य ज्ञान से प्राप्त संवर्गों (कैटेगोरीज़) का ही उपयोग करता है। इसलिये यह आश्चर्य की बात नहीं है कि आद्यैतिहासिक क्षेत्र में अधिक सफलता प्राप्त करने वाले भारतीय पुरातत्त्वविदों ने नृविज्ञान को विशेष महत्त्व नहीं दिया क्योंकि उससे कोई प्रत्यक्ष सहायता नहीं मिली।

भारत के पुरातत्वविद् सामान्यतः इतिहास के विद्यार्थी होते हैं। शुरू से ही भारत में नृविज्ञान एक समन्वित विषय की तरह विकसित हुआ। इसके बारे में—विशेष रूप से नृविज्ञान से पुरातत्त्व को क्या मिल सकता है इस संबंध में—पुरानी दुनियाँ के पुरातत्वविदों का विचार नई दुनियाँ के पुरातत्त्वविदों से सर्वथा भिन्न है। भारतीय पुरातत्वविद् अभी भी शायद यही सोचता है कि जिस प्रकार पशुओं की अस्थियों के अवशेषों की पहचान कराने के लिये उन्हें उस क्षेत्र के विशेषज्ञों की राय लेनी पड़ती है या पराग-विश्लेषण से जलवायु कैसे जानी जाय इसके लिये पुराजलवायु विशेषज्ञ (पैलियोक्लाइमेटॉलॉजिस्ट) की सहायता लेना ज़रूरी हो जाता है; उसी प्रकार उत्खनन में प्राप्त हुई मानव-अस्थियों की पहचान कराने वे (जैविक) नृवैज्ञानिक से संपर्क स्थापित करने के लिये जा सकते हैं। यह सही है कि यह काम विशेषज्ञ का है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैविक नृवैज्ञानिक मानव जीवाश्मवैज्ञानिक की तरह जो दक्षता प्राप्त करता है पुरातत्त्वविद् उसका लाभ उठा सकता हैं।

स्वर्गीय वेन्दुपदी सुऽबाराव ने लगभग पच्चीस वर्ष पहले जो मत व्यक्त किया था वह भारत के अधिकांश पुरातत्त्वविदों की वर्त्तमान राय से भिन्न नहीं जान पड़ता है। उन्होंने यह कहा था कि इस देश में पुरातत्व और नृविज्ञान के बीच सहयोग की सबसे अधिक गुंजाइश है। यह सहयोग "जीवाश्मित कांकालिक सामग्री, जिसमें अर्वाचीन ऐतिहासिक समुदायों को भी शामिल किया जा सकता है, तक ही सीमित है।" पुरातत्त्व के विद्यार्थी को नृवैज्ञानिक वे सूचनाएँ प्रदान करने की चेष्टा करता है जो प्रजातीय प्रकारों और भूतकाल के प्रजातीय देशांतरण के बारे में हों। इस दृष्टि कोण के अनुसार पुरातत्त्वविद् अन्य विषयों की तरह नृविज्ञान को भी वे सूचनाएँ देने का काम सौंपना चाहता है जिन्हें वह स्वय प्राप्त नहीं कर सकता। सुब्बाराव यह भी चाहते हैं कि नृवैज्ञानिक जीवित और जीवाश्मित (?) समुदायों की पादार्थिक संस्कृति के अध्ययन से उनके परस्पर संबंधों को समझते में पुरातत्त्व की मदद करे। ऐसा लगता है कि सुब्बाराव और अन्य भारतीय पुरातत्त्वविदों का नृविज्ञान के कुछ छुट-पुट 'विचार' और 'शब्दों' को अपनाने और नृतात्त्विक ढाँचे और सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि में पुरातात्त्विक शोध करने में कितना अंतर है यह बात या तो समझ नहीं पाते हैं या समझना नहीं चाहते हैं।

भारतीय पुरातत्त्व के वयोवृद्ध विद्वान, डॉ० संकालिया को भारत में 'नए पुरातत्त्व' की बात करने का श्रेय देना होगा। नये पुरातत्व की बात पहले-पहल नई दुनियाँ में की गई इसलिये डॉ० संकालिया को इसकी प्रेरणा वहाँ के पुरातत्त्वविदों से मिली होगी। यह याद रखना होगा कि नई दुनियाँ के पुरातत्त्वविद् अपना पुरातात्त्विक शोध नृविज्ञान के सैद्धान्तिक एवं विषय-संबंधी पृष्ठभूमि और परिवेश में करते हैं। डॉ० सांकलिया पुरानी पीढ़ी के पुरातत्त्वविद् हैं और चाइल्ड की परंपरा से जुड़े रहे हैं। इसलिये नई दुनियाँ के 'नए पुरातत्त्व' के प्रवर्तकों और समर्थकों की तरह नृवैज्ञानिक परंपरा के अन्दर पुरातात्त्विक शोध करने और कराने को डॉ० सांकलिया और उनके सहयोगी अभी भी तैयार नहीं हैं। अधिक से अधिक पुरातात्त्विक सामग्री के पूरक के रूप में वे लोकवार्ता और संजातिवृत्तीय साक्षियों का उपयोग भर कर सकते हैं। इन लोगों के अनुसार पुरातत्त्व और नृविज्ञान का यही उचित संबंध है।

यूरोपीय देशों के विपरीत, लेकिन अमरीकी महाद्वीप के देशों के समान, भारत में ऐसे लोग अभी भी रहते हैं जिन्हें 'आदिम', 'आदिवासी' 'जनजाति' आदि कहा जाता है। मध्य और दक्षिणी अमरीका की तरह भारत में भी जनजातीय लोग सभ्य समूहों के साथ-साथ सदियों से ही नहीं बल्कि सहस्राब्दियों से रहते आये हैं क्योंकि दुनियाँ को पता है कि भारतीय सभ्यता हज़ारों साल पुरानी है। ब्रिटिश प्रशासकों ने यह जानना चाहा कि इस देश में कौन-कौन से समुदायों के लोग रहते हैं। 'भारतीय जन' (पीपुल्स आव इंडिया) से परिचित होने के उद्देश्य से ब्रिटिश प्रशासकों ने 'जातियों और जन जातियों' पर रिपोर्टें लिखीं। ये रिपोर्टें प्रशासनिक सुविधा के लिये लिखी गईं थीं न कि बौद्धिक उद्देश्य से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमरीकी नृवैज्ञानिकों ने भी अपने यहाँ के 'आदिवासियों' का अध्ययन किया था जैसा कि भारतवर्ष में हुआ। इन दोनों देशों में एक साम्य था कि नृवैज्ञानिक को अपने देश के बाहर नहीं जाना पड़ा। आदि वासियों के अध्ययन के लिये अमेरिकन इंडियन लोगों का अध्ययन अमरीकी नृवैज्ञानिक के लिये 'पर-संस्कृति' (अदर कल्चर) का अध्ययन था। द्वितीय महायुद्ध के बाद अमरीकी नृवैज्ञानिक देश के बाहर प्रशांत महासागर के क्षेत्र, दक्षिण और दक्षिणपूर्व एशिया, पश्चिम एशिया, अफ्रीका, और यूरोप में नृवैज्ञानिक फ़ील्डवर्क करने गए। लेकिन भारत का नृवैज्ञानिक अपने देश के बाहर काम करने नहीं गया। भारत की जनजातियों का भारतीय मूल के नृवैज्ञानिकों द्वारा अध्ययन 'स्व-अध्ययन' (सेल्फ-स्टडी) की श्रेणी में आता है न कि 'पर-संस्कृति' कहा जायगा। जनजातियों का जातियों में बदलना सदियों से होता रहा है। इस कारण जनजातियों के साथ-साथ जातियों का अध्ययन भी स्वतः नृविज्ञान का काम हो गया है।

अपनी संस्कृति के किसी अंश का नृवैज्ञानिक अध्ययन पद्धतिशास्त्रीय दृष्टिकोण से महत्व रखता है। भारतीय नृवैज्ञानिक 'पर-संस्कृतियों' के अध्ययन में पीछे हैं लेकिन 'स्व-अध्ययन' में अग्रणी हैं। दूसरे देशों के नृवैज्ञानिक जो 'पर-संस्कृति' अध्ययन में आगे रहे हैं 'स्वाध्ययन' में काफी पीछे हैं। यह सच है कि 'स्वाध्ययन' में भी भारतीय नृवैज्ञानिक अपनी विशिष्ट परंपरा नहीं बना पाए हैं। अपनी संश्लिष्ट संस्कृति को हम अनुभव जनित तथ्यों के आधार पर सार्थक इकाइयों और उप-संस्कृतियों में उपविभाजित करने का काम भी अभी तक पूरा नहीं कर पाये हैं। हाल तक सामुदायिक-और ग्राम्य-अध्ययनों पर ज़ोर दिया जाता रहा है। यह दुर्भाग्य की बात है कि हमारे द्वारा किया जाने वाला भारतीय समाज और संस्कृति का अध्ययन समुदायों और गाँवों की सीमाओं से यदा-कदा ही बाहर जा पाया है। यह निर्विवाद है कि इस तरह के अध्ययनों से भारत में पुरातत्व को समुचित नृवैज्ञानिक दिशा-निर्देश नहीं दिया जा सकेगा जिसकी हमें अपेक्षा है।

रैडक्लिफ़-ब्राउन ने जाति विज्ञान (एथ्नॉलॉजी) और सामाजिक नृविज्ञान में जो भेद किया उसका भारत के नृवैज्ञानिकों पर कुछ अधिक ही प्रभाव पड़ा जान पड़ता है। यहाँ जाति विज्ञान शब्द का प्रयोग वर्जित-सा है। नाम को बहुत महत्व नहीं देना चाहिए। लेकिन यह आश्चर्यजनक है कि भारत ऐसे देश में जहाँ लंबी ऐतिहासिक परंपरा है वहाँ ऐतिहासिक नृविज्ञान का अध्ययन हुआ ही नहीं है। इस संबंध में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं :

> "भारतवर्ष में हम कम-से-कम पाँच हज़ार वर्ष पुरानी सांस्कृतिक परंपरा का अध्ययन करते हैं। हम लोग 'इतिहास रहित' जन नहीं हैं। पाश्चात्य शैली की हिस्ट्री' और इतिहास एक ही चीज नहीं हैं। इतिहास का शब्दार्थ है : "वास्तव में ऐसा था"। हमारे पारंपरिक इतिहास में "बातचीत, दंतकथा, परंपरा, हिस्ट्री, पहले की घटनाओं का पारंपरिक विवरण" सम्मिलित माने जाते हैं। एक पेशेवर इतिहासज्ञ चाहे जो सोचे नृविज्ञान के विद्यार्थी के लिये लोगों के मन में बसे जीवंत इतिहास (भूतकाल के चित्र) का ही महत्व है। भारत की जनसंख्या का एक अंश अभी हाल तक अनक्षर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। वे लोग अब अनुसूचित जनजातियों के नाम से जाने जाते हैं। इनमें से कुछ क़बीलों की चर्चा तो हमारे चार हज़ार से भी पुराने धर्म ग्रंथों में पाई जाती है। जब यूरोप में प्रागितिहास शुरू हुआ तो वहाँ सभ्य लोगों के साथ-साथ आदिम लोग निवास नहीं करते थे। नई दुनियाँ की कोलंबस द्वारा खोज और गोरे लोगों के वहाँ पहुंचने के बहुत पहले से आदिवासी लोग रहते आये थे। लेकिन उनके पूर्वजों के जीवन-वृत्तान्त को गोरे अमरीकियों के इतिहास से जोड़ा नहीं जा सकता था। भारतवर्ष में तथाकथित आदिम कहे जाने वाले लोग 'विकसित' कहे जाने वाले लोगों के निकट संपर्क में हज़ारों वर्षों से जीवन बिता रहे हैं। ऐसी स्थिति में इन आदिवासियों के जीवन के सादृश्य से सार्थक सांस्कृतिक-ऐतिहासिक एकीभवन होना चाहिए था। लेकिन यह खेद का विषय है कि भारतीय नृवैज्ञानिकों ने अब तक इस अनोखी ऐतिहासिक स्थिति का निहितार्थ नहीं समझा।"

ऊपर भारतवर्ष में काम करने वाले पुरातत्वविदों की आलोचना की गई है। लेकिन यह भी सच है कि भारत में नृविज्ञान के विद्यार्थी कम दोषी नहीं हैं। यह मानना पड़ेगा कि हमारे देश के सामाजिक-सांस्कृतिक नृविज्ञान के विद्यार्थियों ने पुरातत्त्वविद् को नृवैज्ञानिक परिवेश में शोध करने के लिये समुचित आधारभूत सामग्री नहीं प्रदान की जिसके सहारे पुरातात्त्विक तथ्यों की व्याख्या करने के लिये वह बाध्य होता। सामाजिक-सांस्कृतिक नृविज्ञान मुख्य रूप से सामाजिक संबंधों के ढाँचे को समझने में लगा रहा। इसलिये 'वास्तविकतापरक-संस्कृति' (रियलिटी कल्चर) और 'मूल्य परक संस्कृति' (वैलू कल्चर) के अध्ययन पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया। प्राप्त पादार्थिक सामग्री से ही जाने गए प्रागक्षर (प्रीलिटरेट) समाज के सामाजिक समूहों और संबंधों के ताने-बाने को पुनः कल्पित करना पुरातत्त्व के विद्यार्थी को बहुत पेचीदा काम लगता है। इस काम के लिये लोगों के पास जो सामग्री हो उसका विस्तृत विवरण और उनके बनाने एवं इस्तेमाल करने का तरीक़ा महत्त्वपूर्ण है। पुरातत्त्वविद् को बहुत सहायता मिलेगी यदि सामाजिक-सांस्कृतिक नृवैज्ञानिक उसे यह बता सके कि प्रौद्योगिक सांस्कृतिक विकास के विभिन्न चरणों में लोगों के जीवन में उनकी पादार्थिक सामग्री का सामाजिक संबंधों और मूल्यों से किस प्रकार ताल-मेल बैठता है। यहाँ फिर से यह याद दिला देना होगा कि नृविज्ञान की छत्र-छाया में काम करने वाले अमरीकी पुरातत्त्वविदों ने यह काम सफलतापूर्वक किया है।

भारत दुनियाँ के उन गिने-चुने देशो में से एक है जहाँ खेती के लिये ट्रैक्टर के साथ हल और 'हो' भी काम में लाये जाते हैं। यहाँ हवाई जहाज़ और मोटर कार के साथ बैलगाड़ी भी यातायात का साधन है और पक्के राजमार्गों के साथ-साथ कच्ची पगडंडियाँ भी पाई जाती हैं। मशीनीकरण के परिणामस्वरूप पारंपरिक कला-कौशल और दस्तकारियाँ पूर्णतया अभी लुप्त नहीं हो गई हैं। लेकिन परिवर्तन का चक्र इतनी तेज़ी से चल रहा है कि जो चीजें आज आम हैं वे कल देखने को न मिलें। एक प्रकार की पादार्थिक सामग्री की जगह दूसरे प्रकार की सामग्री का आ जाना और अन्य रूपांतरणों को भारत के नृवैज्ञानिकों द्वारा सावधानी और आवेग रहित भाव को समझ कर उन्हें लिपिबद्ध करना चाहिए। नए प्रकार के नृवैज्ञानिक अध्ययन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारे में बात करते समय अमरीकी नृवैज्ञानिक-पुरातत्त्व विद्, राबर्ट ऐशर, ने भी इसी तरह की बात की है।

ऐशर का कहना है कि प्रत्येक जीवित समाज में इस्तेमाल होने वाली वस्तुओं में अनवरत परिवर्तन होता रहता है। किसी भी समय कुछ सामान बेकार हो जाते हैं इसलिये उनकी जगह नये सामान काम में लाये जाने लगते हैं। इस दृष्टिकोण से देखने पर प्रत्येक समुदाय के जीवन का एक भाग ऐसी अवस्था को प्राप्त हो चुका है कि शीघ्र ही वह पुरातात्त्विक तथ्य बन जाएगा। जब नई वस्तुएँ पुरानी वस्तुओं का स्थान लेना बंद कर देती हैं तो पूरा समुदाय ही पुरातात्त्विक तथ्य बनने की स्थिति को पहुँच जाता है। एक विद्यमान समाज का वह अंश जो रूपांतरित हो रहा है जाति विज्ञान (एथ्नॉलॉजी) और पुरातत्त्व (आर्कियॉलॉजी) दोनों के अवलोकनात्मक अध्ययन का क्षेत्र है। पुरातात्त्विक निरूपण में सादृश्य (एनॉलॉजी इन आर्कियॉलॉजिकल इण्टरप्रिटेशन) के लिये सबसे हितकर है एक वर्त्तमान समाज में इन विशेष तथ्यों का अध्ययन करना।

१९५४ ई० में डिज्नी प्रोफ़ेसर आव आर्कियॉलॉज़ी की तरह कैम्ब्रिज़ विश्वविद्यालय में दिये गए अपने उद्घोषण भाषण में ग्रैहेम क्लार्क ने प्राथमिक या मूल-प्रागितिहास और द्वितीयक या पार्श्व-प्रागितिहास (मार्जिनल प्रीहिस्ट्री) में भेद किया है। उनके मतानुसार मूल प्रागितिहास "वह प्रागितिहास है जो विश्व भर में इतिहास के आरंभ होने के पहले आता है और साक्षर सभ्यताओं का आधार है।" जैसा इस पाठ में पहले ही बताया जा चुका है, आक्सफ़र्ड विश्वविद्यालय के पुरातत्त्वविद्, क्रिस्टॉफ़र हॉक्स, ने कहा है कि प्रागक्षर लोगों से संबंधित 'ग्रंथरहित' पुरातत्त्व ने एक सौ वर्ष से भी पहले अपने आप को नृविज्ञान का अंग मान लिया था। आवश्यकता इस बात की है कि पुरातात्त्विक नृवैज्ञानिक और नृवैज्ञानिक परंपरा में प्रशिक्षित पुरातत्त्वविद् भारतवर्ष में भी प्राथमिक (मूल) प्रगितिहास के क्षेत्र में नृवैज्ञानिक दृष्टिकोण और सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में पुरातात्त्विक शोध करना शुरू कर दें।

द्वितीयक (अथवा पार्श्व) प्रागितिहास के बारे में ग्रैहेम क्लार्क का मत यह है: "दूर-दराज़ के क्षेत्रों में (द्वितीयक प्रागितिहास) अपेक्षाकृत सहज-गम्य क्षेत्रों में लिखित इतिहास के समानान्तर चलता है। पार्श्व प्रागितिहास काफी बड़े क्षेत्र में विद्यमान रहा और उसे पश्चिम के गवेषकों ने पहले-पहल वहाँ पहुँच कर प्रभावित किया और जिसकी नृवैज्ञानिकों ने छान-बीन की है।" उन्होंने यह स्वीकार किया है कि द्वितीयक या पार्श्व प्रागितिहास तथा अनक्षर पुरातत्त्व (नानलिटरेट आर्कियॉलॉजी) नृविज्ञान का अध्ययन विषय है।

एक दूसरे दृष्टिकोण से देखने पर पुरातत्त्व का नृविज्ञान के साथ दो प्रकार के संबंध देखने को मिलते हैं। मॉर्टन फ्रीड ने पुरातत्त्व की धाराओं में उत्कृष्ट ढंग से अंतर बतलाया है: प्रथम, वह पुरातत्त्व जिसे तुलनात्मक संजाति वृत से सूचनात्मक सहायता मिलती है; द्वितीय, वह पुरातात्त्विक अध्ययन जो सामाजिक-सांस्कृतिक नृविज्ञान की छत्रछाया और परिप्रेक्ष्य में किया जाय। हमने यह देखा है कि पुरानी दुनियाँ में पुरातत्त्व को सामाजिक—सांस्कृतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नृविज्ञान का संरक्षण बहुत कम मिला है। हाँ, ग्रैहेम क्लार्क जैसे कुछ गिने-चुने पुरातत्त्वविदों ने अपने पुरातात्त्विक शोध के लिये यदा-कदा तुलनात्मक सजातिवृत्त की सहायता ज़रूर ली है। कुछ अन्य लोगों ने नृविज्ञान की चर्चा या उसके प्रति मात्र आभार-प्रदर्शन कभी-कभी कर दिया है।

सामाजिक-सांस्कृतिक नृविज्ञान के संरक्षण में किये जाने वाले पुरातत्त्व को बढ़ावा देने के लिये नृवैज्ञानिकों को अधिक सक्रिय भूमिका निभानी होगी जिससे पुरानी दुनियाँ में, सामान्य रूप से, और भारत में, विशेष रूप से, इस तरह के शोध होने लगें। साधारणत: सामाजिक-सांस्कृतिक नृवैज्ञानिक वर्त्तमान समाजों के संबंधों और संस्थाओं के ताने-बाने का अध्ययन करता है। वह अपना काम बड़ी सतर्कता से करता है। उसके दृष्टिकोण से वह सामाजिक व्यवस्था को एक आंशिक-प्रणाली (पार्ट-सिस्टम) मानता है जिसका एक सांस्कृतिक समष्टि के अंतर्गत दूसरी आंशिक-प्रणालियों से प्रकार्यात्मक संबंध होता है। वह विश्लेषण और पर्यवेक्षण से यह पता लगाता है कि उद्भव (डिसेंट), आवास (रज़िडेन्स), उत्तराधिकार (इन्हेरिटेन्स), पारिवारिक प्ररूप (टाइप) आदि एक-दूसरे के साथ कैसे जुड़े हुए हैं। इनका अध्ययन शायद उसे यह भी बता सके कि उपहार देना एवं अनुष्ठान भी उद्भव और उद्भव-जनित समूहों से असंबद्ध नहीं है। संस्थाओं और संबंधों के बीच प्रकार्यात्मक संबंधों का प्रदर्शन सामाजिक नृविज्ञान के लिये उपयोगी हो सकता है। लेकिन पुरातत्त्व के विद्यार्थी के लिये यह जानना अधिक लाभदायक हो सकता है कि एक सांस्कृतिक समष्टि के अंदर एक सामाजिक उप प्रणाली, पारिस्थितिकीय, आर्थिक, धार्मिक अथवा अन्य उपप्रणालियों के साथ कैसे जुड़ी है। पुरातत्त्वविद् यह भी जानना चाहेगा कि जीवन-निर्वाह के लिये विशेष प्रकार की पादार्थिक सामग्री और उपकरणों के उपयोग के साथ आवास-स्वरूप और उद्भव से कोई संबंध है अथवा नहीं। क्या यह कहा जा सकता है कि मातृमार्गी प्रणाली से पितृमार्गी प्रणाली इसलिये उत्तम है कि परवर्त्ती में पारिवारिक समूहों में भाई चारा बढ़ने के कारण उपलब्ध आर्थिक संसाधनों का अधिक कुशल उपयोग हो पाया ? विभिन्न प्रकार की सामाजिक एवं आर्थिक प्रणालियों में पुरुषों और स्त्रियों में यौन के आधार पर किये जाने वाले कार्य विभाजन और दस्तकारियों के बारे में विस्तृत विवरण से भी पुरातत्त्व का विद्यार्थी बहुत अधिक लाभ उठा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ

Ascher, Robert. 1962. "Ethnography for archaeologists : a case from Seri Indians". *Ethnology*, Vol. 1 : 360-69.

Chang, K. C., 1967. *Rethinking Archaeology*. New York : Random House.

Childe, V. Gordon, 1956. *Peicing Together the Past*. London : Routledge and Kegan Paul.

Childe, V. Gordon, 1962. *A Short Introduction to Archaeology*. New York : Collier Books.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Daniel, Glyn, 1964. *The Idea of Prehistory*. Harmodsworth, Middlesev : Penguin Books.

Daniel, Glyn. 1967. *The Origins and Growth of Archaeology*. Harmondsworth, Middlesex : Penguin Books.

Deetz, James, 1968. "The inference of residence and descent rules from archaeological data" in *New Perspectives in Archaeology* edited by S. R. Binford and L. R. Binford, pp. 41-48. Chicago : Aldine Publishing Company.

Dobzhansky, Theodosius, 1963. "Anthropology and the natural sciences: the problems of human evolution"- *Current Anthropology*, Vol. 4: 138 and 146-48.

Flannery, Kent V. and Michael D. Coe., 1968. "Social and economic systems in Formative Mesoamerica" in *New Perspectives in Archaeology* edited by S. R. Binford and L. R. Binford, pp. 267-84. Chicago : Aldine Publishing Company.

Ghosh, A. 1953. "Fifty Years of Archaeological Survey of India". *Ancient India*, No. 9 :29-52.

Gjessing, G. 1963. "Archaeology, Nationalism and Society" in *The Teaching of Anthropology* edited by David G. Mandelbaum et al pp. 261-67. American Anthropological Association, Memori No. 94.

Hawkes, Christopher, 1954. "Archaeological Theory and Method : Some Suggestions from the Old World". *American Anthropologist*. Vol. 56: 155-68.

Heider, Karl, 1967. "Archaeological assumptions and ethnographic facts: a cautionary tale from New Guinea. *Southwestern Journal of Anthropology*, Vol. 23 : 52 ff.

Hill, James N. 1968. "Broken K. Pueblo : patterns of form and function" in *New Perspetives on Archaeology* edited by S. R.Binford and L. R. Binford, pp. 103-42. Chicago : Aldine Publishing Company.

Kroeber, A. L. 1948. *Anthropology*. New York : Harcourt and Brace.

Lee, Richard B. 1968. "Comments" in *New Perspectives on Archaeology* edited by S. R. Biford and L. R. Binford, pp. 343-46. Chicago: Aldine Publishing Company.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Longacrae, William A. 1964. "Archaeology and anthropology". *Science*, Vol. 144 (3625) : 1454-55.

Longacrae, William A. and J. E. Ayers. 1968. ' Archeological lessons from an Apache Wickiup" in *New Perspectives on Archaeology* edited by S. R. Binford and L. R. Biford, pp. 151-60. Chicago : Aldine Publishing Company.

Sacket, James R. 1968. "Method and theory of upper palaeolithic archaeology in Southwestern France" in *New Perspectives on Archaeology* edited by S. R. Binford and L. R. Biford, pp. 61-84, Chicago : Aldine Publishing Company.

Sarana, Gopala. 1971. "Archaeological interpretation and anthropology" in *Studies in Indian History and Culture* edited by S. Ritti and B. R. Gopal. Dharwar : Karnatak Education Board for P. B. Desai Felicitation Committee.

Struever, Stuart. 1968. "Woodland subsistence—settlement systems in the lower Illinois valley" in *New Perspeciives on Archaeology*, pp. 285-312. Chicago : Aldine Publishing Company.

Subbarao, B. 1962. "Archaeology and anthropology in India" in *Indian Anthropology* edited by T. N. Madan and Gopala Sarana. Bombay : Asia Publishing House.

Wheeler, Mortimer. 1954. *Archaeology from the Earth*. Harmondsworth, Middlesex : Penguin Books.

Willey, Gordon R. and Philip Phillips, 1958. *Method and Theory in American Archaeology*. Chicago : University of Chicago Press.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राम-विकासोन्मुखी ऐच्छिक संगठनों की सामाजिक आर्थिक संरचना (उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में)

डॉ० रामबली मिश्र

भूमिका

किसी भी देश के विकास के लिए उस देश के दो पहलू सामाजिक और आर्थिक—एक दूसरे के पूरक हैं। सामाजिक-आर्थिक विकास संबंधित उत्तरदायित्व अब तक राष्ट्रीय स्तर पर सरकार के ही कंधों पर था। विशेषकर भारत जैसे देश पर यह बात स्पष्ट रूप से लागू होती है। स्वतंत्रता के पूर्व अंग्रेजी शासन काल में भी ऐच्छिक संगठनों को कोई जानता तक नहीं था। न ही ऐसे संगठनों के निर्माण पर ही अंग्रेजी-सरकार ने यहाँ की जनता को प्रेरित किया। स्वतंत्रता के पश्चात कुछ संगठनों का अस्तित्व में आना शुरू हुआ। किन्तु इनकी संख्या आज भी पूरे भारतवर्ष की कुल जनसंख्या के अनुपात में बहुत कम है। जो है भी उनकी प्रस्थिति, भूमिका एवं उपयोगिता से संबंधित जानकारी या तो उन संस्थाओं को है अथवा उनके अधिनियमों का लेखा पंजीकरण कार्यालयों में पड़ा हुआ है। जो भी हो, बिना ऐच्छिक संगठनों के वृक्षारोपण, सिंचन और पोषण के, अकेले सरकारी संगठन असफल सिद्ध हो रहे हैं। सरकारी संगठनों में व्याप्त जटिल और निष्क्रिय अधिकारी तंत्र के कारण अपेक्षित उपलब्धियाँ न्यून रही हैं। सरकारी तंत्र के कार्यकर्ता कल्याण-कार्य-क्रमों को उपेक्षा और फर्ज़-अदायगी की दृष्टि से देखते हैं। और कार्य-क्रमों के निमित्त प्राप्त धन-राशि का दुरुपयोग होता है। प्राय: यह भी देखा गया है कि कार्य-क्रम हेतु स्वीकृत धन राशि समाज के उस वर्ग तक नहीं पहुंच पाती जिसके लिए वह धन राशि प्रयोजित होती है। उदाहरण स्वरूप सरकार के समन्वित ग्रामीण विकास कार्य-क्रम को देखा जा सकता है। इस कार्यक्रम की सफलता संबंधित आँकड़े भले ही सरकारी कागजों पर अंकित हों किन्तु वस्तुतः सफलता का लक्ष्य नगण्य रहा है। अनुभवाश्रित एवं सर्वेक्षित तथ्य इस बात की पुष्टि करते हैं। भारतवर्ष की वर्तमान स्थिति

डा० रामबली मिश्र, प्राध्यापक समाजशास्त्र विभाग, बी० एन० के० बी० पी० जी० कालेज, अकबरपुर, फैजाबाद (उ० प्र०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को ध्यान में रखते हुए सरकार द्वारा भी यह अनुभव किया जा रहा है कि समाज कल्याण विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र के कल्याण हेतु ऐच्छिक संगठनों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए तभी प्रत्याशित लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है। भारतवर्ष जैसे समाज का जो कि मौलिक रूप से अनेक गाँवों का आज भी एक झुण्ड ही है, विकास एक अपरिहार्य आवश्यकता और समय की पुकार है गाँवों की ८० प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या के सामाजिक-आर्थिक विकास से ही देश का पूर्ण रूप से विकास संभव है।

उद्देश्य

प्रस्तुत प्रपत्र का उद्देश्य है—उत्तर प्रदेश में कार्यशील स्थानीय प्रान्तीय और राष्ट्रीय स्तर के ऐच्छिक संगठनों के सामाजिक और आर्थिक ढाँचे का विवरण प्रस्तुत करना और साथ ही इनके स्थानीय, प्रान्तीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय शाखाओं से संबंधित ज्ञान प्रस्तुत करना। उपर्युक्त प्रपत्र के लिए अलग से तथ्य संकलित नहीं किये गये हैं बल्कि आल इन्डिया डायरेक्टरी आफ वालेन्टरी एजेन्सीज इन रूरल डेवलपमेंट (१९८१) को तथ्य का श्रोत मानकर उसमें वर्णित उत्तर प्रदेश के विभिन्न स्वेच्छिक संगठनों के सामूहिक स्वरूप के सामाजिक और आर्थिक पक्ष को समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में देखना लेखक का एक लघु प्रयास है। इस प्रपत्र का मात्र इतना ही अंशदान है कि जो सामग्री उपर्युक्त पुस्तक में विखरी हुई थी उसे व्यवस्थित ढंग से एक चित्र के रूप में लेखक ने प्रस्तुत कर दिया है।

समग्र

वैसे तो उत्तर प्रदेश में कुल ५१ ऐच्छिक संगठनों के कार्य करने से संबंधित लेखा अथवा सूची उपर्युक्त पुस्तक (निर्देशिका) में उपलब्ध है किन्तु ५१ में से केवल १४ संगठनों का ही अलग वर्णन उपलब्ध है : शेष ३७ संगठनों की मात्र सूची दी गई है। अतः प्रस्तुत प्रपत्र में केवल १४ संगठनों पर आधारित सामूहिक अभिलेख प्रस्तुत किया गया है जो कि पूर्वोल्लिखित सामग्री का पुनः संग्रहण और पुनर्विवेचन है।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, अंग्रेजी शासन काल में भारत में देहरादून जनपद में राष्ट्रीय स्तर को अशोक आश्रम (१९४२) नामक एक मात्र ऐच्छिक संगठन ने विकास की वीणा बजायी थी। स्वातंत्रयोत्तर काल में सन् १९४८-५३ के बीच पुनः दो संगठनों के अस्तित्व में आने का समाचार वस्तुतः हमारी राष्ट्रीय स्वतंत्रता की उपलब्धि मानी जानी चाहिए। १९५४-५९ के बीच तीन अन्य संगठनों का अभ्युदय हुआ किन्तु खेद का विषय है कि उत्तर प्रदेश में १९६०-६५ के बीच कोई भी नवीन संगठन नहीं स्थापित हो सका। अतः ग्रामीण विकास के क्षेत्र में १९६०-६५ की अवधि को एक संगठनात्मक-अंतराल के रूप में देखा जाना चाहिए। पुनः १९६६-७१ के बीच तीन और संगठन अस्तित्व में आये। किन्तु १९७८-८१ में मात्र दो ही संगठन स्थापित हो सके। उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि १९६०-६५ के वर्गान्तराल को छोड़कर शेष अन्य सभी वर्गान्त-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रालो में से किसी भी वर्गान्तराल में तीन से अधिक संगठन के बनने का प्रमाण नहीं मिलता जो कि उत्तर प्रदेश जैसे घनी आबादी वाले क्षेत्र के लिए बहुत ही कम है। अतः प्रान्तीय और राष्ट्रीय सरकारें इस क्षेत्र में गम्भीरतापूर्वक विचार करें तथा साथ ही ऐच्छिक संगठनों की स्थापना हेतु उत्तर प्रदेश के प्रबुद्ध वर्ग को इस क्षेत्र में कदम बढ़ाने के लिए प्रेरित करें तभी इस प्रान्त का सामाजिक-आर्थिक विकास सम्भव हो सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि इन संगठनों के लिए अलग से वृहद् धनराशि की निधि का निर्माण हो और स्वीकृति की शर्तें कठोर न होकर लचीली हों तथा उस पर वर्तमान अधिकारी तंत्र-संरचना के चंगुल का न्यूनतम प्रभाव हो। ऐच्छिक संगठनों के लिए स्वीकृत धनराशि का उपयोग स्वयं ऐच्छिक संगठन के पदाधिकारी अपने विवेक का प्रयोग करते हुए करें तथा इस संदर्भ में क्षेत्रीय अथवा जनपद स्तरीय अधिकारियों का न्यूनतम हस्तक्षेप हो तभी ऐच्छिक संगठन एक स्वायत्त इकाई के रूप में स्वतंत्रता के स्वस्थ वातावरण में अपनी क्षमताओं का विकास की उपजाऊ धरातल पर आत्म प्रदर्शन कर इच्छित उद्देश्य को प्राप्त कर सकते हैं।

सारिणी संख्या—१ में विभिन्न ऐच्छिक संगठनों को उनकी स्थानिक स्थिति और स्थापना वर्ष के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।

सारिणी संख्या—१

संगठन का स्तर	स्थानिक स्थिति	स्थापना वर्ष
स्थानीय	१ रतनपुर [जौनपुर]	१९४९
	२ देवगाँव [देवरिया]	१९५१
	३ सेवापुरी [वाराणसी]	१९५५
	४ पाली राजापुर [अलीगढ़]	१९५७
	५ जोशीमठ [चमोली]	१९६६
	६ घासीपुर [बहराइच]	१९७०
	७ अमरपुर काशी [मुरादाबाद]	१९७०
	८ दौला [मेरठ]	१९७५
	९ चमोली	१९७६
प्रान्तीय	१ हरिद्वार	१९५५
राष्ट्रीय	१ देहरादून	१९४२
	२ लखनऊ	१९७६
	३ गाजियाबाद	१९७६
	४ मोदी नगर	१९७९

कुल संगठनों की संख्या :— १४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त सारिणी को देखने से यह ज्ञात होता है कि कुल नौ स्थानीय संगठनों में से आठ (८८.८८ प्रति०) संगठन ग्रामीणांचल में स्थापित हैं । प्रान्तीय स्तर का संगठन धार्मिक केन्द्र हरिद्वार में स्थापित है और राष्ट्रीय स्तर के चार संगठनों में तीन संगठन विभिन्न जनपदों के मुख्यालयों पर और एक संगठन औद्योगिक नगर मोदीनगर में स्थापित है ।

ग्राम सेवा सहभागिता

कुल १४ संगठनो में से तीन संगठन आंशिक रूप से और ११ पूर्ण रूप से ग्रामीण विकास हेतु कार्य कर रहे हैं । आंशिक रूप से कार्य करने वाले संगठनों में से एक स्थानीय स्तर, दूसरा प्रान्तीय स्तर और तीसरा राष्ट्रीय स्तर का है । पूर्णरूप से समर्पित संगठनों में से ८ संगठन स्थानीय स्तर और तीन राष्ट्रीय स्तर के हैं । आंशिक रूप से ग्रामीण समाज की सेवा प्रदान करने वाले विभिन्न स्तरीय संगठनों की ग्राम सेवा सहभागिता का प्रतिशत (३३.३३ प्रति० प्रत्येक) समान है किन्तु पूर्णरूप से ग्रामीण समाज की सेवा प्रदान करने वाले स्थानीय संगठनों की सहभागिता ग्राम सेवा सहभागिता की प्रतिशतता २७.२७ प्रति० है । अतः अन्य उच्चस्तरीय संगठनों की अपेक्षा स्थानीय संगठनों की सह ग्रामसेवा भागिता ग्रामीण विकास के क्षेत्र में सर्वाधिक है ।

विभिन्न स्तर के संगठनों की शाखायें भिन्न - भिन्न स्तरों तक फैली हुई हैं । सभी राष्ट्रीय स्तर के संगठन की शाखायें प्रान्तीय स्तर तक, प्रान्तीय स्तर के संगठन की शाखा स्थानीय स्तर तक, स्थानीय स्तर के संगठन की शाखायें जिला और ब्लाक स्तर तक फैली हुई हैं । राष्ट्रीय स्तर के कुल चार संगठनों में तीन संगठनों (७५ प्रति०) की शाखाओं का फैलाव इस प्रकार से है । अशोक आश्रम देहरादून की कुल दो शाखायें हैं जो हिमांचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश में हैं । सेन्टर फार एग्रेरियन रिसर्च, ट्रेनिंग एण्ड एडूकेशन के ए—५९ कवी-नगर गाजियाबाद की कुल तीन शाखाओं में से एक शाखा बिहार, दूसरी शाखा महाराष्ट्र और तीसरी शाखा उत्तर प्रदेश की मोदी में सुशोभित हो रही हैं । इसी प्रकार मोदी इन्स्टीट्यूट आफ रूरल डेवेलपमेन्ट मोदी नगर की दो शाखाओं में से क्रमशः मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में एक-एक शाखा वहाँ की ग्रामीण जनता के कल्याणार्थ कार्य कर रही है। लखनऊ का एप्रोप्रियेट टेक्नोलाजी एसोसियेशन पोस्ट बाक्स नं० ३११ गांधी भवन लखनऊ की छैतिज विस्तार सीमा शून्य है । यह संगठन अपने क्रिया कलापों के उर्ध्वाधर विकास के द्वारा सूर्य की तरह संपूर्ण संगठनों एवं ग्रामीण जन तक अपनी किरण बिखेर रहा है। लोगों को, विशेष रूप से समुदाय के कमजोर वर्ग एवं पिछड़े हुए क्षेत्रों में, उचित तकनीकी के प्रारूपों के विकास के लिए सर्वेक्षण, अध्ययन और प्रयोग करना उचित तकनीकी की समस्याओं और विचारों पर गोष्ठियों और कार्यशालायें आयोजित करना उचित तकनीकी से संबंधित साहित्य और सूचना का प्रकाशन करना और विभिन्न संगठनों को सलाह देना, इस संगठन के प्रमुख क्रिया कलाप हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐच्छिक संगठनों का अस्तित्व

विभिन्न स्तर के संगठनों और उनके स्थानीय केन्द्रों को आवृत्तियों को सारिणी संख्या-२ में प्रदर्शित किया गया है जिससे यह स्पष्ट है कि स्थानीय स्तर के ऐच्छिक संगठनों का कोई

सारिणी संख्या—२

संगठनों का स्तर	स्थानीय केन्द्रों की संख्या (आवृत्ति)
स्थानीय	...
प्रान्तीय	२०
राष्ट्रीय	२०

स्थानीय केन्द्र नहीं है जबकि प्रान्तीय स्तर और राष्ट्रीय स्तर के ऐच्छिक संगठनों के उनके स्थानीय केन्द्र हैं। प्रान्तीय स्तर के कुल एक संगठन के कुल स्थानीय केन्द्र २० हैं। जब कि राष्ट्रीय स्तर के कुल चार ऐच्छिक संगठनों में से दो संगठनों का कोई स्थानीय केन्द्र नहीं है। शेष दो संगठनों में से एक संगठन के स्थानीय केन्द्रों की संख्या दो और दूसरे संगठन के स्थानीय केन्द्रों की संख्या १८ है (देखें सारिणी संख्या—३)

सारिणी संख्या---३

संगठन का स्तर		नाम	स्थानीय केन्द्रों की संख्या (आवृत्ति)
राष्ट्रीय	१	एप्रोप्रियेट टेक्नोलाजी डेवेलपमेंट एसोसियेशन, गांधी भवन, लखनऊ	शून्य
	२	अशोक आश्रम, देहरादून	१८
	३	सेन्टर फार एग्रेरियन रिसर्च ट्रेनिंग एण्ड एजूकेशन, गाजियाबाद	शून्य
	४	मोदी इन्स्टीट्यूट आफ रूरल डेवेलपमेन्ट, मोदी नगर	२
प्रान्तीय	१	बाल कल्याण समिति हरिद्वार, जिला—सहारनपुर	२०

उत्तर प्रदेश में प्रान्तीय राष्ट्रीय स्तर के ऐच्छिक संगठनों में १ : ४ का अनुपात है जब कि उनके स्थानीय केन्द्रों में १ : १ का अनुपात है। अतः प्रान्तीय स्तर के ऐच्छिक संगठन का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थानीयकरण राष्ट्रीय स्तर के ऐच्छिक संगठनों से चार गुना अधिक है और प्रान्तीय स्तर का संगठन राष्ट्रीय स्तर के संगठनों की अपेक्षा अपनी स्थानीय समस्याओं की ओर अधिक उन्मुख है । इस संगठन द्वारा (क) पूर्व विद्यालयीय शिक्षा (ख) पोषण कार्यक्रम (ग) बालकों के लिए मनोरंजन (घ) ग्रामीण कल्याण प्रसार केन्द्र (ङ) महिला मंडल की स्थापना (च) महिलाओं के लिए कला प्रशिक्षण (छ) ग्रामीण रोजगार इत्यादि कार्यक्रमों को संचालित किया जाता है ।

ऐच्छिक संगठनों की संस्थागत सम्बद्धता

सम्बद्धता-क्षमता की दृष्टि से राष्ट्रीय और स्थानीय ऐच्छिक संगठनों की तुलना में प्रान्तीय-स्तरीय ऐच्छिक संगठन सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश का प्रतिनिधित्व कर रहा है । कहने के लिए एक किन्तु सात संगठनों को सम्बद्धता प्रदान कर यह बाल कल्याण समिति हरिद्वार (सहारनपुर) ग्रामीण विकास के क्षेत्र में एक कीर्ति स्थापित कर रही है जब कि सम्ब्द्धता शक्ति और क्षमता की दृष्टि से अन्य स्तर यहाँ तक कि राष्ट्र स्तर के चारों संगठनों का प्रतिनिधित्व शून्य है । इतना ही नहीं यह प्रान्त स्तरीय संगठन चार अन्य संगठनों द्वारा स्वयम् सम्बद्ध है । जब कि राष्ट्र स्तरीय ऐच्छिक संगठनों में से केवल एक संगठन (२५ प्रति०)

सारिणी संख्या ४
सम्बद्धता—जाल

सम्बद्ध संगठन का स्तर	सम्बद्धता प्रदान करने वाली संस्थायें	सम्बद्ध संगठन की आवृत्ति (प्रति०)
स्थानीय	१ खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग, बम्बई ।	१ (११.११ प्रति०)
	२ (अ) ग्रामीण विकास हेतु ऐच्छिक संगठनों का संघ, नई-दिल्ली ।	१ (११.११ प्रति०)
	(ब) गाँधी विद्या संस्थान राजघाट, वाराणसी	
	(स) खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग, बम्बई	
	(द) उ० प्र० फल उत्पादन संघ, इलाहाबाद	
	(य) उ० प्र० प्राहिबिशन बोर्ड, लखनऊ	
	(र) उ० प्र० प्रौढ़ शिक्षा प्रकोष्ठ, लखनऊ ।	
	३ खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग, बम्बई ।	१ (११.११ प्रति०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रान्तीय	१	(अ) फेडरेशन आफ आर्गनाइजेशन वर्किंग फार चिल्ड्रेन इन इन्डिया, लखनऊ (ब) ग्रामीण विकास हेतु ऐच्छिक संगठनों का संघ, नई-दिल्ली (स) भारतीय प्रौढ़शिक्षा समिति, नई-दिल्ली (द) पिपुल्स ऐक्शन फार डेवेलपमेंट, नई दिल्ली	१ (१०० प्रति०)
राष्ट्रीय	१	भारतीय आदिम जाति संघ, नई दिल्ली	१ (२५ प्रति०)
कुल सम्बद्ध संगठनों की संख्या			५

भारतीय आदिम जाति संघ नई दिल्ली द्वारा सम्बद्ध है। स्थानीय ऐच्छिक संगठनों में से केवल तीन (३३.३३ प्रति०) ही अन्य संगठनों से सम्बद्ध है। अतः सम्बद्धता प्राप्त करने की दृष्टि से प्रान्त स्तरीय संगठन सर्वोच्च स्थानीय संगठन दूसरे स्थान पर और राष्ट्रस्तरीय संगठन सबसे नीचे है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अन्य स्तरों के संगठनों की तुलना में प्रांत स्तरीय संगठन की अन्तः क्रिया और सम्बद्धता के ताने बाने का प्रसार अधिक है। यह न केवल स्थानीय प्रतिष्ठा में भागेदारी कर रहा है। बल्कि सम्बद्धता-प्रविधि के द्वारा भारतीय स्तर पर भी अपना कीर्तिमान स्थापित कर रहा है अतः नवोदित और अनुभव शून्य ऐच्छिक संगठनों के पदाधिकारियों को कम से कम एक बार ऐसे संगठनों के कार्य-प्रतिमानों के अनुपालन से नवीन ऐच्छिक संस्थायें विकसित होकर ग्रामीण विकास को महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं।

संगठन के मानव संसाधन—किसी भी संगठन को सुचारु रूप से चलाने के लिए मानव संसाधन की नितांत आवश्यकता पड़ती है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि किसी भी संगठन के निर्माण की प्रारंम्भिक अवस्था में संगठन को मानव संसाधन की जटिल समस्या का सामना करना पड़ता है। जिसके निम्नलिखित कारण हैं।

१ अर्थाभाव की समस्या।
२ संगठन के प्रति क्षेत्र के लोगों की उदासीनता।
३ संगठन के पदाधिकारियों में सामन्जस्य की समस्या।
४ संगठन से वेतन न मिलने की समस्या।
५ संगठन के टूट जाने का भय।
६ संगठन को राज्य अथवा केन्द्रीय अनुदान प्राप्त होने की समस्या।
७ संगठन की गिरी-स्थिति।
८ संगठन के कागजी नाव पर चलने की समस्या तथा उसके अंधकारमय भविष्य की समस्या।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त कारणों और समस्याओं के कारण ऐच्छिक संगठन प्रायः अपनी पूर्वावस्था में गिरी हुई स्थिति में होते हैं। सभी ऐच्छिक संगठनों का यही इतिहास है। कुछ एक संगठन भले ही आर्थिक सम्पन्नता के कारण इन कठिनाइयों और समस्याओं का सामना न करते हों।

प्रस्तुत प्रपत्र में कुल ऐच्छिक संगठनों के विभिन्न स्तरों पर कार्य करने वाले कार्य-कर्ताओं की संख्या सारिणी संख्या-५ में प्रदर्शित की गई है।

सारिणी संख्या-५

संगठनों का स्तर	संगठनों की संख्या	कार्यकर्ताओं की संख्या	प्रति संगठन सं० लगभग
स्थानीय	९	१३७	१५
प्रान्तीय	१	२२	२२
राष्ट्रीय	४	१८६	४६
कुल संख्या		३४५	

सारिणी संख्या-५ के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय स्तर के ऐच्छिक संगठनों के पास मानव संसाधन अपेक्षाकृत अधिक है। स्थानीय स्तर के ऐच्छिक संगठनों के पास अपेक्षाकृत मानव संसाधनों का अभाव वस्तुतः इनकी आर्थिक कमजोरी का द्योतक है। अतः हम इस प्राक्कल्पना का सहारा ले सकते है कि स्थानीय ऐच्छिक संगठन अधिक सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का सामना करते हैं। जब कि क्षेत्रीयता और स्थानीयता की दृष्टि से स्थानीय संगठनों का विशेष महत्त्व है क्योंकि अधिकांशतः स्थानीय संगठन ग्रामीण अंचलों में ग्रामीण समाज कल्याण हेतु स्थापित किये गये हैं। अतः इनका संरक्षण और पोषण नितांत आवश्यक है। दूसरी बात, स्थानीय संगठनों के द्वारा ही समाज के निम्नतर सामाजिक-आर्थिक प्रकोष्ठ का विकास संभव हो सकता है। पूरे देश की उन्नति का मापदण्ड यही प्रकोष्ठ है जिसकी उपेक्षा कर भारत जैसे देश का मस्तक उन्नत नहीं हो सकता।

ऐच्छिक संगठनों की आर्थिक संरचना

उत्तर प्रदेश के विभिन्न प्रकार के संगठनों के आर्थिक श्रोत सम्बन्धित तथ्य सारिणी संख्या-६ में प्रदर्शित किये गये हैं। विभिन्न संगठनों के आर्थिक श्रोत अलग-अलग हैं। अधिकांश संगठनों के कुछ आर्थिक श्रोत कई संगठनों के आर्थिक श्रोत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिणी-संख्या—६

विभिन्न स्तरों के संगठनों के आर्थिक श्रोतों का श्रेणी क्रम

	स्तर		
श्रोत	स्थानीय श्रेणी	प्रान्तीय श्रेणी	राष्ट्रीय श्रेणी
सदस्यता शुल्क	१	३.५	३
चन्दा (जनता)	२	३.५	६.५
राज्य अनुदान	३.५	३.५	१
केन्द्र अनुदान	३.५	३.५	३
विदेशी अनुदान	५.५	८.५	३
सेवा शुल्क	५.५	८.५	६.५
संगठन का प्राभूत	७	८.५	६.५
स्थानीय निकाय	८.५	३.५	९.५
ऋण	८.५	८,५	९.५
व्यावसायिक केन्द्र से प्राप्त धन	१०	३.५	६.५

के संगठनों के आर्थिक श्रोतों को उनकी आवृत्ति के आधार पर श्रेणी दी गई है। सारिणी-संख्या ६ के तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष परावर्तित होता है कि स्थानीय स्तर के ऐच्छिक संगठन मूल-रूप से सदस्यता शुल्क पर ही जीवित हैं। इनके लिए चन्दा दूसरा विकल्प है। वैसे कुछ प्रभावशाली संगठनों को राज्य एवं केन्द्र सरकार के अनुदान मिले हैं। ऐसे संगठनों की संख्या कुल ४ है। तीन संगठन विदेशी मुद्रा का लाभ ले रहे हैं। किन्तु विदेशी श्रोत का श्रेणी क्रम अन्य श्रोतों के सापेक्ष में ५.५ है। दो संगठनों के पास अपना निजी धन (प्राभूत) है तथा श्रोतों के श्रेणीक्रम में इस श्रोत का सातवां स्थान है। स्थानीय निकायों एवं खादी ग्रामोद्योग आयोग बम्बई से ऋण लेने वाले संगठनों की संख्या एक-एक है। अतः इन श्रोतों के श्रेणी क्रम बराबर (८.५) हैं। व्यावसायिक केन्द्र से स्थानीय ऐच्छिक संगठन को कोई लाभ नहीं मिला है।

प्रान्त स्तरीय ऐच्छिक संगठन को कुल छः श्रोतो से आर्थिक मदद मिलती है जो निम्नलिखित हैं।

(१) सदस्यता शुल्क
(२) राज्य सरकार अनुदान
(३) केन्द्रीय सरकार अनुदान
(४) जनता से चन्दा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) स्थानीय निकाय से आर्थिक मदद
(६) व्यावसायिक केन्द्रों से मदद के रूप में आर्थिक चन्दा

राष्ट्र स्तरीय ऐच्छिक संगठनों का (७५ प्रति०) भाग राज्य अनुदान से पोषित और लाभान्वित है। राज्य सरकार/केन्द्र सरकार/विदेशी अनुदान श्रेणी क्रम में तीसरे स्थान पर है। चन्दा/सेवा शुल्क/संगठन का प्राभूत/व्यावसायिक केन्द्र से प्राप्त धनराशि का आर्थिक श्रोतों के श्रेणी क्रम में ६.५ वाँ स्थान है। स्थानीय निकाय श्रोत और खादी ग्रामोद्योग आयोग बम्बई की ऋण व्यवस्था इन संगठनों के लिए आर्थिक दृष्टिकोण से महत्वहीन है।

संदर्भ ग्रंथ

१. आल इंडिया डायरेक्ट्री आफ़ वालन्ट्री आर्गनाइजेशनस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यादव' जाति--उसकी प्रथायें, मान्यतायें सामाजिक सम्बन्ध एवं सामाजिक परिवर्तन

क्रांति दर्शन शर्मा

प्रस्तुत अध्ययन उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जनपद की तहसील शिकोहाबाद के ब्लाक अँराव में स्थिति एक ग्राम नगला धर्म का अध्ययन है। यह सम्पूर्ण ग्राम यादवों का ही है तथा रक्त सम्बन्धी समूह है। अन्य कोई भी जाति इस ग्राम में प्रवास नहीं करती है। यह अध्ययन यादवों की जाति प्रथाओं, मान्यताओं एवं सामाजिकता से ही सम्बन्धित है।

ग्राम नगला धर्म अत्यधिक पिछड़ा हुआ है। इस ग्राम में वे सभी विशेषतायें पायी जाती हैं जो कि आदिम समाजों में पायी जाती हैं। इस ग्राम की कुछ प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित वर्णन से बिल्कुल ही स्पष्ट हो जायेगी।

जिस प्रकार से हम देखते हैं कि जनजातीय समाजों में एक ही जनजाति के लोग पाये जाते हैं। दूसरी जाति एवं जनजाति के व्यक्ति यदि उस जन-जाति में शामिल होना चाहें तो उनका वहाँ जीवित रहना या उनके साथ रह पाना अत्यधिक कठिन हो जाता है। ठीक यही बात हमें इस ग्राम में देखने को मिली। क्योंकि यहाँ के व्यक्तियों का व्यवहार अन्य जातियों से न के बराबर है। यदि कोई अन्य जाति इनके मध्य इस ग्राम में रहना चाहे तो प्रथम तो वह उस जाति के व्यक्ति को यहाँ आने ही नहीं देते हैं यदि आ भी जायँ तो उसे मारपीट करके भगा देते हैं। इस प्रकार के हमारी जानकारी में दो काण्ड को चुके हैं; क्योंकि कुछ समय पूर्व यहाँ पर एक मुस्लिम एवं एक कुम्हार परिवार रहने के लिये आया तो उन्हें इस ग्राम के यादवों ने मारपीट करके भगा दिया।

इस ग्राम की एक दूसरी विशेपता यह है कि जिस प्रकार से जनजातीय समाज के अन्दर एकता पायी जाती है ठीक उसी प्रकार की एकता एवं नेता के प्रति अत्यधिक श्रद्धा इस ग्राम की यादव जाति के अन्दर पायी जाती है। क्योंकि यहाँ के सभी व्यक्ति आपस में एक हैं एवं दूसरे के सुख दुःख में शरीके होते हैं। प्रधान की आज्ञा का पूरी तरह से पालन करते हैं।

क्रांति दर्शन शर्मा, प्रवक्ता समाज शास्त्र, एस० आर० के० महाविद्यालय, फिरोजाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनजातीय लोगों की तरह ही यहाँ के यादव लोग धर्म, भूतप्रेत एवं जादू आदि में अत्यधिक विश्वास करते हैं। यदि कोई व्यक्ति बीमार हो जाता है तो उसे भूतप्रेत के द्वारा सताया गया बताया जाता है। उसकी दवा न कराकर झाँड़-फूँक करायी जाती है। झाँड़ फूँक करने वाले व्यक्ति को यह लोग भगत कहते हैं। दूसरे या फिर उसे देवता द्वारा सताया हुआ बताया जाता है। इस गाँव के अन्दर देवता का एक स्थान है जिसे कि यह लोग थान कहकर पुकारते हैं और किसी की तबियत खराब होने पर चाहे वह मानव हो या पशु देवता की गुहार करते हैं एवं इसके लिये प्रसाद आदि बाँटते हैं। गाँव नगला धर्म के अन्दर दो स्थानों पर भूत मानते है एक स्थान बाग है। इससे गांव से निकलते ही एक पुल है। शाम ढलनें से लेकर सुबह तक यहाँ पर कोई व्यक्ति नहीं जाता है। उन लोगों का कहना है कि वहाँ जाने पर भूत लग जायेगा। किन्तु वास्तविकता में वहाँ कुछ भी नहीं। इसके लिये उन्होंने कुछ कहानियाँ गढ़ रखी हैं। एक कहानी की संक्षिप्त रूपरेखा निम्न है जो कि वहाँ के व्यक्तियाँ द्वारा बताई गयी:—

"बरसात के समय भूत वाले पुल के नीचे पानी एकत्रित हो जाता है। जिससे कि कुछ व्यक्ति वहाँ के आस पास के थोड़े हिस्से की सिंचाई कर लेते हैं। एक दिन एक व्यक्ति रात के समय सिंचाई के लिये गया। उसने अपने साथ अपने लड़के को आने के लिये कहाँ और वह चल दिया। अन्धेरे में उसके पीछे-पीछे एक परछा़यीं वहाँ पुल तक गयी और उसके लड़के की आवाज में बात उससे करती रही तथा उसके साथ सिंचाई कराने में बराबर सहयोग देती रही। क्योंकि वहाँ डोल से सिंचाई कर रहा था जिसमें कि दो व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु जब धीमें धीमें सुवह हुआ तो उसने सामने वालें को देखा जो कि न तो उसका लड़का था न ही जान पहिचान का। जब उसने उसका परिचय पूछा तो वह वहीं पानी में कूद गया और फिर दिखायी न पड़ा। यह देख गाँव का व्यक्ति भूत-भूत कहकर भागा एवं उसने गाँव वालों को यह बात बताई तथा इस घटना के तीसरे दिन ही वह स्वयं इसी के गम में परलोक सिधार गया। तब से वहाँ पर भूत के रहने की धारणा बनी हुयी है। जबकि इस घटना को करीब चालीस वर्ष के लगभग पुरानी बताया जाता है। इसी प्रकार की घटना बाग के सम्बन्ध में भी है।"

धर्म एवं भूत-प्रेत की मान्यता के साथ-साथ इस गाँव के कुछ व्यक्ति जादू-टोने भी करते हैं जो कि सभ्य समाज में कहीं देखने को नहीं मिलते हैं। जिस प्रकार से छोटा नागपुर की जनजातियाँ पानी बरसाने के लिये पत्थरों को पहाड़ों पर से लुढ़काते हैं ठीक इसी प्रकार पानी बरसाने के लिये यहाँ पर दो प्रकार के जादू अपनाये जाते हैं एक उदाहरण निम्नवत हैं :—जब पानी काफी समय तक नहीं बरसता है तो गाँव के अधिकांश बच्चे एकत्रित होते हैं और कुछ बच्चे टीन के डब्बे एवं कनस्तर आदि गले में लटका लेते हैं तथा एक लड़का एक पानी का लोटा लेकर साथ चलता है बाकी बचें हुए बच्चे नंगे हो जाते हैं। डब्बे एवं कनस्तर वाले बच्चें अपने डब्बों को लकड़ी से पीटते हुए आगे-आगे चलते हैं और गाँव के एक-एक व्यक्ति के घर के दरवाजे पर जाते हैं। एवं कुछ समय वहाँ रुकते हैं। हर एक व्यक्ति के दरवाजे पर रुकने पर पानी वाला लड़का वहाँ कुछ बूँद पानी गिरा देता है। जिसमें कि नंगे बच्चे लोठ लगाते हैं। उनका विश्वास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि ऐसा करने से भगवान प्रसन्न होकर पानी बरसाते हैं। इस जादू के बारे में जब हमने उनसे पूछा तो इसके अन्दर उनकी दो मान्यतायें थी। प्रथम तो बादलों की गड़गड़ाहट के समान आवाज वह डब्बे पीट-पीट कर करते हैं। जो कि जनजातियों के समानता वाले नियम से मिलती है। जिसका कि प्रतिपादन फ्रेजर ने किया था। द्वितीय यह थी कि पानी की इतनी कमी हो गयी है कि दो चार बूँद के लिये तड़फ रहे हैं जिनकी कि तड़फ को देखकर भगवान खुश होकर वर्षा करेगा।

इसके अलावा भी वहाँ गण्डें ताबीज, काला धागा काला टीका लगाने की मान्यतायें हैं जिससे कि नजर एवं कोई बाधा व्यक्तियों को परेशान न करें। इसी प्रकार साँप के काटने से स्वयं को बचाने के लिये यहाँ के अधिकांश व्यक्ति सांप नुमा अंगूठी पहनते है। उनकी धारणा है कि इसे पहनने से साँप नहीं काटता है।

ग्राम नगला धर्म के व्यक्ति मूल रूप में खेती करते हैं। किन्तु इसके अलावा उनका एक अन्य व्यवसाय भी है जिसे कि यहाँ के अधिकांश व्यक्ति करते है। यह व्यवसाय चोरी करने का व्यवसाय है। यहाँ के व्यक्ति लकड़ी तथा पकी हुयी फसलों आदि की चोरी तो करते ही है साथ ही वे राहजनी एवं रेलगाड़ियों को रुकवाकर उनसे सामान उतारने आदि का भी कार्य करते हैं। इनके लिये कानून कुछ नहीं है। यहाँ के व्यक्तियों से यदि कानून की बात कहीं जाए तो वह कहते हैं कि "कानून क्या करेगा हमारा तो लट्ठ कलक्टर है।"

एक नयी बात इस ग्राम के अन्दर देखने को मिली जो कि बहुत ही अनोखी है। वह यह है कि यहाँ पर नवीन किस्म के परिहास सम्बन्ध देखने को मिले। जैसे बुआ-भतीजें का सम्बन्ध, चाचा-भतीजे का सम्बन्ध, दादी-नाती का सम्बन्ध एवं बाप-बेटे का सम्बन्ध आदि में खुली हुयी मजाक होती है। इन सम्बन्धों को सभ्य समाज में अत्यधिक पवित्र सम्बन्ध माना जाता है।

यादव जाति के इस ग्राम के अन्दर अन्त:विवाह होते हैं बहिविवाह नहीं। विवाह अधिनियम १९५५ बन जाने एवं लागू होने से इस गाँव पर कोई भी असर नहीं पड़ा है। आज भी इस ग्राम के अन्तर्गत बाल विवाह होते हैं। छ: सात वर्ष के बच्चों की शादी कर दी जाती है। आज तक इस ग्राम के अन्दर ऐसा कोई विवाह नहीं हुआ है जो कि विवाह अधिनियम की शर्तों के अनुसार हो। विवाह से पूर्व लड़की लड़के आपस में एक-दूसरे को देखते नहीं है एवं कभी-कभी तो ऐसा होता है कि शादी का जो मध्यस्थ (जिसे यहाँ मझियाँ कहा जाता है) होता है उसी के कहने पर शादी हो जाती है। शादी के समय जब बारात वापिस लौटती है तो उस समय दुल्हन साथ नहीं आती है। दुल्हन ससुराल तीन वर्ष बाद, पाँच वर्ष बाद, सात वर्ष बाद या फिर ग्यारह वर्ष बाद ससुराल आयेगी। जब दुल्हन समुराल आती है उस रस्म को ये लोग गौना कहकर पुकारते है न कि विदा।

एक बात जो यहाँ के यादवों के अन्दर है वह अत्यधिक अच्छी है और जिसे सभी शिक्षित व्यक्ति पसन्द करेंगे। वह यह है कि यदि किसी भी स्त्री का पति मृत हो जाता है और वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधवा हो जाती है तो ऐसी दशा में यदि कोई उसका देवर कुआरा है तो वह उसकी पत्नी बन जायेगी। यदि कोई नहीं है तो फिर गाँव के अन्दर कोई विधुर व्यक्ति मिल गया तो वह उसकी पत्नी बन जायेगी। यदि कोई नहीं मिला तो वह अपने देवर ज्येष्ठों में से किसी एक के साथ उसकी दूसरी पत्नी बनकर रहने लगेगी। जब हमने उन ग्रामीणों से इस सन्दर्भ में बात की तो उन्होंने इसका जबाब अत्यधिक अच्छा दिया कि "हम अपनी लक्ष्मी एवं अपनी इज्जत को गाँव से बाहर नहीं जाने देते हैं।" यादव जाति का यहगुण भी जनजातीय लोगों से मिलता है।

एक तरफ यादव लोग स्त्रियों को लक्ष्मी बताकर संबोधित करते हैं। दूसरी तरह उन्हें उनके अधिकारों से बंचित रखते हैं। उनकी यहाँ अत्यधिक दुर्दशा देखने को मिली। जिसमें कुछ प्रमुख कारण निम्नवत है—

१—नगला धर्म में पर्दा प्रथा अत्यधिक पायी गयी है। स्त्रियों को अधिकांश समय पर्दे में ही व्यतीत करना पड़ता है। जिसके भलस्वरूप उन्हें तरह-तरह की बीमारियों का शिकार होना पड़ता है।

२—कार्य का विभाजन इस गाँव के अन्दर नहीं हैं। इसके कारण उन्हें अत्यधिक कार्य करना पड़ता है। घर के कार्य के अलावा उन्हें खेतों में भी कार्य करने जाना पड़ता है।

३—घर के किसी भी कार्य में उनसे किसी भी प्रकार की सलाह नहीं ली जाती है और न ही स्त्री कोई दखल दे सकती है।

४—स्त्रियों को यहाँ के पुरुष अपना गुलाम समझते है। जिससे कि उन्हें समय-समय पर डांट—फटकार एवं डंडे भी पुरुषों के सहन करने पड़ते है।

५—स्त्रियों को यहाँ बच्चे उत्पन्न करने की मशीन समझा जाता है इससे उनके स्वास्थ्य पर अत्यधिक बुरा प्रभाव पड़ता है।

६—गृह कलह यहाँ प्रत्येक परिवार के अन्दर देखने को मिलती है जिसका कि उनके ऊपर अत्यधिक बुरा प्रभाव स्पष्ट नजर आता है।

७—स्त्रियों की बीमारियों का यहाँ पर सही इलाज नहीं कराया जाता है। और वह घुट-घुट कर मरती रहती है।

नगला धर्म के व्यक्ति अत्यधिक सन्तान उत्पत्ति के पक्ष में है। सन्तानों के भी लड़के अधिक हों। कोई भी व्यक्ति यहाँ परिवार नियोजन के पक्ष में नहीं है। यहाँ अधिकांश बड़े व्यक्तियों के ७-८ बच्चे पाये जाना स्वाभाविक है। कुछ व्यक्तियों के यहाँ तो इससे भी अधिक संख्या देखने को मिल जायेगी। इस सन्दर्भ में इन ग्रामीणों की यह धारणा है कि "जितने लड़के अधिक होंगे उतनी ही लाठियाँ तैयार हो गयीं लाठी से उनका तात्पर्य लड़ाई के समय से है। कि जब कभी दूसरे व्यक्तियों से लड़ाई होगी तो वह लड़के लाठी ले लेकर लड़ने के लिये साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ जायेगें। यदि लड़कियां किसी के परिवार में यहां अधिक जन्म लेती हैं तो एक दो लड़की के बाद यहाँ के लोग नवजात शिशु कन्याओं को मिट्टी का तेल पिलाकर हत्या कर देते हैं क्योंकि उनकी शादी करने में ही वह बर्बाद हो जावेगें यह विचार उनमें व्याप्त है।

नगला धर्म के यादव पूर्णतः अशिक्षित है। इनकी अशिक्षा का प्रमुख कारण गाँव में विद्यालय का न होना है। यहां से विद्यालय चार कि० मी० की दूरी पर स्थित है। जिसके कारण बच्चे वहां तक जाने में असफल रहते हैं। दूसरा कारण यहां के यादव लोग इन्हें शिक्षा दिलाना भी नहीं चाहते हैं। वैसे इस दिशा में अब कुछ परिवर्तन हुआ है। पिछले वर्ष इस ग्राम के प्रधान के सहयोग से यहां पर प्राइमरी पाठशाला की शुरूआत की गयी है। जिसमें कि इस गाँव के २५ लड़कों ने पढ़ना शुरू कर दिया है। किन्तु फिर भी किसी लड़की को यहां के यादवों ने विद्यालय में नहीं भेजा है। उनका इस सन्दर्भ में कहना है कि "लड़कियां कौन सी नौकरी करेंगी"। कुछ का कहना है कि लड़कियों के पढ़कर दिमाग खराब हो जाते हैं और फिर घर के काम काज में रुचि नहीं रखती"। तीसरी इस सन्दर्भ में धारणा यह है कि लड़की को पढ़ाने से उनकी शादी के लिये पढ़ा लिखा लड़का ढूंढ़ना पड़ेगा जिसके लिये कि फिर काफी पैसों की आवश्यकता पड़ेगी (दहेज के लिये) अतः लड़कियों को शिक्षा दिलाने के सन्दर्भ में तो यहां के ग्रामीण बिल्कुल ही नहीं है।

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र के यादवों में एक लक्षण जो देखने को मिला कि यहां के अधिकांश व्यक्ति नशीली वस्तुओं का सेवन करते हैं। हुक्का, बीड़ी, सिगरेट के अलावा शराब, चरस, गाँजा आदि को भी यहाँ के व्यक्ति प्रयोग में लाते हैं। कुछ व्यक्ति तो कच्ची शराब का निर्माण भी करते हैं। युवा ही नहीं बल्कि बच्चे भी जब अपने से बड़ों की क्रियाओं को देखते हैं तो वह भी उनकी नकल करने लगते हैं। यहाँ के अधिकांश बच्चे जो कि ६ वर्ष से ऊपर हैं बीड़ी पीते आसानी से देखे जाते हैं। इस कार्य में महिलाओं ने पुरुषों को पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। लगभग पचास प्रतिशत प्रौढ़ महिलायें इस गाँव में बीड़ी, हुक्का एवं तम्बाकू आदि का सेवन करती है। जिसके कि सेवन के वह अलग-अलग कारण बताती है कोई कहती है पेट दर्द की वजह से कोई दांतों की खराबी की वजह से एवं कोई सुस्ती को भगाने की वजह से इन तत्त्वों के सेवन का कारण बताती है।

बाह्य जीवन से अनभिज्ञ इस ग्राम के यादव अपनी ही दुनियाँ में मस्त हैं। उन्हें बाहरा राजनीति या देश की समस्याओं से कुछ भी मतलब नहीं हैं। नवीनतम विकास एवं आधुनिकीकरण से अनभिज्ञ आज भी यहां के यादव उन्हीं पुरानी परम्पराओं एवं साधनों के साथ खेती करते हुये आसानी से देखे जा सकते हैं। कृत्रिम खादों, नवीन किस्मों के बीज एवं आधुनिक कृषि यन्त्रों का पाया जाना यहाँ न के बराबर है। सहकारी समिति आदि से इन लोगों का सम्पर्क न के बराबर है। आज भी यहां के यादव दस-दस वर्ष पुराने बीजों का प्रयोग एवं गोबर की खाद तथा देशी हल के ही साथ खेती करते है। कुछ परिवर्तन हुये हैं वह हैं सिंचाई के साधन एवं थ्रेसिंग के साधन। इसके अलावा अन्य परिवर्तन न के बराबर हैं। वैसे थोड़े बहुत लोग अब नवीन खाद एवं बीज का प्रयोग करने की सोंच रहे हैं हो सकता है कि वे निकट भविष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में इनका प्रयोग करने लगे। वैसे नवीन खाद (कृत्रिम खाद) के सन्दर्भ में इन लोगों की धारणा है कि इससे भूमि शीघ्र ही खराब हो जाती है। एवं धीमे-धीमे यह बंजर की तरफ अग्रसर हो जाती है।

राजनीति के सन्दर्भ में भी यह लोग पूर्णतः अनभिज्ञ ही है। चुनाव के समय या तो यह लोग वोट देने जाते ही नहीं और यदि गये भी तो प्रथम यह अपनी जाति के उम्मीदवार को ही मत देगें। इन्हें किसी दल की अच्छाई बुराई से मतलब नहीं यदि उम्मीदवारों में से इनकी जाति का कोई व्यक्ति नहीं है तो फिर इनके अन्दर मत देने में नीरसता ही मिलेगी। इसके अलावा एक अन्य बात यह है कि सम्पूर्ण गाँव के व्यवित एक ही उम्मीदवार को मत प्रदान करेंगे। स्त्री वर्ग कोई भी मत डालने नहीं जाता है। उन्हें इसके लिये आज्ञा नहीं दी जाती। यदि पुरुष वर्ग मत केन्द्रों पर अधिकार जमा लेते हैं, तो वहीं स्त्रियों के मत भी स्वयं ही डाल देते है।

आर्थिक दशा यहां के यादव लोगों की अत्यधिक दयनीय है। क्योंकि इनका मुख्य व्यवसाय खेती है। खेती भी किसी के पास चार एकड़ से अधिक नहीं हैं। यह खेती ऊसर मिश्रित है जिसमें भी ये लोग उसे सुधारने वाले साधनों का प्रयोग नहीं करते हैं। परिवार के सदस्यों की संख्या अत्यधिक है। आय का साधन और कुछ है नहीं। भूमि में ये लोग इतना ही अनाज पैदा कर पाते हैं कि उदर पूर्ति मुश्किल से हो पाती है। जब व्यक्ति की आवश्यक आवश्यकताएं पूरी नहीं होगी तो निश्चय ही वह अपराध की तरफ मुखातिब होगा। यहीं कारण है कि यहाँ के व्यक्ति अपराधिक प्रवृत्तियों में लिप्त होते जा रहे है। विवाह एवं अन्य समारोहों पर यहाँ के यादवों को साहूकारों से कर्जा लेना पड़ता है जो कि ये लोग बड़ी मुश्किल से चुका पाते हैं। अतः अब कुछ लोग इस बारे में सोचने लगे हैं एवं इसमें थोड़ा बहुत परिवर्तन भी किया है। कुछ व्यक्तियों ने खेती के साथ-साथ छोटी दुकान घर में कर ली है एवं दो चार अन्य कारखानों में दैनिक श्रमिक के रूप में भी कार्य करने लगे हैं एवं कुछ खेती में ही मजदूरी का कार्य करने लगे हैं जिससे कि अब इनकी आर्थिक दशा में कुछ परिवर्तन धीमे-धीमे प्रतीत हो रहा है। किन्तु आज भी यहाँ के लोग गरीबी की रेखा के काफी नीचे हैं।

जो भी परिवर्तन एवं सुधार इस ग्राम के अन्दर हो रहे हैं, वह यहां के व्यक्तियों के ही द्वारा किया जा रहा है। सरकार की तरफ से अभी तक इस गांव के लिये कोई भी कदम नहीं उठाया गया है। इस गांव तक जाने के लिये अभी तक ऐसा रास्ता नहीं है जिससे कि यहां आसानी से पहुँचा जा सके। ट्रैक्टर एवं ट्रक आदि के तो पहुँचने का सवाल ही नहीं उठता। रेलवे स्टेशन यहाँ से ५-५ कि० मी० की दूरी पर स्थित है। मण्डी १० कि० मी० दूर है ब्लॉक ३ कि० मी० दूर है तो इस तरह गांव बिल्कुल ही अकेले में फँसा हुआ है जिसका कि सम्पर्क अन्य जगह से अत्यधिक सीमित है और कुछ यहाँ के यादवों की लूट-पाट एवं मारपीट की प्रवृत्ति के कारण व्यक्ति सहज जाने की हिम्मत नहीं करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिवासी स्तम्भ

भोक्सा जनजाति : एक मानव वैज्ञानिक अध्ययन

हरिभजन सिंह चौहान

बुक्सा (भोक्सा) उत्तर प्रदेश की एक अनुसूचित जनजाति है जो कुल चार उत्तरी जिलों नैनीताल, पौड़ी-गढ़वाल, देहरादून तथा बिजनौर में छोटी-छोटी ग्रामीण बस्तियों में पायी जाती है। देहरादून जिले के बुक्सा 'महरा' कहलाते हैं। चारों जिलों में फैले बुक्सा आदिवासियों में अन्तर्सम्बन्ध नहीं है। वे स्वतंत्र इकाइयों के रूप में कार्य करते हैं और एक दूसरे के साथ विवाह सम्बन्ध भी स्थापित नहीं करते। इनकी कुल जनसंख्या लगभग २० हजार है जिसमें से लगभग १७ हजार केवल नैनीताल जिले की तीन तहसीलों बाजपुर, रामनगर तथा काशीपुर में फैले हैं। जनसंख्या के वितरण की दृष्टि से बुक्सा आदिवासियों की सबसे घनी आबादी नैनीताल जिले में है और बाजपुर, काशीपुर तथा रामनगर कस्बों के साथ सामाजिक-सांस्कृति-आर्थिक तादात्म्य स्थापित कर ये अनजाने में ही एक नई दिशा में और एक नए जीवन की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं जो इनकी परम्परागत संस्कृति से भिन्न है। नैनीताल जिले के बाजपुर से लेकर रामनगर तक का क्षेत्र अथवा गूलरभोज से लेकर चिलकिया (रामनगर) तक का क्षेत्र जहां बुक्सा गांव बसे हैं—भोक्सार या बुक्सार कहलाता है। यह अधिकतर तराई का क्षेत्र है जिसमें रामनगर के पास का भाभर का भाग भी आ जाता है।

बुक्सा जनजाति का प्राचीनतम उल्लेख १६वीं शताब्दी में मुगल सम्राट अकबर के शासन काल में अबुलफजल द्वारा लिखित प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ 'आइन-ए-अकबरी' में मिलता है। इसके बाद अंग्रेजों के शासन काल में इस क्षेत्र से सम्बन्धित कई अंग्रेजी अधिकारियों और दूसरे अंग्रेज लेखकों के संस्मरणों, यात्रा-वृतान्तों तथा ग्रन्थों में आदिवासियों के विवरण मिलते हैं।

हरिभजन सिंह चौहान शोध छात्र, हिमालयन अध्ययन एवं क्षेत्रीय विकास संस्थान, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर (गढ़वाल)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु इनकी संस्कृति का नृवैज्ञानिक उल्लेख हमें पहली बार डा० धीरेन्द्रनाथ मजूमदार के कार्य से मिलता है।

स्त्रियों में गोल चेहरा, गेहुंआ रंग, मंगोल नाक-नक्श स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं। पुरुषों में श्याम वर्ण के लोग मिलते हैं जिनके अन्य शारीरिक लक्षण भी हिन्दुओं की नीची जाति के लोगों जैसे चमार, पासी, धीमर, नाई, लुहार आदि से मिलते हैं और अपने ही समूह की स्त्रियों से भिन्न होते हैं। शारीरिक लक्षणों से सिद्ध होता है कि इनमें प्रजातीय मिश्रण हुआ है। स्त्रियों का सामाजिक स्तर पुरुषों की तुलना में ऊंचा होता है और व्यवहार तथा अन्त-र्सम्बन्धों में स्त्री तथा पुरुष के बीच एक स्पष्ट स्तर का भेद परिलक्षित होता है। पुरुषों को घर के अन्दर या रसोई में भोजन नहीं करने दिया जाता है। स्त्रियां पुरुषों को भोजन देते वक्त थाली में लात मार कर या लात से थाली खिसका कर दे देती हैं जिसे पुरुष घर के बाहर गलियारे में ले जाकर खाते हैं। बुक्सा समाज में, स्त्रियां पुरुषों के साथ सामाजिक-धार्मिक दूरी बनाये रखती हैं, क्योंकि वे अपने आप को उच्च पंवार राजपूत राजवंश का मानती हैं जो मुस्लिम आक्रमण के समय राजपूतानें, धारानगरी अथवा दक्षिण की ओर मध्य प्रदेश से भाग कर अपने नौकरों के साथ (जो सभी नीची जाति के थे) तराई के घने वनों में आकर छिप गयी थीं। कालान्तर में नीची जाति के पुरुष-सेवकों के साथ ही पति-पत्नी के रूप में ये रहने लगीं। पर आज भी बुक्सा स्त्रियां अपने उच्च हिन्दू कुल, जाति और सामाजिक स्तर को जो इनके राजवंश से सम्बद्ध था, भूल नहीं सकती हैं। पुरुष भी अपनी नीची जाति को और इन स्त्रियों के वे कभी सेवक रहे हैं—यह भुला नहीं पाये हैं—कुल मिलाकर यह सिद्ध होता है कि बुक्सा जनजाति ऐतिहासिक संदर्भ में जातीय, प्रजातीय, शारीरिक तथा सांस्कृतिक मिश्रण का प्रतिफल है।

बुक्सा सबसे पहले 'बनबसा' में आकर बसे जो वन के बीच स्थित है, ऐसा वे मानते हैं। इस कारण से इन्हें 'बनका' 'बनक्सा', बुक्सा या भोक्सा कहा जाने लगा। आज भी बनबसा नाम का एक प्राचीन बुक्सा गांव तहसील रामनगर में हैं। बुक्सा नाम का एक प्राचीन बुक्सा गांव तहसील बाजपुर में भी है। एक अन्य धारणा के अनुसार चावल और मांस अधिक मात्रा में खाने के कारण इन्हें 'भक्सी' कहा जाने लगा जो बाद में 'भोक्सा' बन गया। राजपूतों के वंशज की धारणा के कारण बुक्सा लोग जमरऊ जनेऊ पहनते हैं। पुरुष सिर पर लम्बी चुटिया रखते हैं तथा नाम के अन्त में 'सिंह' शब्द जोड़ा जाता है।

सामाजिक संरचना

यह जनजाति स्तरीकृत चार प्रमुख सामाजिक वर्गों अथवा उपजातियों में बंटी है। ब्राह्मण बुक्सा सबसे ऊँचे सामाजिक स्तर के होते हैं परन्तु संख्या में सबसे कम हैं। इनसे नीचे के स्तर पर क्षत्रिय बुक्सा आते हैं। अहीर बुक्सा सामाजिक संरचना में हिन्दू सामाजिक संगठन के समान हैं, निम्न स्तर अर्थात चौथे स्तर पर नाई बुक्सा स्थित हैं जिनकी संख्या सबसे अधिक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाँव में प्रत्येक जाति के बुक्सा बिना किसी भेद-भाव के साथ रहते और समाज के समान सदस्यों के रूप में बिना किसी ऊंच-नीच की भावना के एकजुट होकर सहयोग और भाई चारे के साथ जीवन-यापन करते हैं। विभिन्न बुक्सा उपजातियों में अन्तर्जातीय विवाह सामान्य रूप से होते रहते हैं परन्तु विवाह के बाद भी स्त्री या पुरुष के जातीय स्तर में कोई अन्तर नहीं आता है। यह लक्षण हिन्दू जातियों में अन्तर्जातीय विवाह, अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह से भिन्न हैं। 'गोत' अथवा 'गोथ' (गोत्र) बुक्सा समाज की व्यावहारिक मूल सामाजिक इकाई है।

परिवार तथा विवाह

परिवार तथा विवाह का रूप हिन्दू समाज के समान है। अधिकतर संयुक्त तथा विस्तृत परिवार हैं पर केन्द्रीय परिवार भी हैं और धीरे-धीरे उनकी संख्या बढ़ रही है। परिवार पितृसत्तात्मक तथा पितृवंशीय हैं। चारों ही उप-जातियों में गोत्रों में अनुलोम तथा प्रतिलोम दोनों ही प्रकार से विवाह सम्बन्ध होते रहते हैं। इनके समाज में वधू-मूल्य की प्रथा के साथ वर-मूल्य दहेज की प्रथा भी प्रचलित है। ऊंचे गोत्र में कन्या का विवाह किया जाता है तो वर पक्ष को दहेज देने की प्रथा है। जब कन्या का विवाह अपने से नीचे गोत्र अथवा उपजाति में होता है तो वर पक्ष को कन्या पक्ष का पिता वधू-मूल्य देता है। विवाह के बाद कोई भी पति अपनी पत्नी का गोत्र नाम तथा गोत्र स्तर नहीं बदलता। सन्तानों का गोत्र पिता का ही होता है। क्योंकि वृद्ध सदस्य घर का मुखिया होता है। इनमें बहुपत्नी प्रथा भी प्रचलित है। परन्तु अब बहुपत्नी प्रथा के स्थान पर एक पत्नी वाले परिवारों की संख्या बढ़ रही है। स्त्रियों में परदा प्रथा भी नहीं है। सम्पत्ति पर परिवार का अधिकार होता है और पिता की सम्पत्ति में कोई भाग नहीं होता। विधवा विवाह प्रचलित है। तलाक सरलता से हो जाता है। नये संरचनात्मक परिवर्तनों की शृंखला में संयुक्त परिवारों में विघटन हो रहा है। नये मूल्य, नये आदर्श और नई अर्थव्यवस्था में नैतिकता का स्तर गिर रहा है। पूर्व-वैवाहिक तथा अतिरिक्त वैवाहिक यौन सम्बन्धों में वृद्धि हो रही है। नातेदारी के बन्धन शिथिल हो गये हैं। परिवार में व्यक्तिवादी विचारधारा विकसित हो रही है।

आदिवासी धर्म

बुक्सा आदिवासियों में धर्म का पारम्परिक रूप हिन्दू धर्म का ही प्रतिरूप है। शंकर (महादेव) काली माई, दुर्गा, लक्ष्मी, राम-कृष्ण की पूजा होती है। काशीपुर की चामुण्डा देवी सबसे बड़ी देवी मानी जाती है। व्रत और त्योहार भी हिन्दुओं के समान हैं। होली-दीपावली, दशहरा, जन्माष्टमी प्रमुख त्यौहार हैं। ईसाइयों के समान बड़ा दिन भी मनाते हैं क्योंकि अंग्रेजी शासन में अधिकारियों के सम्पर्क में काफी दिन ये लोग रहे। गांव की देवी की पूजा पवित्र 'थान' पर गांव से बाहर होती है। परिवार की देवी का स्थान घर के अन्दर ही होता है। प्रकृति तथा जीव पूजा का रूप भी हिन्दू धर्म के समान है। चैती तथा कोसी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेला सभी देखने जाते हैं। मृतकों का हिन्दुओं के समान ही दाह संस्कार किया जाता है। जन्म से मृत्यु तक जीवन चक्र तथा प्रमुख संस्कार भी हिन्दुओं के समान है।

अर्थव्यवस्था

बुक्सा धान की खेती करते हैं जो इनकी मुख्य फसल है। इसके अतिरिक्त गन्ना, मक्का, गेहूँ, चना तथा लाही (सरसों) भी उत्पन्न की जाती है। ये लोग नौकरी, मजदूरी करना पसन्द नहीं करते क्योंकि अपने आपको ये ऊँचे राजपूत राजवंश का मानते हैं। जातीय गौरव और मर्यादा इनके जीवन के प्रत्येक पक्ष में झलकती है। मछली-चावल इनका प्रिय भोजन है।

मुख्य फसल धान है जो उपभोग के अतिरिक्त वस्तु विनिमय का माध्यम भी है। कृषि उपकरणों और पद्धतियों में 'नया-पुराना' एक साथ देखा जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिये कृषिकार्य, लकड़ी, लोहे का काम, मकान बनाना, विविध उपकरण बनाना डलियां बनाना, मत्स्य जाल बुनना, बर्तन बनाना आदि प्रमुख व्यवसायिक कार्य हैं। परन्तु इनकी आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन भी धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है। वे अब नई वस्तुओं का प्रयोग करने लगे हैं जो उन्हें दूसरे व्यक्तियों से खरीदनी होती है।

राजनैतिक संगठन

सांस्कृतिक परिवर्तन के प्रभाव से बुक्सा समाज में आज दुहरा तथा समानान्तर राजनैतिक संगठन कार्य कर रहा है। पारम्परिक वंशानुगत बिरादरी पंचायत अभी भी एक जीवित संस्था है जो बुक्सा समाज में न्याय-व्यवस्था बनाये रखने के लिए उत्तरदायी है। साथ ही साथ शासन द्वारा चुनाव कराकर पंचायतों का गठन भी किया गया है। बिरादरी पंचायत चार स्तरों वाली है जिसमें सर्वोच्च अधिकारी तख्त कहलाता है। इसके बाद मुन्सिफ और दरोगा इस क्रम में आते हैं। चौथे स्तर पर दो सिपाही आते हैं। यह सभी अधिकारी वंशात होते हैं और बुक्सा समाज में सम्मान के पात्र होते हैं। सबसे नीचे स्तर पर ग्राम सभा होती है जिसका मुखिया गांव का प्रधान या मुखिया कहलाता है। इसके ऊपर कई गांवों को मिलाकर एक ग्राम-पंचायत का चुनाव द्वारा गठन होता है जिसका अध्यक्ष सभापति कहलाता है। सभापति अन्तर-गांव का अधिकारी होता है। न्याय-पंचायत उच्चतम राजनैतिक संस्था है जिसका अध्यक्ष सरपंच कहलाता है। गम्भीर मामले सरपंच करता है। नवयुवक व्यक्तिगत हित और निजी स्वार्थों में लगे रहते हैं—फिर सामाजिक विकास या सामुदायिक विकास का कार्य कौन करे ?

आर्थिक कठिनाइयाँ

कृषि उत्पादन कम होने के कारण इनकी अपनी साधारण आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो पातीं। प्लास्टिक के खिलौने, साबुन, कंघे, रिबन, नेल-पालिश, स्नो-पाउडर, नकली आभूषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नायलोन तथा टेरिलीन के वस्त्र तथा अनेक शृंगार प्रसाधन सामग्री तथा दैनिक प्रयोग में आने वाली वस्तुयें जैसे मसाले, नमक, मिट्टी का तेल, मिठाई आदि धान देकर ये व्यापारियों से खरीदते हैं। वस्तु के वास्तविक मूल्य की अपेक्षा कई गुना अधिक मूल्य का चावल ये ले जाते हैं। स्त्री-पुरुषों को प्रसाधनादि क्रय करने में धन व्यय करना पड़ता है। पुरुषों की पारम्परिक वेश-भूषा में धोती, कुर्ता, सदरी और सिर पर पगड़ी धारण करने की प्रथा है। स्त्रियां पहले गहरे लाल, नीले या काले रंग की छींट का ढीला लंहगा पहनती थीं और चोली (अंगिया) के साथ ओढ़नी (चुनरी) सिर पर पहनती थीं। अब स्त्रियों में साड़ी, ब्लाउज, स्वेटर, कार्डीगन का प्रचलन सामान्य हो गया है। इस परम्परा के स्थान पर नयी उमर की नयी लड़कियों में हिन्दी फिलमों की नकल करके केश-सज्जा का प्रचलन प्रारम्भ हो गया है।

स्त्रियां परम्परानुसार चांदी के कई गहने धारण करती हैं। विवाहित स्त्रियां हिन्दू उच्च जाति की स्त्रियों के समान ही माथे पर सिन्दूर की गोल बिंदी अवश्य लगाती हैं और हाथों में कांच की चूड़ियाँ पहनती हैं। इसी उद्देश्य से बन्दर, गाय, मोर का मांस भी इनके यहां खाना वर्जित है। मद्यपान पुरुषों की सामान्य आदत है पर वे इसे अच्छी आदत नहीं मानते।

आधुनिक शिक्षा का प्रसार

प्रशासन द्वारा बुक्सार में स्थान-स्थान पर चिकित्सालय खोलकर प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार किया गया है। शिक्षा का प्रसार अभी भी बहुत कम है। अधिकतर लोग प्राइमरी शिक्षा आगे बढ़ने की आवश्यकता नहीं समझते। स्त्रियों में विशेष रूप से लिखना-पढ़ना जानने वाली सम्मान की दृष्टि से देखी जाती हैं। पुरुष रामायण, गीता, भागवत तथा भजनों की पुस्तकें पढ़ते हैं। लोक-गीतों में गंगा-यमुना का महात्म्य गाते हैं। आल्हा ऊदल के कथानक से भी वे परिचित हैं। रामलीला, नौटंकी तथा हिन्दी-सिनेमा और सर्कस देखने के अभ्यस्त हो जाने के कारण उनकी अभिरुचियों में भी परिवर्तन आया है। कई प्राईमरी तथा बेसिक शिक्षा संस्थायें निःशुल्क शिक्षा का प्रसारण कर रही हैं। इसके अतिरिक्त कई प्रकार की छात्रवृत्तियां प्रोत्साहन हेतु प्रदान की जाती हैं। लड़कों के पढ़ने और रहने तथा खाने-पहनने की व्यवस्था जैसी शिक्षा संस्थायें भी यहां हैं। इनका पूरा व्यय शासन वहन करता है। लड़कियों के लिए भी ऐसी संस्थायें विचाराधीन हैं। शिक्षा संस्थाओं में लड़कों व लड़कियों को मिट्टी, धातु, चमड़े का काम, कपड़ा बनाना, साबुन उद्योग और दूसरे कई गृह उद्योगों की व्यावहारिक तकनीकी जानकारी देने के कार्यक्रम चलाये जाते हैं। हल्द्वानी में बुक्सा आदिवासी लड़कों के लिये एक ऐसा ही तकनीकी प्रशिक्षण केन्द्र प्रशासन द्वारा खोला गया है। लड़कियों को सिलाई, बुनाई, कढ़ाई, कला संरक्षण, खिलौने, रंगाई, छपाई आदि गृह कलाओं में दक्ष बनाया जाता है। नयी शिक्षा-विशेष रूप से विज्ञान तथा तकनीकी ज्ञान के प्रसार के साथ बुक्सा समाज-कल्याण का प्रश्न जुड़ गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव

बुक्सा समाज में पिता को 'अब्बा' शब्द से सम्बोधित करते हैं। कुछ स्थानीय मुस्लिम संत, फकीरों में इनकी गहन आस्था है। 'तीसमार खां' तथा 'कालू सैयद' अद्यय मुस्लिम शक्तियां हैं जिनका झाड़-फूंक और टोने-टोटके के अनुष्ठानों में बड़ा महत्व है और बुक्सा लोगों को इनमें अडिग विश्वास है। जादू टोने के लिए बुक्सा विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। कई गोत्रों में से एक 'मुसवानी' गोत्र भी है जो 'मुसवान' अथवा 'मुसलमान' थे जो राजपूतों के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित कर इस क्षेत्र में ही बस गये थे। इससे भी यह सिद्ध होता है कि बुक्सा आदि-वासियों के साथ मुस्लिम रक्त तथा संस्कृति का सम्मिश्रण हुआ है।

प्रशासन का योगदान

प्रशासन द्वारा कई कृषि विकास योजनायें, बचत योजनायें, सामुदायिक विकास कार्यक्रम, स्वास्थ्य सुधार कार्यक्रम, परिवार तथा समाज कल्याण कार्यक्रम, ग्राम्य विकास, अन्त्योदय तथा विस्तार सेवाओं के कार्यक्रम इस क्षेत्र में सक्रिय होकर काम कर रहे हैं। संचार तथा आवा-गमन के साधनों के विकास से संबंधित ग्राम विकास योजनाओं के द्वारा बुक्सार के गांव नगरों के निकट आ गये हैं। गांव नगर की संस्कृति और सभ्यता का एक भाग बन गये हैं। फलस्वरूप बुक्सार में पारिवारिक विघटन भी तेजी से हो रहा है। व्यापार सम्बन्धों के विस्तार ने सांस्कृतिक सम्पर्क और आदान-प्रदान को भी बढ़ावा दिया है। अतः बुक्सा गांव की संस्कृति अब वास्तव में क्षेत्र, प्रदेश और देश की प्रगतिशील संस्कृति का सूक्ष्म प्रतिबिम्ब प्रस्तुत कर रही है।

सन्दर्भ

१. डबराल, एस० पी०—उत्तराखण्ड के भोक्षान्तिक, उत्तराखण्ड का इतिहास, वीरगाथा प्रकाशन, दोगड़ा, गढ़वाल।

२. मजूमदार, डी० एन०—दि फोरचुन्स ऑफ प्रामिटिव ट्राईब्स, १९४४

३. चौहान, एच० वी० एस०—भोक्सा जनजाति की सामाजिक संरचना लघु, शोध प्रबन्ध

४. एटकिन्सन, ई० टी०—हिमालयन गजेटियर, कास्मो पब्लिकेशन, दिल्ली १९७३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीलीभीत नगर (उ० प्र०) की अपराधिक जनजाति कंजर की प्रथाओं, परम्पराओं, रूढ़ियों, जनरीतियों एवं संस्कारों का विश्लेषण

विमल चन्द जैन

सारांश

प्रस्तुत लेख में पीलीभीत की कंजर जनजाति की प्रथाओं, परम्पराओं, रूढ़ियों, जनरीतियों एवं संस्कांरों का विवेचन किया गया है। हिन्दू जाति एवं इनके संस्कारों में काफी समानता पाई जाती है। औद्योगीकरण, नवीनीकरण, विकसित संचार एवं यातायात के साधन एवं सभ्य जातियों के सम्पर्क के कारण भी इन्होंने अपनी संस्कृति की विशेषता को नहीं छोड़ा है। अन्य जनजातियों की भाँति यह भी तन्त्र-मन्त्र, झांड़-फूंक के शिकंजे में जकड़े हुये हैं। जनजातीय पंचायत इनके सामाजिक जीवन में रीड़ की हड्डी के समान कार्य करती है।

प्रस्तावना

जनजाति दो प्रकार की पाई जाती है (१) वह जनजाति जो अपनी आजीविका अपराधिक कार्यों के द्वारा अर्जित नहीं करती है, यद्यपि यदा कदा यह अपराध कर बैठते हैं 'सामान्य जनजाति' कही जाती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद २४४ एवं पांचवे अनुसूची के अन्तर्गत इनको अनुसूचित जनजाति के अन्तर्गत रखा गया है। (२) वे जनजातियाँ जो अपनी आजीविका अपराधिक कार्यों के द्वारा अर्जित करती हैं 'अपराधिक जनजाति' कहीं जाती है।

अपराधिक कार्यों के द्वारा आजीविका अर्जन करने के कारण कंजर अपराधिक जनजाति कही जाने लगी। आजकल इनको भूतपूर्व अपराधिक जनजाति या 'विमुक्त जनजाति' के नाम से जाना जाता है। हजारों वर्षों के सामाजिक कलंक एवं उपेक्षा से मुक्त होकर यह स्वतन्त्र

विमल चन्द्र जैन, वरिष्ठ प्रवक्ता, परा स्नातक समाजशास्त्र विभाग, बद्री विशाल कॉलेज, फर्रुखाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत के स्वतन्त्र एवं सम्मानित नागरिक की भांति समस्त अधिकारों एवं सुविधाओं का उपभोग कर रहे हैं।

सिंहावलोकन

भारतवर्ष के लगभग समस्त प्रान्तों में जनजातियां पाई जाती हैं। इनको 'आदिवासी', 'जंगलवासी' जनजाति नामों से पुकारा जाता है। मौलिकवासी होने के कारण इनको आदिवासी कहा जाता है। जंगल में आधुनिक सभ्यता की चमक, वैभव एवं सुख से दूर रहने के कारण इनको 'जंगलवासी' कहते हैं। प्रत्येक प्रान्त में इनके नामों में अन्तर पाया जाता है। यह नाम उन्हीं के द्वारा दिये जाते हैं। इनके स्थानीय नाम होते हैं परन्तु अन्य प्रान्तों में यह भिन्न-भिन्न नामों से जाने जाते हैं। आंध्र प्रदेश के थरूकुला, तमिलनाडू में कोरवा के नाम से जाने जाते हैं।

हर्वर्ट रिजले (Herbert Risely), शूबर्ट (Shoobert), जी० एस० घूरिये (G. S. Ghuriye) यह मानते हैं कि जनजातियाँ ही मौलिकवासी हैं। वेरियर एलविन (Verrier Elwin) बैगा (Baigas) अपराधिक जनजाति को उसी क्षेत्र, जहां वह रहते हैं, का मालिक अधिकारी मानते हैं।

अनेक जनजातियाँ हिन्दू जाति के अनेक संस्कारों, रीतिरिवाजों, रूढ़ियों एवं संस्कारों को मानती हैं। इसी समानता के कारण मानव-शास्त्री घूरिये उनको हिन्दू मानते हैं। वह इनको पिछड़ा हिन्दू मानते हैं जबकि कुछेक इनमें मुसलमान हैं। कुछेक जनजातियों ने इस्लाम एवं ईसाई धर्म मुस्लिम शासकों एवं मिशनरियों के भय एवं प्रलोभन के कारण आलिंगित कर लिया है। आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि कुछेक जनजातियां अपना दावा उच्चजाति से होने का करती हैं और अपने से में कुछेक जनजातियों को वे अछूत मानती हैं और वैसा ही व्यवहार उनके साथ करती हैं। चाहे जो भी सामाजिक संस्तरण में इनका दावा हो और कहीं से भी इनकी उत्पत्ति एवं उद्गम हो, वर्तमान समय में भोजन एवं व्यवसाय के कारण इनका स्थान समाज से निम्न है। अन्य जातियों के सामाजिक अन्तःक्रिया एवं सामाजिक अन्तः सम्बन्ध में इनको 'अछूत' तथा हेय दृष्टि से देखा जाता है।

१९११ की जनगणना से अपराधिक जनजातियाँ पहली बार पृथक श्रेणी में दिखाई गयी हैं।

१७७३ ई० में सबसे पहली बार अपराधिक जनजाति को कानून के दायरे में लाया गया। सर्वप्रथम १८७१ में अपराधिक जनजाति अधिनियम' लागू किया गया। १८९७ ई० में इसमें संशोधन किया गया। यद्यपि ८० वर्षों तक अपराधिक जनजाति अधिनियम लागू रहा परन्तु कोई लाभप्रद फल नहीं निकला। १९५२ ई० में इस अधिनियम को निरस्त कर दिया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपराधिक जनजातियो का ठोस प्रामाणिक इतिहास नहीं मिलता है। माउण्ट स्टूअर्ट एल्फिस्टान (Mount Stuart Elphinstone) का विचार है कि भारतीय इतिहास में सिकन्दर के आक्रमण के पूर्व किसी सार्वजनिक घटना की कोई तिथि निश्चित नहीं की जा सकती है और न ही इस्लामी विजय के उपरान्त तक भौतिक कार्य-व्यापार का वर्णन प्रस्तुत किया जा सकता है" फिर भी कंजर जनजाति ने अपना उद्गम एवं इतिहास बताया है तो इतिहास के विद्वानों के लिये शोध का विषय है। कंजर जनजाति अपना सम्बन्ध भारत की इतिहास प्रसिद्ध वीर जाति राजपूतों से बताती है। ११९४ ई० कन्नौज के राजा जयचन्द को मोहम्मद गोरी ने पराजित किया। बनारस के प्रदेशों तक इसका राज्य स्थापित हो गया। पराजित राजपूत जाति ने आधीनता को स्वीकार नहीं किया और जाति मर्यादा निर्वाह के लिये जंगलों में रहने लगे। शासन ने इन्हें तंग करने के लिये कुओं और बावलियों का जल विषाक्त कर दिया। ये जंगली पशुओं के शिकार से अपना पेट भरते रहे। दूसरे व्यक्तियों का झूठा खाना और झूठा पानी पीना जल और भोजन के विषाक्त होने के भय एवं शंका से प्रारम्भ किया। इस प्रकार धीरे-धीरे असभ्य होते गये। कन्नौज वंश से सम्बन्धित होने के कारण यह कंजर कहलाये।

कंजर जनजाति 'माना' और 'रापा' दो अत्यधिक वीर सैनिक, जो राजपूतों और मुगल शासकों के युद्ध के समय हुये हैं, पर गर्व करती है। आल्हा और ऊदल को इनके समकक्ष वीर गाथाओं में रखा जाता है। कंजर जनजाति के लोग अपने महत्वपूर्ण उत्सवों पर लोकगीतों (Folk-Songs) इन दोनों वीर सैनिकों की गाथायें गाते हैं। स्मरण स्वरूप इनकी चौकियां लगाते हैं। "माना" की बहन महारानी जिसकी समाधि दिल्ली में आज भी है, की पूजा करते हैं। माना वंश का प्रादुर्भाव इस वीर सैनिक के नाम से हुआ है। कंजर अपनी भाषा से माना को मनहया का राज जिसको ढपैया कहते हैं, गाते हैं। निम्नलिखित पंक्तियां माना वंश के प्रादुर्भाव और उस वंश की वीरता को चित्रित करती है :—

बारह बरसा को मंगेतर टिडा को शिवुआ ने आके ढयया कुवाछिल कर दीने।
टिडा कुखवर मिल रो कि मेरी मंगेतर कुशिनुआ भगा रे लिने जादी है॥
टिडा ने फौरन पंचायतों कु बैठार दिने, पंचायत से टिडा को बोली न बोल रो।
शिबुआ कु उराने वाली, बोल रे टिडा पंचायत में हार गओ रे॥
शिबुआ जीत गयी तई टिडा भाज छूटो तई कलट रो के याद-रकाश दे दीने।
कलट रो ने दो सिपाहिया कु शिबुआ दयया कुपकर वानु के लिये भेज दिने॥

अध्ययन क्षेत्र

इस शोध का विषय पीलीभीत नगर के बरहा, स्टेशन रोड, अशोक नगर, सुनगढ़ी चौकी, पुरानागंज के रहने वाले कंजरों का अध्ययन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधियाँ

इस शोध में अनुसूची प्रणाली, साक्षात्कार प्रणाली, क्षेत्रावलोकन तथा अर्द्धसहभागी अवलोकन पद्धति के द्वारा सूचनाओं एवं तथ्यों को एकत्र किया गया है। इन सूचनाओं का संकलन किया गया तथा सांख्यिकीय पद्धति द्वारा सूचनाओं का शोधन किया गया जिससे सूचनाओं को वैज्ञानिक एवं पक्षपात रहित प्रस्तुत किया जा सके। द्वितीयक स्रोतों के रूप में उपलब्ध सामग्री एवं साहित्य का विश्लेषण किया गया। इस अध्ययन का निदर्शन १०० कंजर परिवारों का अध्ययन है जो कि विभिन्न मोहल्ले से दैव निदर्शन पद्धति से चयनित किये गये हैं।

उद्देश्य

प्रस्तुत लेख का उद्देश्य पीलीभीत नगर के कंजरों की प्रथाओं, परम्पराओं, रूढ़ियों एवं संस्कारों के ज्ञान के साथ उनमें व्याप्त अशिक्षा, अंधविश्वास, जादू-टोने एवं सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के उपाय प्रस्तुत करना है।

तथ्य विश्लेषण एवं व्याख्या

कंजर जनजाति गिहार, कुचबंधिया एवं कन्नास आदि विभिन्न पर्यायवाची नामों से पुकारे जाते हैं। गिहार नाम से पुकारे जाने वाले कंजर सिरकी, पाल, खस (Khas) के पर्दे बनाने, सुअर के बालों का व्यवसाय करते हैं। पीलीभीत नगर में ९५ प्रतिशत गिहार कंजर पाये जाते हैं। व्यवसाय के आधार पर इनको सिरकी बन्द भी कहते हैं। कन्नास कंजरों की आजीविका का साधन चिके, सूप, रस्सी (Rope) एवं डलिया बनाना है। पीलीभीत नगर में ३ प्रतिशत कंजर इस उपजाति के पाये जाते हैं। कंजरों में जल्लाद उपजाति (सन् १९३१ की जनगणना के अनुसार) पहले फांसी देने के लिये रखे जाते थे पर आजकल वह भिन्न-भिन्न व्यवसायों को करने लगे हैं। पीलीभीत नगर में २ प्रतिशत कंजर जल्लाद उपजाति के पाये जाते हैं जो अब अधिकतर लकड़ी का काम करते हैं। तालिका संख्या १ इसको स्पष्ट करती है :

तालिका संख्या १
कंजरों की उपजातियां

क्रम सं०	उपजाति	प्रतिशत
१.	गिहार	९५
२.	कन्नास	३
३.	जल्लाद	२
स्रोत-सर्वेक्षण	संख्या	१००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुचबंधिया कंजर पत्थर की चक्की तथा सिल बनाकर, शहद निकालकर, मोम बनाकर अपनी आजीविका का अर्जन करते हैं। लखीमपुर-खीरी, इलाहाबाद आदि स्थानों में इनकी संख्या अधिक है। कुचबंधिया उपजाति के कंजर अपनी उत्पत्ति 'माना' से बताते हैं। यह अपना सम्बन्ध राजपूत, वंश से सम्बन्धित करने को कहते हैं तथा अपनी सभा के द्वारा यह प्रमाणित करवा दिया है कि अब वह 'गिहार' कहलाये जायेगें।

बरहा, स्टेशन रोड, अशोक नगर, सुनगढ़ी चौकी, पुरानी गंज स्थानों पर कंजर रहते हैं परन्तु सबसे अधिक संख्या में कंजर परिवार बरहा में पाये जाते हैं। तालिका संख्या २ कंजरों के वर्गीकरण को प्रकट करती है :

तालिका संख्या २
कंजरों का वर्गीकरण

क्रम सं०	स्थान का नाम	परिवारों की कुल संख्या
१.	बरहा	७५
२.	स्टेशन रोड	१५
३.	अशोक नगर	६
४.	सुनगढ़ी चौकी	२
५.	पुरानी गंज	१
	स्रोत सर्वेक्षण	संख्या १००

अन्य सभ्य जातियों की भांति इनमें भी गोत्र (Gotra) पाये जाते हैं। गोत्र का प्रारम्भ वंश समूह से होता है। इनके समस्त महत्वपूर्ण गोत्र लकड़हा, सौरा, भैंस, नकपुल्ला, वँध ढडवार, रोरी, सानो, सादी, राजो सादी, सकत, भरहया एवं दहोलिया अर्थात ११ (ग्यारह) है।

कंजर जनजाति में भी टोटम (Totem) एवं निषेध (Taboo) पाये जाते हैं। कंजर जनजाति के टोटम का प्रतीक कुत्ता है। कुत्ते का वध इस जाति में वर्जित है। कुत्ते के हत्यारे को इस जनजाति में दण्डित किया जाता है। वधिक को कच्ची रोटियां एवं बिना नमक की पतली अरुचिकर एवं अस्वाद दाल खाने को दी जाती है। इस टोटम के सम्बन्ध से एक किंवदन्ती प्रचलित है। जिस समय यह जनजाति जंगलों में प्यास से परेशान होकर तालाबों और बावलियों के पानी को पीकर अपनी प्यास बुझाने को थी तभी साथ में चलते हुये कुत्ते ने पानी पीने को जाते हुये कंजरों को रोका। वाणी की विवशता के कारण शारीरिक चेष्टाओं एवं मुद्राओं से जल को न ग्रहण करने का संकेत दिया और उनके जल पीने से पूर्व पीकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। इस प्रकार अपने प्राण देकर एक बहुत बड़े मानव समाज के प्राणों की रक्षा की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्रत्यक्ष रूप से उससे इन्होंने यह शिक्षा ग्रहण की कि जीवन रक्षा के लिये झूठे पानी का पीना ही ठीक है।

प्रत्येक जाति में किसी न किसी रूप में निषेध (Taboo) पाया जाता है। कंजर जन-जाति में निषेधों के पीछे एक किंवदन्ती है जिसके अनुसार मजौरी वारा से ही कंजरों की उत्पत्ति हुई है। यह एक बहुत कुशल एवं योग्य नर्तकी थी जिसने गूजर राजाओं की विभिन्न अवसरों पर सेवा करके बहुत से पारितोषिक पाये थे। एक बार राजा उसके नृत्य से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने नर्तकी से आँखें बन्द कर पुनः नृत्य को करने पर अपना राज्य देने का वचन दिया। नर्तकी नृत्य करने लगी। नर्तकी के नृत्य की समाप्ति के पूर्व दूसरी नर्तकी ने डाट में भरकर उसके बच्चे को तमाचा मार दिया। फलस्वरूप नर्तकी मजौरी बहुत दुःखी हुई और रस्से पर से फर्श पर गिर पड़ी। बहुत अधिक घायल हुई और प्राणान्त से पूर्व उसने अपने सम्बन्धियों को शिक्षा दी कि रस्सियों पर नृत्य वर्जित है। जून के माह में पीपल वृक्ष के नीचे बैठना मना है, पानी से भरे हुये घड़े के नीचे सर पर गद्दी मत लगाना; २८ दीपक दीपावली पर जलाना वर्जित है एवं बहती हुई नदी से पीने का पानी मत लेना। इन सब निषेधों का पालन कंजर आज तक मानते हैं। प्रतिद्वन्दी नर्तकी को श्राप दिया कि वह अथवा उसके बाद उसकी जाति के समस्त व्यक्ति गाने, नाचने एवं वेश्यावृत्ति से ही अपनी आजीविका चलायेंगे।

प्रारम्भिक अवस्था में यह बिल्कुल अशिक्षित एवं असभ्य थे। फलस्वरूप इनकी भाषा अव्यावहारिक एवं टूटी फूटी रही। इनकी भाषा में व्याकरणक नियमों का अभाव है। स्थूल उपकरणों एवं इंगितों के सहारे विचारों की अभिव्यक्ति होती है। दैनिक बोली में पुरुष को "गिहारा" तथा स्त्री को 'गिहारी' कहते हैं। बालक को 'बटरा' तथा बालिका को 'बटरी' कहते हैं। निम्नलिखित उदाहरण उनकी भाषा को प्रकट करती है :—

"एक वक्तो की बात है कि एक परी थी। परिओ को नाम किरन थो। उसका पंख सुनेहरा था। उसका सिरो पे फला जो मुकुट थौ। एक रातो कुपरियों की रानिया ने कहो कि किरन नदीये पार बागो में जा। चांदीये को घंटाओं कु बजा के सोरी हुई परियो कुजवाद उनकु यहाँ पै बुला ला। कल राजकुमारियों के जन्म दिन है।"

कंजर परिवार पितृसत्तात्मक एवं पितृवंशीय है। बच्चों की अधिक संख्या होने के कारण कंजरों का परिवार साधारणतया बड़ा होता है। कम आय अधिक परिवार संख्या होने एवं गृह कलह के कारण व्यस्त होने पर कंजर अलग अपना निवास स्थान बनाकर रहने लगता है। फलस्वरूप कंजरो का परिवार संयुक्त परिवार प्रणाली के स्थान पर एकाकी परिवार की ओर बढ़ रहा है। तालिका संख्या ३ कंजरों के परिवारों के प्रकार को बताती है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तालिका संख्या ३
परिवार के प्रकार

क्रम सं०	परिवार के प्रकार	प्रतिशत
१.	एकाकी	८९
२.	संयुक्त	११
स्रोत-सर्वेक्षण	संख्या	१००

उपर्युक्त विश्लेषण निम्न तथ्यों को स्पष्ट रूप से बताते हैं :--

१. गिहार, कन्नास, जल्लाद उपजातियां कंजरों में पाई जाती है। (तालिका संख्या १)

२. कंजरों में गोत्र (Gotra) टोटम (Totem) एवं निषेध (Taboo) पाये जाते हैं।

३. कंजरों में पितृसत्तात्मक एवं पितृवंशीय परिवार पाये जाते हैं।

४. संयुक्त परिवार प्रणाली के स्थान पर एकाकी परिवार प्रणाली प्रचलित एवं प्रिय होती जा रही है। (तालिका संख्या ३)

कंजर परिवारों में पारिवारिक नियंत्रण समाप्त होता जा रहा है क्योंकि प्रातःकाल से सायंकाल तक माता पिता दोनों रोटी रोजी कमाने में व्यस्त रहते हैं। फलस्वरूप बच्चों को ठीक प्रकार से देख-रेख करने में असमर्थ है। बुरी संगत एवं शिक्षा के अभाव में वह शनैः-शनैः अपराधी प्रवृत्तियों की ओर आकर्षित होते हैं।

कंजर परिवारों में स्त्री की दशा बड़ी विनम्र होती है क्योंकि उसको क्रय किया जाता है। स्त्री को क्रय की हुई वस्तु से अधिक वह कुछ नहीं समझते। परिणाम स्वरूप पुरुष वर्ग स्त्री पर अपना आधिपत्य रखता है। उनको दासी के समान समझता है। कंजर पुरुषों की धारणा है कि बिना अंकुश के स्त्रियां अनियन्त्रित हो जाती हैं। इस कारण कभी-कभी वह स्त्रियों को मारते पीटते भी हैं। कंजरों में तुलसीदास की चौपाई "ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी सकल ताड़ना के अधिकारी" पूर्णरूप से कार्यान्वित होती है। अविवाहित स्त्रियों को भी अविवाहित पुरुषों के जैसा स्तर नहीं मिलता है।

कंजर जनजाति में जन्म संस्कार, कर्णछेदन संस्कार, मुण्डन संस्कार, यज्ञोपवीत संस्कार, विवाह एवं मृत्यु संस्कार मनाये जाते हैं।

बच्चे के जन्म के समय सूप की पूजा होती है। यह पूजा गुड़, सोंठ, हल्दी आदि वस्तुओं से होती है। माता महारानी तथा बड़े बूढ़ों का पूजन जलेबी तथा शराब से होता है। खोये की मिठाई, पान, शराब से अन्य देवियों को भी पूजा जाता है। अन्नप्राशन का संस्कार जन्म के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छठे दिन मनाया जाता है। बच्चे को काले रंग का डोरा पहनाया जाता है। मीठे चावल का भोजन कराया जाता है। महारानी देवी के पूजन के पश्चात स्त्री पुरुष भोजन करते हैं। कर्ण-छेदन का संस्कार बच्चे के न जीने या बहुत दिनों में होने के कारण मनाया जाता है।

देव स्थानों पर ही मुण्डन संस्कार कराया जाता है। देवता को बकरे की भेंट दी जाती है। 'लकड़हारे' गोत्र में यह संस्कार श्राद्ध पक्ष में होता है। व्यक्ति नाई से बाल उतरवाते समय न्यौछावर करते जाते हैं। इस जाति में यह संस्कार झाड़-फूंक, तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोने का रूप ले चुका है।

यज्ञोपवीत संस्कार अन्य यज्ञोपवीत धारण करने के रूप में नहीं मनाया जाता है। कंजर इसको छड़ी के रूप में मनाते हैं जो जन्म के छठे दिन भी हो सकती है और विवाह के पहले दिन भी। इसके बिना विवाह सम्भव नहीं है।

अन्य जातियों की भांति कंजरों में भी विवाह महत्वपूर्ण है। कंजर जनजाति में गोत्रार्ध में विवाह पाया जाता है। मामा, फूंफा, मौसा आदि की लड़की से विवाह कर लेते है। परन्तु यदि एक ही गोत्र के हैं तब विवाह नहीं करते हैं। कंजर अधिकतर जहां रहते हैं वहीं अपने सम्बन्धियों के यहाँ विवाह कर लेते हैं। यह प्रथा अत्यन्त प्राचीन है। अन्य जातियों की भांति कन्या के माता-पिता विवाह करने हेतु वर के घर पर नहीं जाते परन्तु वर पक्ष के माता-पिता स्वयं कन्या के घर जाते हैं। कन्या को देखने के पश्चात अपने घर की बहू बनाने को मांग करते हैं। पंचों को एकत्र कर शराब व लड्डू से मंगनी की रस्म निश्चित करते हैं। तत्पश्चात कन्या का पिता वर के पिता से रुपया मांगता है। इस प्रथा को दूसरे शब्दों से कन्या क्रय अथवा वधू मूल्य (Bride price) कहा जा सकता है। सत्य यह है कि आजकल कंजर जन-जाति में कन्या का क्रय ही विवाह समझा जाता है। आजकल किसी भी उपजाति की कन्या को खरीद कर कंजर उससे विवाह कर लेते हैं। विवाह की सम्पूर्ण रस्मे एवं क्रियायें वर के घर में सम्पन्न होती हैं। कन्या पक्ष के समस्त सदस्य वर पक्ष के घर आ जाते हैं और पाणिग्रहण संस्कार की सभी रस्मे एवं कार्य वर पक्ष के घर होते हैं। वधू पक्ष वाले वधू मूल्य (Bride price) प्रथा होने के कारण अधिक मूल्य माँगते हैं फलस्वरूप अनेक निर्धन लड़के अविवाहित रह जाते हैं। ४० प्रतिशत परिवार 'बाल विवाह' के पक्ष में हैं, ३० प्रतिशत विधवा विवाह के पक्ष में है; २० प्रतिशत अन्तर्जातीय विवाह के पक्ष में हैं; २५ प्रतिशत विच्छेद के पक्ष में है; ९० प्रतिशत दहेज-प्रथा के पक्ष में हैं।

जिस प्रकार अन्य जातियों में दाह संस्कार होता है उसी प्रकार इस जनजाति में भी होता है। मृत्यु के तीसरे दिन तीजा की क्रिया होती है। इसी दिन दही और मीठे के पिण्ड बनाकर मृतक व्यक्ति की आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है। उसके पश्चात कुटुम्बियों को दही मीठा खिलाया जाता है। हिन्दुओं में तुरन्त कपाल क्रिया द्वारा मृतक से समस्त एवं अन्तिम सम्बन्ध विच्छेद किया जाता है पर कंजर जनजाति में सातवें दिन पुनः बचाई हुई हड्डी को एक स्वच्छ कपड़े पर रखकर किसी भी वयोवृद्ध द्वारा तब तक उस पर प्रहार किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है जब तक वह टूट न जाये। इस क्रिया के द्वारा कंजर विश्वास करते हैं कि अब मृतक व्यक्ति से सम्बन्ध विच्छेद हो रहा है। इस हड्डी के मांस को तो पकाया जाता ही है साथ में उन समस्त वस्तुओं एवं पदार्थों को भी पकाया जाता है जो मृतक को प्रिय थीं। इसके पश्चात चावलों को पकाकर दही में मथकर मेवा आदि में मिश्रित कर एक बड़ा सा बनाते हैं। इस पिण्ड को रोटी के ढेर से ढक देते हैं। इस पिण्ड को 'थरी' कहते हैं। इस प्रकार की क्रिया इसलिये करते हैं जिससे उनको पता चले कि मृतक व्यक्ति की आत्मा भविष्य में किस योनि में आने वाली है क्योंकि योनि से सम्वन्धित चिह्न पिण्ड पर बन जाते हैं। प्रसाद रूप यह पिण्ड सभी में वितरित कर दिया जाता है। सबको भोजन भी कराया जाता है। इस पिण्ड को आठवें दिन हटाया जाता है। जिसे "थरी बढ़ाना" कहते हैं। माता महारानी के नाम पर इस पिण्ड पर शराब चढ़ाई जाती है। फिर प्रसाद रूप सबको बांट दी जाती है। सर्प दंश के कारण या अचानक जंगल में मृत्यु हो जाने के कारण मृतक को जल में प्रवाह करते हैं। सर्प के काटने से समस्त शरीर विषमय हो जाने के कारण 'थरी' की क्रिया सम्भव नहीं है। मुसलमानों की भांति बहुत समय पहले जमीन में गाड़ने की प्रथा थी। सबसे बड़े पुत्र द्वारा अन्य जातियों की भांति स्नान तथा श्रृंगार करके क्रिया की जाती है।

उपर्युक्त विश्लेषण निम्न तथ्यों को स्पष्ट रूप से प्रकाशित करते हैं :—

१. कंजर परिवार में स्त्री की दशा बड़ी निम्न तथा हीन होती है।

२. हिन्दू जाति की भांति जन्म संस्कार, अन्नप्राशन, कर्णछेदन संस्कार, मुण्डन संस्कार, यज्ञोपवीत संस्कार, विवाह एवं मृतक संस्कार मनाये जाते हैं। फिर भी इनमें यज्ञोपवीत दाह संस्कार आदि के उद्देश्यों एवं क्रियान्वयन में अन्तर पाये जाते हैं।

३. कंजर जनजाति में गोत्रार्ध में विवाह पाया जाता है अगर वर-वधू एक ही गोत्र के हैं तब विवाह निषेध है।

४. वधू मूल्य (Bride price) एक अभिशाप का कार्य कर रहा है।

५. बाल विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह तथा विवाह विच्छेद का विरोध करते हैं।

६. दहेज प्रथा (Dowery System) के पक्ष में हैं।

भारतीय जनजातियों का जीवन पूर्णतया: धर्म, जादू-टोने, तन्त्र-मन्त्र, झाँड़-फूंक पर आधारित है। आदिम संस्कृति में धर्म एवं जादू-टोनों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। जनजातियों में धर्म का अर्थ है किसी अतिमानवीय या अलौकिक शक्ति पर विश्वास। कंजरों का धार्मिक व सामाजिक जीवन प्रथाओं, परम्पराओं, रूढ़ियों, रीति रिवाजों पर आधारित व नियन्त्रित होता है। कंजर आत्मा की अमरता, नश्वरता, पूर्व जन्म एवं पूर्वजों की आत्मा को प्रसन्न रखने के लिये अनेक प्रकार के धार्मिक कृत्य करते हैं। तालिका संख्या ४ कंजरों की प्रथा, परम्परा, सामाजिक रीति रिवाजों के प्रति दृष्टिकोण को प्रकट करती है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तालिका संख्या ४

प्रथा, परम्परा एवं सामाजिक रीति रिवाज के प्रति दृष्टिकोण

क्रम सं०	दृष्टिकोण	प्रतिशत
१.	अनुकूल	६५
२.	प्रतिकूल	१०
३.	तटस्थ	२५
	स्रोत-सर्वेक्षण	१००

६५ प्रतिशत अपनी प्रथा, परम्परा एवं सामाजिक रीति रिवाजों में आस्था रखते हैं। १० प्रतिशत प्रतिकूल हैं तथा २५ प्रतिशत तटस्थ हैं अर्थात न तो इन पर वह पूर्णतया आधारित है और न ही इनमें अविश्वास करते है। कंजरों में शकुन अथवा अपशकुन भी धार्मिक पक्ष से सम्बन्धित है। अगर अपने उद्देश्य को जाते हुये सामने से डकारती हुई गाय दीख जाये तब यह शुभ चिह्न या शकुन है। यदि सर्प इनके मार्ग को काट दे तब यह किसी भयानक भय का सूचक है। यदि गीदड़ों की चिंघाड़ सुनाई दे तब विदेश में गये समूहों को बाधाओं का सामना करना पड़ेगा या कोई पकड़ा जायेगा।

पीलीभीत नगर में चार भिन्न स्थानों पर 'बरहा पंचायत', 'सुनगड़ी पंचायत', 'अशोक नगर पंचायत' एवं 'जल्लाद पंचायत' है जो अपने-अपने क्षेत्र में रहने वाले कंजरों की जातीय समस्याओं को सुलझाने एवं जातीय कल्याण एवं उत्थान का प्रयत्न करती है।

कंजरों की जातीय पंचायत जाति के सदस्यों में शान्ति और सुरक्षा का कार्य करती है। आधुनिक गणतन्त्र की ही भांति इन जातीय पंचायतों का संगठन है। पांच व्यक्तियों के द्वारा यह संगठन कार्य करता है। इसी कारण पंचायत कहते हैं। पंचायत का निर्णय सुनने या कार्यवाही के लिये सभी सदस्य उपस्थित हो सकते हैं। कंजर जाति के सभी व्यक्ति एकत्रित होकर पांच व्यक्तियों का निर्वाचन करते हैं। परम्परा के आधार पर सरपंच सुनने का मानदण्ड आयु, शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता है। सरपंच को यह 'चौधरी' से सम्बोधित करते हैं। पंचों के मुख से निकले प्रत्येक शब्द का पालन कानून की तरह किया जाता है। प्रत्येक वाक्य कानून से अधिक प्रभावशाली होता है। पंचायत द्वारा दिया दण्ड सबको मानना पड़ता है। उसका उल्लंघन करने का साहस किसी में नहीं होता है। धर्मानुसार हर पंचायत द्वारा दण्ड दिया जाता है। उस व्यक्ति को भी पंचायत में उपस्थित होना पड़ता है जो अपने टोटम के प्रति उदासीन अथवा हनन करता है, रीति रिवाजों एवं संस्कारों की उपेक्षा करता है। कंजरों के आपसी झगड़े, गबन अथवा चोरी के अपराध से पकड़े हुए कंजर भी पंचायत की शरण में आते हैं। पंचायत के अन्तर्गत समस्त प्रकार के दीवानी-फौजदारी के न्याय किये जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त विश्लेषण निम्न तथ्यों पर स्पष्ट रूप से प्रकाश डालता है :—

१. प्रथा, परम्परा, रूढ़ि, जनरीति आदि की पकड़ कंजरों में गहरी बैठी हुई है। यह इनके सामाजिक, धार्मिक जीवन में धुरी का कार्य करती है। (तालिका संख्या ४)

२. जातीय पंचायत सामाजिक जीवन में रीढ़ की हड्डी के समान कार्य करती हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव

प्रत्येक व्यक्ति समान अधिकार और समान विकास के अधिकार लेकर जन्म लेता है। यह आवश्यक है कि अपराधी जनजातियों को राजनैतिक अधिकारों की तरह सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में भी समान अधिकार मिले। कंजर अपराधी जनजाति भी डोम, हबूड़ा, बैरिया, कबीले, नट की भांति बहुत ही पिछड़ी हुई अवस्था में है जिसका कल्याण एवं उत्थान अति आवश्यक है जिससे कि अन्य जातियों की भाँति परिस्थितियों के साथ अनुकूलन कर सके। इनका समाज में कोई अस्तित्व नहीं समझा जाता और एक प्रकार से वहिष्कृत जाति का सा हीन एवं उपेक्षा पूर्ण व्यवहार किया जाता है। इनकी सामाजिक स्थिति दयनीय है। नगर के बाहर समूह बनाकर मिट्टी की झोपड़ी, टूटी-फूटी खपरैल, कच्चे एवं अर्द्ध कच्चे हवा एवं प्रकाश रहित मकानों में रहते हैं। स्नानगृह तो हैं ही नहीं। सार्वजनिक शौचालयों में दैनिक क्रिया के लिये जाते हैं।

कंजर समुदाय की निर्धनता समस्त समस्याओं का केन्द्र बिन्दु है। प्रति व्यक्ति आय इतनी कम है कि अपने परिवार को दो समय भोजन तथा तन ढकने को वस्त्र नहीं दे सकते हैं। यह गरीबी रेखा के नीचे का जीवन जी रहे हैं।

कंजरों के परिवारों का आकार बड़ा है। परिवार नियोजन के महत्व के प्रति उदासीनता अधिक जनसंख्या को जन्म देती है। कंजर जनजाति में स्त्रियों की दशा बड़ी विनम्र एवं दयनीय है। फलस्वरूप बहुत से निर्धन युवक अविवाहित रह जाते हैं जो अनैतिकता को जन्म देती है। खरीदी हुई स्त्री की दशा एक दासी से अच्छी नहीं होती जिसके कारण पारिवारिक तनाव की स्थिति बनी रहती है। फलस्वरूप पारिवारिक नियन्त्रण छिन्न-भिन्न हो जाता है। वास्तव में वैवाहिक जीवन अत्यन्त निर्बल सूत्रों में बन्धे होने के कारण ही यह स्थिति है।

कंजर जनजाति सामाजिक कुरीतियों का शिकार है। इनका धार्मिक जीवन, प्रथा, रूढ़ि, परम्परा, तन्त्र-मन्त्र, झाड़-फूंक एवं अनेक सामाजिक कुरीतियों द्वारा नियन्त्रित एवं निर्देशित होता है। आज के तर्कप्रधान युग में भी यह जनजाति अन्धविश्वासों, जादू एवं टोने के जाल में फँसी हुई है।

कंजर पंचायत द्वारा कल्याणकारी जैसे बच्चों की शिक्षा, सुरक्षा, सफाई का प्रबन्ध, स्वच्छ पीने के पानी का प्रबन्ध, आमोद-प्रमोद के कार्यों को भी करना चाहिये। कंजरों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मादक द्रव्यों का सेवन खुलकर होता है तथा विवाह एवं मृत्यु संस्कार पर अपव्यय होता है। इनको रोकने या कम करने में कंजरों की पंचायत बहुत कुछ कर सकती है।

कंजर पंचायत द्वारा भी निष्पक्ष न्याय इनको नहीं मिलता है। गुटबन्दी एवं दलबन्दी के कारण कंजरों का विश्वास हटता जा रहा है और न्यायालय की शरण ले रहे हैं।

इनकी प्रगति हेतु लगातार नवीन योजनाओं का निर्माण तथा प्रसार होना चाहिए। आर्थिक दशा सुधारने के लिये अधिक से अधिक कुटीर धन्धों का विकास होना चाहिये तथा जो भी कुटीर धन्धे चल रहे हैं उनको सुधारने के लिये इनको आर्थिक सहायता दी जानी चाहिये। सहकारी समितियों का निर्माण होना चाहिए जो स्वयं अथवा सरकार से ऋण आदि दिलाने में सहायक सिद्ध हो सकती है। पंचायतों के अधिकार क्षेत्र का विस्तार करना लाभदायक फल दे सकता है। सरकार की ओर से भी कंजरों को कुछ आर्थिक सहायता दी गयी है। सरकार ने कुछ परिवारों को गृह निर्माण के लिये रुपये दिये हैं जो उनको वापिस नहीं करना है। कंजर बच्चों के लिये नाम मात्र का शिक्षाधन देकर बरहा में एक बेसिक स्कूल खोला गया है। योग्यतानुसार एवं कक्षाओं के अनुसार बच्चों को छात्रवृत्ति देने का भी प्रबन्ध है। शिक्षा के प्रसार से उनमें आत्मविश्वास एवं आत्मबल ही नहीं बढ़ेगा वरन व्याप्त सामाजिक कुरीतियां अपने आप दूर हो जायेंगी। स्वस्थ मनोरंजन के साधनों के अभाव से जाति के सदस्य निम्न एवं हीन प्रकार के साधनों को प्रयोग करते हैं। कंजरों के सामान्य मनोरंजन के साधन शिकार, सिनेमा, गपशप, गुल्ली डण्डा, बत्तीसी, ताश आदि हैं। स्वस्थ मनोरंजन के साधन उपलब्ध कराने हेतु योजनाओं का विकास आवश्यक है।

केवल सरकारी प्रयत्नों से इनकी आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक एवं अधिक जनसंख्या की समस्या हल नहीं हो सकती है। इसके लिये जनता का सहयोग और सामाजिक कार्यकर्ताओं की लगन एवं निष्ठा पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है। अन्य जातियों के हृदय में इनके प्रति सहानुभूति एवं सहृदयता की भावना को जागृत करना लाभदायक परिणाम दे सकता है।

आभार प्रदर्शन

मैं अपने महाविद्यालय के ग्रन्थाकार श्री रमेशचन्द्र पाण्डे, एम० बी० लिब० के सहयोग का आभारी हूँ।

तथ्यों के संग्रहण में श्री जागेश्वर प्रसाद सक्सेना, प्रधानाचार्य, म्यूनिसिपल इण्टर कॉलेज, फतेहगढ़ के सहयोग के प्रति भी अनुगृहीत हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संदर्भ ग्रंथ

1. Risely, Sir Herbert : The People of India. Thacker Sprink & Co., Calcutta. (1908)
2. Census of India, 1931 : Cited in Ghurye 'The Scheduled Tribes.' Popular Book Depot, Bombay, p. (1951).
3. Ghurye, G. S. : The Aboriginals–so called And Their Future. Popular Book Depot, Bombay. (1949) p. 21.
4. Elwin, Verrier : "The Baigas" p. 519 cited in G. S. Ghurye. The Scheduled Tribes p. 8, Popular Book Depot, Bombay, (1951).
5. Census of India, 1911 : Govt. Press, Delhi.
6. Singh, Sher : The Sansis of Panjab, Munshiram Manohar Lal, Delhi, p. 244 (1965).
7. Ambedkar, B. R. : The Untouchables, Who Were They? How They Became Untouchables ? Amrit Book Co., Delhi, p. VI, In Preface. (1948)
8. हमारा इतिहास और नागरिक जीवन, भाग 2 : गोपाल पुस्तक सदन, मेरठ, अष्टम संस्करण, पृष्ठ १२ (१९८२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यार्थी स्तंभ

मानव का प्रतीकात्मक जीवन संसार –एक रचनात्मक-विकासवादी दृष्टिकोण

एलविन जे० मुकर्जी

मानव जीवन संसार एक दिव्य प्रकाश नहीं वरन् जैसा मनुष्य को ज्ञात है, संसार एक विशिष्ट रचना है। हम अपने संसार को प्रत्यक्ष ज्ञान के विभिन्न स्वरूपों, विचार प्रक्रिया के तर्क सम्बन्धी वैचारिक नियमों एवं अपनी भाषाई व्याकरण के आधार पर समझते हैं। इन तीनों विधाओं में से प्रत्येक दूसरे के सापेक्ष स्वतंत्र है। यह तीनों एक दूसरे को प्रभावित करती हैं तथा एक प्रामाणिक संसार का प्रतीकात्मक प्रतिनिधि रूप में निर्माण करती हैं। इन्हीं स्वरूपों की सहायता से हम प्रकृति पर पुनः कार्य करते हैं। वास्तव में हमारे चारों ओर की प्रत्येक वस्तु इसी श्रम की देन है और ऐसी प्रत्येक देन विचारों, भावनाओं एवं आशाओं और स्वप्नों से सम्बद्ध है। परन्तु यह कहानी का केवल आधा भाग ही है। शेष भाग प्रदर्शित करता है कि मनुष्य स्वयं अपने संसार के साथ विकसित होता है।

प्राकृतिक इतिहास से सांस्कृतिक इतिहास में प्रत्यावर्तन का काल प्राकृतिक पर्यावरण से सांस्कृतिक विश्व के प्रतीकात्मक स्वरूपों में प्रवेश का ही अन्तराल नहीं है बल्कि उद्भुत पशु से विकसित मानव का भी। मानव स्वयं के निर्माण में अपने जीवन संसार का भी निर्माण करता है। हमारा उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि इस प्रक्रिया को कैसे समझा जाय।

यहां आवश्यक होगा कि हम दो परिणाम सुनिश्चित करें। अतः—

१—संसार को समझने का अर्थ है उसके निर्माण सम्बन्धी सिद्धान्तों के उस संदर्भ को समझना जिससे उसका उद्भव हुआ।

डा० एलबिन, जे० मुखर्जी, प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ क्रिश्चियन कॉलेज, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—मनुष्य को समझने का अर्थ है उसको उन परिस्थितियों एवं घटनाओं के संदर्भ में समझना जिसके अन्तर्गत वह अपने संसार एवं स्वयं अपने आपको निर्मित करता है।

समाजशास्त्र इन दोनों क्षेत्रों में अपनी क्षमता अधिकृत करता है—मानव को समझना एवं संसार को समझाना। ज्ञान की ऐसी व्यापक मान्यता निश्चित रूप से समाजशास्त्र को दर्शनशास्त्र के प्रतिद्वन्द में ला खड़ा करती है। समाजशास्त्र की मान्यता तो यहाँ तक है कि उसने दर्शनशास्त्र को, कम से कम इसकी रूढ़िवादी एवं सामयिक छवि की दृष्टि से कहीं पीछे छोड़ दिया है।

मुझे यह तथ्य स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नहीं कि आज तक समाजशास्त्र इस धारणा की प्रस्थापना में सफल नहीं हुआ है। तथापि समाजशास्त्र की इस मान्यता को स्वीकार करने के पर्याप्त कारण हैं। बावजूद उस पिछड़ाव के जो कि इस विज्ञान ने अमरीकी प्रभाव के अन्तर्गत पिछले ५० वर्षों में अनुभव किया है एवं इसके सभी सम्प्रदायों के द्वारा इस बात का प्रतिवाद कि मानव चिन्तन का ज्ञान सम्भव है, समाजशास्त्र के पास निस्संदेह दर्शनशास्त्र की लम्बी एवं सतत उपलब्धियों के उपरान्त ज्ञान को वैज्ञानिक रूप से समझने की वह सभी पद्धतियाँ उपलब्ध हैं जिनकी सहायता से ज्ञान की सीमाओं को काल्पनिक चिन्तन से परे निश्चित कर पाने में सम्पन्न हुआ है।

इस लेख में इसी पद्धति का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है जिसको 'मानव संसार' एवं स्वयं मानव के सम्बन्ध में समुचित ज्ञान प्राप्त करने हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है। मैं इस पद्धति का उल्लेख उन पाँच महत्वपूर्ण सिद्धान्तों के संदर्भ में करूँगा जिन पर निश्चित रूप से समाज शास्त्र आधारित है। इन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके मैं कदापि इस बात का दावा नहीं करता कि मेरे हाथ कोई जादुई चिराग लग गया है, अपितु इतना अवश्य कहना होगा कि यह योगदान समाजशास्त्र की ज्ञान सम्बन्धी व्यापक मान्यताओं को सम्भव बनाता है। अर्थात दूसरे शब्दों में इस पद्धति का एक प्रमुख उद्देश्य 'मानव संसार' को प्रतीकात्मक स्वरूपों द्वारा रचित संसार के रूप में समझने योग्य बनाना है। यहाँ इस प्रयाससे मेरा तात्पर्य 'विज्ञान के इतिहास' की भौतिकवादी व्याख्या करना नहीं, वरन् इस 'विज्ञान के इतिहास' के माध्यम से यह सुनिश्चित करना है कि 'संसार को समझने' अथवा 'मानव को समझने' से हमारा क्या अभिप्राय है। संक्षेप में हमारा तात्कालिक सम्बन्ध मानव उद्‌विकास के अन्तराल को निश्चित करना है अर्थात 'प्राकृतिक संसार' से 'प्रतीकात्मक स्वरूपों के संसार' अथवा जीव विज्ञान से समाजशास्त्र तक का अन्तराल।

आधुनिक युग में पनपी नवीन वैज्ञानिक विचारधारा ने न केवल मनुष्य की विचार-धाराओं एवं बाह्य परिस्थितियों को ही प्रभावित किया है बल्कि स्वयं मनुष्य को ही सम्पूर्ण विश्व का केन्द्र बिन्दु बना दिया है। संसार के प्रति हमारा ज्ञान अन्ततः मनुष्य में ही केन्द्रित होता है। परिणामस्वरूप मनुष्य स्वयं को एक ऐसी स्थिति में पाता है जहां उसका 'संसार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति ज्ञान' एवं 'स्वयं का ज्ञान' परस्पर एक जटिल समस्या बन जाते हैं। इसकी जटिलता इस तथ्य में निहित है कि "अब ज्ञान का स्रोत न तो "पारलौकिक" है और न ही "जैविकीय" ज्ञान तो केवल मनुष्य की ही उपज है। अतः समाजशास्त्र के सिद्धान्त को हम इन शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं।

"मनुष्य स्वयं अपने संसार का निर्माण करता है।"

यह कथन लोगों को खटक सकता है। पर ध्यान रहे कि सहस्त्रों वर्षों का दर्शनशास्त्र का प्रयास इस गुत्थी को सुलझाने में असफल रहा है। वास्तविकता यह है कि चाहे दर्शनशास्त्र हो या धर्मशास्त्र यथार्थ में तो यह 'मानवशास्त्र' ही है। इसके अतिरिक्त दर्शन उपर्युक्त कथन की अन्तः प्रेरणा के अतिरिक्त कुछ भी निरूपित नहीं करता। दूसरे सिद्धान्त की ओर अग्रसर होने पर स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम कथन किसी भी प्रकार से विचार के मार्ग में बाधक नहीं है।

इस मान्यता की स्वीकृति कि "मनुष्य स्वयं अपने संसार का निर्माण करता है", एक स्वाभाविक प्रश्न को जन्म देती है : यह निर्माण मनुष्य कैसे करता है ? एवं वह क्या है जो मनुष्य को इस योग्य बनाता है ? यहां पर मैं समाजशास्त्र के उस दूसरे सिद्धान्त का उल्लेख करूँगा जो प्रथम सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से समझने में हमारी सहायता करेगा। दूसरा सिद्धान्त इस प्रकार है :—

"मनुष्य के संसार को समझने का अभिप्राय उसे उन परिस्थितियों एवं संदर्भों में पुनः निर्मित करना है जिनके अन्तर्गत उसका आरम्भ में निर्माण हुआ था।"

यह दूसरा सिद्धान्त इस बात पर प्रकाश डालता है कि 'मनुष्य का संसार' प्रतीकात्मक स्वरूपों द्वारा निर्मित हुआ है तथा समाजशास्त्र इन प्रतीकात्मक स्वरूपों के माध्यम से मनुष्य के संसार सम्बन्धी ज्ञान को स्पष्ट कर सकता है"। यह दूसरा तथ्य न केवल प्रथम सिद्धान्त को ही स्पष्ट करता है बल्कि हमें समाजशास्त्र से मानवशास्त्र की ओर अग्रसर करता है। सम्भवतः हमारा मानवशास्त्र की ओर अग्रसर होना हमें उन बातों को समझने में सहायक सिद्ध होगा जिनका समाधान दर्शनशास्त्र के प्रभाव के अन्तर्गत या तो 'पारलौकिक तत्व' या 'मानव स्वभाव' जैसे विचारों के माध्यम से समझा जाता रहा है।

हमारी यह मान्यता कि मनुष्य स्वयं अपने संसार का निर्माता है, वास्तव में यह इस तथ्य को भी स्वीकृति प्रदान करती है कि न तो मनुष्य से पहले उसके संसार (सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन) का कोई अस्तित्व है और न ही मानवीय संसार के पूर्व मनुष्य (एक सामाजिक प्राणी के रूप में) का कोई अस्तित्व है। यह तथ्य हमें डार्विन द्वारा प्रतिपादित उद्विकास के सिद्धान्त से जोड़ता है जो उन परिस्थितियों को समझने में हमारी सहायता कर सकता है जिनमें मनुष्य द्वारा 'मानव संसार' की रचना की सभी सम्भावनाएं निहित हैं अर्थात किसी जीव की 'जैविकीय संगठन प्रणाली' में वह कौन सी विशिष्टता है जो उसे 'प्रतीकात्मक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूपों' के माध्यम से स्वयं अपने संसार का निर्माण करने योग्य बनाती है। इस सम्बन्ध में एक बात तो निश्चित रूप से स्पष्ट है कि 'प्रतीकात्मक स्वरूपों के संसार' का निर्माण केवल सामाजिक क्रिया के परिणाम स्वरूप ही सम्भव है। इस तथ्य का सत्यापन हम (समाजशास्त्री) 'मानवशास्त्रीय संगठन प्रणाली' को आधारभूत मानकर कर सकते हैं।

'मानव शास्त्रीय संगठन' से हमारा अभिप्राय उन सभी परिस्थितियों से है जिनके अन्तर्गत पशु समाज ने एक निश्चित उद्विकास क्रम में मानव समाज की स्थिति प्राप्त की है। मानवशास्त्री इस ओर भी संकेत करता है कि मानव का जैविकीय अथवा प्राकृतिक ढांचा ही मनुष्य के "सामाजिक संगठन की इकाई है"। अतः समाजशास्त्र इस तथ्य को एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त रूप में लेकर चलता है कि मानव उद्विकास प्राकृतिक इतिहास के अन्तर्गत ही सम्पन्न हुआ है। समाजशास्त्र की यह मान्यता मानवशास्त्र को भी अपने विषय क्षेत्र में समेट लेती है।

समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र का समन्वय समाजशास्त्र को उसके तीसरे सिद्धान्त की ओर अग्रसर करता है, जो इस प्रकार है :—

"मानवशास्त्र मानव संसार की रचना प्रणाली का आदि बिन्दु है। मानवशास्त्र की भूमिका यह सुनिश्चित करने में है कि प्रतीकात्मक रूप से निर्मित संसार कहाँ तक मनुष्य के "जैविकीय संगठन प्रणाली" के द्वारा निर्धारित होता है।"

यह तीसरा सिद्धान्त न केवल इस बात को कि मानव के प्रतीकात्मक जीवन संसार की आधारशिला प्रकृति एवं जैविकीय संरचना में निहित दर्शाता है बल्कि इस ओर भी संकेत करता है कि स्वयं मनुष्य ने अपने संसार को निर्मित किया है। मानव की 'जैविकीय संगठन प्रणाली' का तात्पर्य उस अवस्था से है जिसमें मनुष्य पशु जीवन से। उद्विकसित होकर अधिक कार्य क्षमता प्राप्त करता है। निस्संदेह पशु भी क्रियाशील है—परन्तु उसकी क्रिया शीलता अन्तर्जात प्रवृत्तियों द्वारा संचालित होने के कारण उसे उसके पर्यावरण से स्वतंत्र होकर गतिशील होने का अवसर प्रदान नहीं करती। यही कारण है कि पशु को अपने जैविकीय आधार एवं प्रकृति से ऊपर उठकर सामाजिक, सांस्कृतिक एवं प्रतीकात्मक संसार की रचना करने की आवश्यकता ही नहीं होती। इसके विपरीत 'अधिक कार्य क्षमता' ने मनुष्य को जैविकीय स्तर पर पर्यावरण के साथ अन्तःक्रिया करके उसे उत्पत्ति के उद्विकास क्रम में अग्रसर किया है।

मनुष्य का प्रकृति से स्वतन्त्र अस्तित्व एवं बाह्य जगत में उसकी क्रियाशीलता चौथे सिद्धान्त को जन्म देती है जो निम्नवत है :—

"आधुनिक ज्ञानशास्त्र निश्चित रूप से द्वन्दात्मक भौतिकवादी सिद्धान्त है।" यह सिद्धान्त इस तथ्य पर बल देता है कि प्रतीकात्मक संसार का निर्माण "प्रकृति एवं जैविकीय मनुष्य से ही प्रारम्भ होता है।" मनुष्य की जैविकीय संगठन प्रणाली कुछ इस प्रकार की है, अन्तर्जातीय प्रवृत्तियों के ह्रास एवं कार्य क्षमता के परिणाम स्वरूप, वह बाह्य जगत के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भौतिक सामाजिक यथार्थ से अन्तः क्रिया करके प्रतीकात्मक स्वरूपों को जन्म दे सकता है। इस उत्पत्ति की द्वन्दात्मक प्रकृति यह दर्शाती है कि ज्ञान प्रतीकात्मक जीवन संसार एक रचना है जिसमें जैविकीय संगठन एवं बाह्य जगत की वस्तुनिष्ठ सत्यता दोनों ही समान रूप से अनिवार्य है। इस बात का आशय यह नहीं कि जैविकीय मनुष्य एवं पर्यावरण के बीच प्राकृतिक परिस्थितियों में ही अन्तः क्रिया का आरम्भ हुआ बल्कि सत्य यह है कि उद्विकास समूह के मध्य नवजात शिशु के लिए एक सुरक्षित सामाजिक वातावरण का विकसित होना अनिवार्य हुआ। इस सुरक्षित सामाजिक वातावरण में ही मानव जाति ने प्राकृतिक पर्यावरण के दबाव से स्वतन्त्र होकर सीखने की प्रकिया द्वारा सामाजिक सांस्कृतिक स्वरूपों को जन्म दिया। यही कारण है कि 'जाति इतिहास' का मूल स्रोत जैविकीय उद्विकास में निहित है। हम मानव उद्विकास को चाहे जिस काल से जोड़ें :—२० या ३० लाख वर्ष पूर्व १५०,००० वर्ष पूर्व अथवा ३५,००० वर्ष पूर्व—वास्तविकता यह है कि निर्माण की प्रक्रिया अवश्य ही सुरक्षित सामाजिक वातावरण में भ्रूण विकसित हुई है।

यह सुरक्षित सामाजिक वातावरण ऐसी महत्वपूर्ण मानवशास्त्रीय दशा है, जिसके अन्तर्गत नवजात शिशु का आरम्भ से ही समूह के किसी अनुभवी सदस्य, विशेषतौर से माँ, के द्वारा लालन-पालन सम्पन्न होता है तथा यही वह चरण है जब कि बालक एवं माता के बीच अन्तः क्रिया का आरम्भ होता है। इस विकास की प्रक्रिया के अन्तर्गत विशेषता यह है कि प्रतीकात्मक स्वरूपों के भ्रूण विकास में बालक की बाह्य जगत की वस्तुओं के साथ अन्तः क्रिया की अपेक्षा बालक की माता के साथ अन्तः क्रिया अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। मैं यहाँ पर ज्ञान के विकास एवं शिशु माता अन्तःक्रिया के विस्तार में न जाते हुए समाजशास्त्र के पांचवें सिद्धान्त का प्रतिपादन करूँगा जो कि इस प्रकार हैं :—

"मानव का प्रतीकात्मक संसार अन्तःक्रियाओं द्वारा निर्मित संसार है।"

हालाँकि यह सिद्धान्त समाजशास्त्रीय साहित्य में कोई नवीनता नहीं रखता परन्तु फिर भी यह हमें इस तथ्य को समझने मैं अवश्य सहायता करता है कि जीवन के प्रतीकात्मक स्वरूपों एवं ज्ञान का स्रोत न तो मनुष्य के भीतर है और न ही उसके बाहर सामाजिक सांस्कृतिक एवं भौतिक जगत में ज्ञान का स्रोत तो 'भ्रूण विकास काल' में व्यक्ति एवं वस्तु जगत के बीच होने वाली अन्तःक्रिया में निहित है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके भ्रूण विकास काल क्रम में 'जाति इतिहास की जटिलताएँ' उपलब्ध होती हैं, परन्तु ऐसा कदापि नहीं होता कि जाति इतिहास की उपलब्धि प्रत्यक्ष रूप से नई पीढ़ी को हस्तान्तरित हो जाये। प्रत्येक पीढ़ी के नये सदस्य अपने भ्रूण विकास के दौरान अपनी पीढ़ी द्वारा विकसित ज्ञान पर पुनः कार्य करके उसे पुनः निर्मित करते हैं। इन पुनः निर्माण की प्रक्रिया का आशय यह नहीं कि पुनः निर्मित सामाजिक वास्तविकता एक पीढ़ी से दूसरी तक फोटो कापी की भांति उतरती चली जाती है। यदि ऐसा ही हुआ होता तो संभवतः मानव संस्कृति के इतिहास को आदिम समाज से औद्योगिक समाजों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तित्व की कल्पना कर पाना ही असम्भव होता। अतः नई पीढ़ी के सदस्यों द्वारा उनके प्रारंभिक काल के अन्तर्गत किसी पुरानी अथवा भौतिक वास्तविकता का पुनः निर्माण केवल उसकी पुनरावृति मात्र नहीं बल्कि नये सदस्यों के नवीन अनुभवों द्वारा निर्मित नई वास्तविकताओं का समावेश भी हैं। इस प्रकार प्रत्येक नई पीढ़ी के सदस्य अपने जीवन काल में निरन्तर नये अनुभवों को पुरानी सामाजिक वास्तविकताओं में जोड़ते चले जाते हैं, जिसके फलस्वरूप नई सभ्यताओं संस्कृतियों एवं नये ज्ञान का उदय होता है।

यदि मानव सभ्यता के इतिहास को इसी प्रक्रिया द्वारा संचालित माना जाये तो इस बात में कोई संदेह नहीं कि मानव सभ्यता की प्रत्येक अवस्था एक दूसरे के साथ क्रमबद्ध रूप से जुड़ी हुई है।

सामाजिक यथार्थ के पुनः निर्माण की यह ऐतिहासिक क्रमबद्धता दो विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा सम्पन्न होती है :—प्रथम वे वाह्य कारक जो निश्चित रूप से पूर्व निश्चित प्रतीकात्मक स्वरूपों के पुनः निर्माण एवं उससे वर्तमान को उपलब्ध होते हैं, एवं दूसरे वे कारण जो कि आन्तरिक रूप से ज्ञान का पुनः निर्माण करने वाली मानसिक संरचनाओं एवं स्वरूपों से सम्बन्धित होते हैं। पुनः निर्माण की यह प्रक्रिया स्वच्छन्द न होकर सदैव सुनिश्चित नियमों में बंधी होती है।

अंततः, ज्ञान के पुनर्निर्माण की पद्धति एक ऐतिहासिक पद्धति है एवं मानव संसार के प्रतीकात्मक स्वरूपों का विकास पूर्व निर्मित मानसिक संरचनाओं एवं उनके रूपान्तर की दशाओं के माध्यम से घटित होता है।

मानव जीवन संसार विवेक शून्य नहीं। चाहे प्राचीन आदिम समाजों में व्याप्त रूढ़ियां अंधविश्वास, जादू टोना इत्यादि हों अथवा आधुनिक औद्योगिक समाजों की भौतिकवादी विवेकशीलता—सभी तर्क संगत हैं। मानव ज्ञान इतिहास को समझने का अभिप्राय उसके विकास में निहित इसी तर्क को उद्घाटित करना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत के लोग—एक राष्ट्रीय परियोजना

भारतीय मानव वैज्ञानिक सर्वेक्षण

लगभग १०० वर्ष पूर्व सन् १८८५ में एक, २७ बिन्दुओं पर आधारित नृजाति विवरण सर्वेक्षण का कार्यक्रम बनाया गया था। इस परियोजना में जिन आधारभूत बिन्दुओं को लिया गया था वे तत्कालीन ब्रिटिश नृजाति वैज्ञानियों की परिकल्पना पर आधारित जाति और उसकी विशिष्टताओं से सम्बद्ध थे। इसमें बहिर्विवाही उप विभाजन, अंतर्विवाही विभाजन, वैवाहिक सीमाएं, नृजाति इतिहास, विवाह पूर्व लैंगिक सम्बन्धों की छूट और वेश्यावृत्ति, विरासत के नियम, स्थानीय धर्म, जीवन चक्र संस्कार, पेशा तथा भोजन सम्बन्धी सहभोजी मान्यताएं थीं। इनसे सम्बन्धित जानकारी यत्न पूर्वक और विस्तार में एकत्रित की जाती थी तथा सूचनादाताओं को निवास, जाति, उपजाति तथा स्तर (अधिकारिक एवं सामाजिक) के आधार पर अलग-अलग पहचानना था। इसके अन्तर्गत ब्रिटिशकालीन भारत के विभिन्न क्षेत्रों और राजाओं द्वारा शासित राज्यों का विस्तृत नृजातीय सर्वेक्षण किया गया। यह पक्ष बीसवीं शताब्दी के पाँचवे दशक के प्रारम्भ तक चलता रहा जबकि विवरणात्मक नृजाति अध्ययन समाप्त-प्राय हो रहे थे। यद्यपि इसके अन्तर्गत हमारी दृष्टि पैनी होती चली गयी परन्तु भारत के लोगों के बारे में हमारे समग्र ज्ञान में विशेष वृद्धि नहीं हो सकी।

हमारे देश जैसे विस्तृत प्रायद्वीप-क्षेत्र तथा विषमताओं से युक्त समाज को ठीक से समझने के लिए केवल विनिबन्धात्मक अध्ययन ही नहीं वरन विस्तृत सर्वेक्षण भी साथ-साथ आवश्यक थे ताकि दृष्टि के पैने होने के साथ-साथ परिप्रेक्ष्य का भी विकास हो सके और इसके सम्मिलित ज्ञान से हमारे लोगों के बारे में अर्थपूर्ण जानकारी एकत्रित हो सके। हम अपने विभिन्न समुदायों के बारे में पर्याप्त ज्ञान नहीं रखते हैं और इनमें से अनेकों के बारे में हमारी जानकारी अपूर्ण है। अतः यह 'भारत के लोग' नामक परियोजना चलाई गई ताकि प्रत्येक समुदाय का एक लघु विश्लेषण प्रस्तुत किया जा सके जिसमें परिवर्तन के प्रारूप, अन्तर्संमुदायी सम्बन्ध और विकास के प्रति इनके दृष्टिकोण की जानकारी प्राप्त हो सके। इसमें इकाई के रूप में ऐसे समुदाय लिये गये हैं जिन्हें लोग स्वयं अलग मानते हैं। अब तक ऐसे लगभग ५००० समुदायों को सूचीबद्ध किया गया है जो भारत सरकार द्वारा अनुसूचित जाति और जनजाति के रूप में, राज्य सरकारों द्वारा पिछड़े वर्गों के रूप में और हमारे द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नृजातीय विवरणों को लेकर छाँटे गये हैं। हमने विभिन्न लोगों के द्वारा अपनी बताई गई स्थिति के रूप में उनको स्वीकार करने का निर्णय लिया है।

प्रत्येक राज्य/केन्द्र शासित क्षेत्र को हमारे अध्ययन की इकाई माना गया है। एक पन्द्रह सूत्रीय प्रारूप के अन्तर्गत १५० बिन्दुओं पर प्रत्येक समुदाय के विषय में जानकारी एकत्रित की जा रही है। इसे पुन: एक कम्प्यूटर प्रारूप के आधार पर प्रत्येक समुदाय की स्तरीय जानकारी के साथ सम्बद्ध किया जाता है। पूरा प्रारूप चार भागों में विभक्त है। पहला भाग सामान्य जानकारी का है जिसमें समुदाय के इतिहास की अवधारणा, प्रवसन तथा उनके मिथक, लोकगाथाओं एवं पुराणों पर आधारित विस्तार को लिया गया है। मिथक निरन्तर बनते रहते हैं। दूसरे भाग में समुदाय का नृजातीय विवरण है जिसमें जैविक-मानव-विज्ञानी पक्ष, भोजन सामग्री व खाने की आदतों, स्त्रियों का स्तर, कला एवं संस्कृति आदि को लिया गया है। तीसरे भाग में अन्तर्सामुदायिक सम्बन्धों जिसमें विभिन्न सेवाओं के आदान-प्रदान, अनुष्ठानों में भागीदारी, अर्थव्यवस्था, राजनीति, मेले और त्यौहार आदि को लिया गया है। अन्तिम भाग में विभिन्न विकास सम्बन्धी गतिविधियों के प्रति उनके दृष्टिकोण को समाहित किया गया है।

पहले से देश के विभिन्न क्षेत्रों में अनुसूची के पूर्वपरीक्षण के बाद, उपरोक्त परियोजना २ अक्तूबर, १९८५ को प्रारम्भ की गई थी। अब तक लगभग ३१०० समुदायों के बारे में क्षेत्र अन्वेषण कार्य पूरा कर लिया गया है। लगभग २० प्रतिशत समुदायों का अध्ययन कार्य भारतीय मानव वैज्ञानिक सर्वेक्षण के बाहर के विद्वानों को दिया गया है जिनमें से अनेकों ने इसको स्वीकार कर कार्य आरम्भ कर दिया है। हमने इस परियोजना के प्रारूप निर्धारण एवं अनुसूची निर्माण हेतु अनेकों विद्वतजनों से विचार विमर्श किया था जिनमें समाजशास्त्री मानवशास्त्री और इतिहासज्ञ सम्मिलित थे।

उपरोक्त परियोजना का प्रतिपादन, निष्पादन एवं निर्देशन भारतीय मानव वैज्ञानिक सर्वेक्षण के महानिदेशक डॉ० कुँवर सुरेश सिंह द्वारा किया जा रहा है।

प्रस्तुतकर्ता :— **दीपक त्यागी**, अधीक्षण मानववैज्ञानिक, भारतीय मानव वैज्ञानिक सर्वेक्षण, मैसूर।

रूपांतरकार :— **प्रभात कुमार तिवारी**, विभागाध्यक्ष, मानव विज्ञान विभाग, श्री जय नारायण डिग्री कालेज, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक समीक्षा

छत्तीसगढ़ के नगेसिया। लेखक विलियम एक्का तथा अजीत के० डांडा। 1984. कलकत्ता : एन्थ्रोपोलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया, पृष्ठ xviii × 177

समीक्षक— दीपक त्यागी, भारतीय मानव विज्ञान सर्वेक्षण, दक्षिणी क्षेत्र, मैसूर।

आरम्भ में मानव वैज्ञानिकों ने मानव समूहों - समुदायों का अध्ययन 'इथनोग्राफी' के रूप में किया, परन्तु आज का मानव वैज्ञानिक अपने इस परम्परागत क्षेत्र के प्रति निस्पद सा हो गया है विशेष रूप से भारत के संदर्भ में। आज भी 'इथनोग्राफिक' अध्ययनों का अपना एक विशिष्ट स्थान है और इसी के कारण 'मानव' का सम्पूर्ण ज्ञान हमें प्राप्त होता है। आज के मानव वैज्ञानिक अध्ययनों की संख्या बहुत ही कम हो गई है। हमें अभी 'इथनोग्राफिक अध्ययनों की ओर विशेष ध्यान देना होगा क्योंकि आज भी भारत में अनेकों मानव समूह हैं जिनके 'इथनोग्राफिक अध्ययन' हमें प्राप्त नहीं है। विशेष रूप से हमें उन समूहों की ओर अतिशीघ्र ध्यान देना होगा जो, अपनी परम्परागत रीतियों और रिवाजों को खोने की दिशा की ओर अग्रसर है। यह उचित एवम् समयायुक्त होगा, यदि हम विभिन्न मानव समूहों - समुदायों (विशेष रूप से अनुसूचित जनजातियों) का 'इथनोग्राफिक अध्ययन' कर उन्हें आने वाली पीढ़ी तथा आज के मानव के ज्ञान वर्धन हेतु प्रस्तुत कर सकें। प्रस्तुत पुस्तक में छतीसगढ़ के नगेसिया जनजाति का 'इथनोग्राफिक अध्ययन' प्रस्तुत किया गया है। यह पुस्तक अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित की गई है। ऐसी पुस्तकें अन्य भाषाओं, विशेषकर हिन्दी भाषा में उपलब्ध हो सकें तो ज्यादा अच्छा होगा। 'एरिया स्टडी : छत्तीसगढ़' नाम से १९६९ में एक शोध प्रोजेक्ट आरम्भ किया गया था और इसी वृहत प्रोजेक्ट के अंतर्गत नगेसिया जनजाति का भी अध्ययन किया गया है। यह पुस्तक विभिन्न स्थानों (छतीसगढ़) में निवास करने वाले नगेसिया जनजाति से एकत्रित की गई अध्ययन सामग्री पर आधारित है।

इस पुस्तक को आठ अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय 'इट्रोडेंक्शन' में, नगेसिया जनजाति का संक्षिप्त इतिहास दिया गया है। इसी के साथ-साथ राजमोहनी देवी तथा गेहिरागुरू के 'सुधार अन्दोलनों का भी वर्णन किया गया है। इन अन्दोलनों के प्रभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को भी दिया गया है। भौतिक संस्कृति (मटिरियल कल्चर) को द्वितीय अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। अध्याय तीन तथा चार में क्रमशः 'आर्थिक' एवम् 'सामाजिक' व्यवस्था को दर्शाया गया है। अध्याय पाँच में 'जीवन वृत' (लाइफ सायकिल) की तीन महत्वपूर्ण घटनायें जन्म, विवाह, तथा मृत्यु को चित्रित किया गया है। अध्याय छः में 'राजनैतिक' व्यवस्था तथा सात में 'धर्म' (रिलीजन) को दिया गया है। अन्तिम अध्याय–'कनकूलीडिंग रिमार्क्स' एक संक्षिप्त तथा उपयोगी अध्याय है। संदर्भ सूची के अतिरिक्त, पुस्तक में 'अतिरिक्त ग्रंथ सूची', 'शब्द सूची' तथा 'अनुक्रमणिका' ने इस पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ा दिया है।

पुस्तक में यदि श्रमिक मजदूरों का वर्णन करते समय अध्ययनगत गांवों की जनसंख्या भी दी जाती, तो अधिक अच्छा होता क्योंकि इससे तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता था। लेखकों ने 'आर्थिक व्यवस्था की चर्चा करते समय 'केशरा' (Keshra) तथा 'तूकूटोली (Tukutoli) को एक साथ मिला कर चर्चा क्यों की है ? 'सामाजिक व्यवस्था' अध्याय में परिवारों की संख्या के साथ-साथ या केवल प्रतिशत दिया जाता तो विशेषायुक्त होता। 'धर्म' के अध्याय में 'बेगा' (Baiga) तथा 'देवार' (Dewar) की समय-समय पर पड़ने वाले कार्यों के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। अति उत्तम होता यदि इनके बारे में कुछ विस्तृत जानकारी (केवल परिशिष्ट के रूप में ही सही) दी जाती। पुस्तक में बहुत सी मुद्रण त्रुटियाँ (?) दिखाई पड़ती है (पुस्तक के आरम्भ में त्रुटि-शुद्धि पत्र भी दिया गया है) जिसे द्वितीय संस्करण में सुधार लेना चाहिये।

यह एक अच्छी पठनीय पुस्तक है। यह एक महत्वपूर्ण एवम् उपयोगी पुस्तक है विशेष कर उन लोगों के लिये जो नगेसिया जनजाति पर कोई भी शोध कर रहे हैं या करने की सोंच रहे हैं। लेखकों का नगेसिया जनजाति को 'नृकुल वर्णन' (इथनोग्राफिक अध्ययन) करने के इस प्रयास की सराहना करनी चाहिये। वे बधाई के पात्र है। और दूसरे लेखकों को भी प्रेरणा लेनी चाहिये और विभिन्न समुदायों, विशेषकर जनजातियों का इथनोग्राफिक अध्ययन प्रस्तुत करना चाहिये। इस पुस्तक का 'इथनोग्राफिक' साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू परिवार

अयोध्या सरन तिवारी एवं
श्रीमती मीरा भार्गव

परिवार समाज की आधारभूत जैविकीय और सामाजिक इकाई है। परिवार की इस केन्द्रीय स्थिति को ही लक्ष्य कर पार्सन्स और बेल जैसे समाजशास्त्रियों ने इसे समाज की लघु व्यवस्था अथवा उपव्यवस्था के रूप में स्वीकार किया है। व्यक्ति को मानव स्वभाव प्रदान करने में परिवार का अभूतपूर्व योगदान है। जन्म के समय कोई भी शिशु मानव नहीं होता। वह एक अविभाज्य जैविक इकाई होता है। लेकिन जन्म के बाद उसमें परिवर्तन होना आरम्भ हो जाता है। वह दूसरे व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है और संचार की प्रक्रिया द्वारा दूसरे व्यक्तियों की मनोवृत्तियों को अन्तरीकृत करता है, सामाजिक आदर्शों को सीखता है। संक्षेप में, व्यक्तित्व का निर्माण करता हैं। इसके पश्चात् ही वह वास्तविक अर्थ में मनुष्य (person) बनता है। परिवार नवजात व्यक्ति को समाज के ढांचे में ढालने का कार्य करता है। अपने मध्य में जन्म लेने वाले लोगों के आरम्भिक जीवन में यह परिवार सम्पूर्ण समुदाय के रूप में कार्य करता है परन्तु जैसे-जैसे शिशु यौवन और बाद में प्रौढ़ता की ओर अग्रसर होने लगता है वैसे-वैसे इसका प्रभाव भी क्रमशः मन पर पड़ने लगता है।

प्राय: सरल समाजों और अधिक समुन्नत पितृमूलक समाजों में सम्पूर्ण सामाजिक संरचना पारिवारिक इकाइयों से बनी है। केवल अति विकसित सभ्यताओं में ही परिवार इस कार्य को पूरा नहीं करता है फिर भी इनमें विद्यमान स्थानीय समुदाय और सामाजिक वर्गों के विभाजन परिवारों से ही मिलकर बनते हैं। अरस्तू ने समुदाय की परिभाषा परिवार-समूहों के रूप में की है उसकी राय में समुदाय "परिवारों का समूह है।"

समाज के सतत अस्तित्व के लिये भी परिवार सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्था है। समाज का क्रम न टूटने पाये इसके लिये आवश्यक है कि कुल-परम्परा भी नियमित हो। समाज की

डा० अयोध्या शरण तिवारी, प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग, जय नारायण डि० कॉलेज, लखनऊ
श्रीमती मीरा भार्गव, प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग, नवयुग क० विद्यालय डि० कॉलेज, लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरन्तरता और अटूट वंश क्रम के लिये सन्तानोत्पादन का कार्य अति महत्वपूर्ण है। सन्तानोत्पादन परिवार के मौलिक कार्यों में से एक है। परिवार बच्चे को उत्पन्न कर, उसका पालन-पोषण कर उसे समाज में एक स्थान देता है, सम्भवतः इसीलिये विद्वानों ने इसे पद प्रदान करने की एजेन्सी कहा है। व्यक्ति सामाजिक व्यवस्था में एक निश्चित पद प्राप्त कर उससे सम्बन्धित कुछ अधिकारों और कर्तव्यों को पूरा करता है। इन अधिकार कर्तव्यों की पूर्ति में ही समाज का अस्तित्व निहित है। समाज एक प्रकार्यात्मक सम्पूर्णता (functional whole) है। प्रकार्यात्मक सम्पूर्णता के रूप में समाज तभी बना रह सकता है जब उसके सदस्य अपनी निर्धारित भूमिकाओं को पूरा करते रहें और जो पद समाज में रिक्त होते जायँ उन्हें परिवार दूसरे व्यक्तियों द्वारा भरता रहे।

परिवार ऐसा संगठन है जो सर्व-व्यापक है। हर समाज में, विकास के हर स्तर पर हमें परिवार का कोई न कोई रूप अवश्य मिलता है। वैवाहिक सूत्र में आबद्ध पति पत्नी और उनके अविवाहित बच्चों से बना हुआ परिवार सभी स्थान और कालों में पाया जाता है। विकास वेत्ताओं का कहना है कि मानव संस्कृति के आदि काल में पारिवारिक संगठन नहीं था, लेकिन यह दृष्टिकोण काल्पनिक मालूम होता है क्योंकि आज तक आदिवासी तथा अन्य प्रकार के जो भी समाज प्राप्त हुए हैं सब में परिवार का कोई न कोई रूप अवश्य विद्यमान है।

किसी न किसी प्रकार का पारिवारिक संगठन प्रत्येक संस्कृति में देखने को मिलता है लेकिन परिवार का रूप सभी संस्कृतियों में एक सा नहीं है। मानव समाज में परिवार में विविध स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं। यह विविधता कुछ तत्वों पर निर्भर करती है जो इस प्रकार हैं :—

(१) विवाह-सम्बन्ध के रूप :—विवाह सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर का हो सकता है अथवा एक जन्म या एक जन्म के थोड़े काल तक का ही हो सकता है। किसी संस्कृति में एक विवाह प्रथा का आदर्श है तो दूसरी में बहु-विवाह प्रथा का। कुछ आदिम समाजों में समूह विवाहों (group marriage) का प्रचलन भी पाया गया है। कोई समाज इनमें से एक से अधिक रूपों में स्वीकृति दे सकता है। उदाहरणार्थ तिब्बतीय समाज में आर्थिक दृष्टि से अकिंचन लोगों में बहु-पति विवाह और जिनकी आर्थिक स्थिति ठीक है उनमें एक-विवाह प्रथा और जो धनी शासक हैं उनमें (एक से अधिक पत्नियों का रखना) बहु-पत्नी विवाह प्रचलित है।

(२) वंशागति :—कुछ समाजों में वंश गणना पुरुष पक्ष से होती है और कुछ में स्त्री पक्ष से। दोनों प्रकार की प्रणालियां मानव संस्कृति में सफलतापूर्वक व्यवहृत हुई है।

(३) जीवन साथी का चुनाव :—जीवन साथी के चुनाव प्रक्रिया सम्बन्धी नियम भी प्रत्येक समाज में पाये जाते हैं। कहीं किसी दिये हुए क्षेत्र की सीमाओं के भीतर ही विवाह करने का नियम है और कहीं उस क्षेत्र से बाहर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त तत्वों की विविधता के कारण परिवार के भी विविध स्वरूप हो जाते हैं। चूंकि सभी संस्कृतियों में जीवन साथी के चुनाव, वंश गणना और विवाह सम्बन्ध के रूपों में साम्य नहीं है अतः परिवार के स्वरूप भी एक संस्कृति में दूसरी संस्कृति से भिन्न होते हैं। परिवार की इस अनेकरूपता को ही लक्ष्य कर आगबर्न और निमकाफ़ ने परिवार के ढांचे के स्थिर न होने की बात कही है।

पारिवारिक संगठनों के विविध स्वरूपों के कारण परिवार की सार्वभौम परिभाषा करना भी संभवतः कठिन है। यहाँ तक कि एक ही समाज में कई पारिवारिक स्थितियाँ मिलती हैं—जैसे—(१) विवाह सूत्र में बंधे केवल स्त्री पुरुष, (२) स्त्री पुरुष और उनके बच्चे, (३) अपने बच्चों सहित एक विधवा स्त्री और (४) बच्चों सहित विधुर पुरुष। उपर्युक्त चार स्थितियाँ एक ही परिवार स्वरूप में मिलती हैं। इन्डीवीजुअल फ़ैमिली को हम ऐसे परिवार के रूप में नहीं परिभाषित कर सकते जिसमें स्त्री-पुरुष और उनके बच्चों का ही समावेश हो। वैयक्तिक परिवार की परिभाषा ऐसी होनी चाहिये जिसमें कम से कम उपर्युक्त चारों रूपों का समावेश हो। आगबर्न और निमकाफ़ ने आधुनिक परिवार (मॉडर्न फ़ैमिली) अथवा वैयक्तिक परिवार की परिभाषा देने में उपरोक्त तत्वों को ध्यान में रखा है इसलिये यहाँ पर उनकी परिभाषा का ही उल्लेख करना अधिक लाभप्रद होगा—

"When we think of a family we picture it as more or less a durable association of husband and wife with or without children, or of men or women alone, with children".

मैकाइवर और पेज परिवार के बनने में विवाह का अभूतपूर्व योग मानते हैं। इसीलिये वे परिवार को परिभाषित करने में यौन सम्बन्धों और उनसे जनित सन्तान के पालन-पोषण को ध्यान में रखते हैं। इसलिये उनके मत से परिवार एक ऐसे समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो यौन सम्बन्धों द्वारा परिभाषित हो और इतना छोटा तथा स्थायी हो कि उसमें जन्म लेने वाले बच्चों की देख-भाल सुगमता से हो सके। इन विद्वानों की परिभाषा पर गौर से विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि ये मानव शिशु के दीर्घ शैशवकाल से सुपरिचित है। दीर्घ शैशवावस्था के कारण ही वे परिवार के स्थायी (enduring) होने पर बल देते हैं।

परिवार के भिन्न-भिन्न रूपों को दो कोटियों में बांटा जा सकता है पहला वह परिवार जिसमें स्त्री पुरुष और उनके बच्चे सम्मिलित हैं। यह परिवार का चिरस्थायी रूप है। समाज शास्त्रीय ग्रन्थों में इसके लिये अनेक नाम प्रयोग में लाए गये हैं जैसे Family of procreation, Nuclear Family, Natural Family, Individual Family, Modern Family आदि। दूसरी कोटि के अन्तर्गत उन सभी प्रकारों का समावेश हो सकता है जो विस्तृत परिवार कहे जा सकते हैं। इसमें बहुपति, बहुपत्नी और संयुक्त परिवारों को सम्मिलित किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा प्रयोजन यहां हिन्दू परिवार की व्याख्या करना है। इसीलिये हिन्दू परिवार की ही सविस्तृत विवेचना की जायगी।

हिन्दुओं के सामाजिक संगठन को समझने के लिये जिस प्रकार वर्ण-व्यवस्था जाति व्यवस्था और धर्म की अवधारणाओं को समझना आवश्यक है उसी प्रकार हिन्दू परिवार प्रणाली का सम्यक ज्ञान भी हिन्दुओं की सामाजिक संरचना को समझने के लिये उपयोगी होगा। के० एम० पणिक्कर ने अपनी पुस्तक "हिन्दू सोसायटी ऐट क्रास रोड्स" में वर्ण व्यवस्था के साथ ही हिन्दू परिवार (संयुक्त परिवार) को हिन्दू समाज की आधारभूत संस्था माना है। हिन्दुओं के पारिवारिक संगठन ने भी यहाँ के निवासियों के जीवन को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है। संयुक्त परिवार प्रणाली काफी पुरातन है। वैदिक काल में भी यह परिवार व्यवस्था थी। कई मंत्र यह सिद्ध करते हैं कि वैदिक युग में पिता अपने पुत्र और पौत्रों के साथ रहता था और पुत्र वधू भी अपने पति के पिता (श्वसुर) के साथ रहती थी। "इहैव स्तं मा वियोष्टं विश्वमायुर्वयश्नुतम। क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिमोदमानौ स्वे गृहे" (ऋ १०।८५।४२) आदि श्रुत वाक्यों से उपरोक्त तथ्य की ओर ही संकेत मिलता है।

"तुम यहीं इस घर में रहो, वियुक्त मत होओ। अपने घर में पुत्रों और पौत्रों के साथ खेलते हुए और आनन्द मनाते हुए सारी आयु का उपभोग करो।" यह मंत्र प्रत्येक विवाह में पढ़ा जाता है। इस मंत्र से यह विचार पुष्ट होता है कि वैदिक काल में भी संयुक्त परिवार व्यवस्था का प्रचलन था। इसके अतिरिक्त भी एक अन्य मंत्र है जिसे पुरोहित विवाह में उच्चारित करता है जो इस प्रकार है—सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधिदेवृषु (त्रम० ८५.४६)। इस मंत्र का अर्थ है कि "तू सास, ससुर, ननद और देवर पर शासन करने वाली रानी बन।" यह मंत्र भी इस बात की ओर संकेत करता है कि वैदिक युग में संयुक्त परिवार व्यवस्था थी।

हिन्दू परिवार का अर्थ

हिन्दू परिवार की परिभाषा करने में विद्वानों ने इसकी संयुक्त प्रकृति पर विशेष ध्यान रखा है। कुछ लोग सामान्य निवास, सामान्य पाकशाला और सदस्यों की संख्या को हिन्दू परिवार का आधार मान कर इसे परिभाषित करते हैं। आई० पी० देसाई ने पीढ़ियों की संख्या और सम्पत्ति, आय, पारस्परिक सहयोग के आधार पर ही किसी परिवार को संयुक्त रूप में मान्यता दी है। श्री आई० पी० देसाई के मत से ऐसा परिवार संयुक्त नहीं होगा जिसमें दो भाई एक साथ रहते हैं और भोजन तथा सम्पत्ति की दृष्टि से भी संयुक्त हैं। मेरे विचार से वे सभी परिवार सम्मिलित होंगे जिनमें कई दम्पत्ति रहते हैं और वे एक रसोई में भोजन करते हैं, जिनकी सामान्य सम्पत्ति है, रहने का स्थान सामान्य है, जो धर्म-कर्म की दृष्टि से समान हैं और रक्त सम्बन्ध से बँधे हैं। 'Kinship Organisation in India' नामक पुस्तक में श्रीमती इरावती कर्वे ने संयुक्त परिवार की परिभाषा इस प्रकार की है—"संयुक्त परिवार ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों का समूह है जो प्रायः एक ही घर में रहते हैं, जो एक पाकशाला का बना भोजन खाते जिनकी सम्मिलित सम्पत्ति होती है और जो सामान्य पूजा पद्धति में भाग लेते हैं और जो रक्त सम्बन्ध द्वारा एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं।"[3]

आई० पी० देसाई की राय में "संयुक्त परिवार वह परिवार है जिसमें मूल परिवार की अपेक्षा अधिक (तीन या अधिक) पीढ़ियों के सदस्य हों और ये सदस्य सम्पत्ति, आय और पारस्परिक अधिकारों और दायित्वों द्वारा परस्पर आबद्ध होते हैं।[4]

आई० पी० देसाई की परिभाषा की अपेक्षा इरावती कर्वे की परिभाषा अधिक व्यापक है। जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है देसाई की परिभाषा के अनुसार दो भाई अगर अपनी पत्नियों सहित एक ही घर में रहते हैं, एक ही जगह बना भोजन करते हैं और सामान्य सम्पत्ति के भागीदार होते हैं तो वे संयुक्त परिवार का निर्माण नहीं करेंगे क्योंकि वे एक ही पीढ़ी का निरूपण करते हैं। लेकिन इरावती कर्वे ने पीढ़ियों का कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया है अतः उनकी परिभाषा के अनुसार परिवार के उक्त उदाहरण का समावेश भी संयुक्त परिवार में हो जाता है।

हिन्दू परिवार का संयुक्त परिवार नाम क्यों ?

शास्त्रों में हिन्दू परिवार अथवा संयुक्त परिवार के लिये "कुल" शब्द का प्रयोग किया गया है। एक कुल के लोग रक्त सम्बन्धों द्वारा परस्पर सम्बन्धित रहते थे। उनकी एक ही रसोई, एक ही घर, एक कुल देवता तथा सामान्य सम्पत्ति होती थी। पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय परिवार प्रणाली की "संयुक्त परिवार" की संज्ञा दी है क्योंकि पश्चिमी जगत में आधुनिक औद्योगीकरण के फलस्वरूप एकाकी परिवार का अविर्भाव, आश्यकता के अनुरोध से हो चुका है। परन्तु हमारे परिवार के लिये यह नाम बहुत अधिक उपयुक्त (ठीक) नहीं है क्योंकि भारतवर्ष में तो परिवार को यही एक प्रणाली आदिकाल से चली आ रही है इसलिये परिवार या कुल के पहले संयुक्त (ज्वाइंट) विशेषण लगाने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है। संयुक्त परिवार प्रणाली तो उन सभी भागों में पाई जाती है जहां जीविका का मुख्य साधन कृषि है।

संयुक्त परिवार में संपत्ति का स्वामित्व उत्पादन और उपभोग सम्मिलित रूप से होता है। परिवार का प्रमुख ही सम्पत्ति का नियंत्रक होता है। परिवार के सभी सदस्य अपनी आय परिवार के उस ट्रस्टी के पास जमा करते हैं। वह सभी व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रबन्ध इसी सम्मिलित परिवार कोष (Common Family Fund) से करता है। इन सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति में इस बात का भेद भाव नहीं रखा जाता है कि किसने अधिक कमाया है, किसने कम और किसने बिल्कुल नहीं। इस Common Fund से परिवार के उस सदस्य की भी समस्त आवश्यकताओं की तुष्टि होती है जिसने Common Fund में किंचित भी योगदान नहीं किया है। इस सम्पत्ति का उपयोग, प्रत्येक सदस्य की आवश्यकतानुसार (to each according to his needs) होता है न कि 'to each according to his

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

eeds' के आधार पर अर्थात सम्पत्ति में योगदान के परिमाण के आधार पर। इस अर्थ में संयुक्त परिवार समाजवाद के सिद्धान्त का पोषक है क्योंकि 'to each according his needs' समाजवाद का प्रमुख सिद्धान्त है। अतः **संयुक्त परिवार में व्यक्ति योग्यतानुसार कमाता है और आवश्यकतानुसार प्राप्त करता है।**

हिन्दू परिवार के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध

परिवार की रचना में मूल स्थान पति और पत्नी का है और इनके सम्बन्धों पर ही परिवार की सफलता निर्भर है। हिन्दू परिवार में पति का स्थान शीर्षस्थ है। पति पत्नी का स्वामी है, भर्ता नहीं। पति के लिये स्वामी और भर्ता आदि सम्बोधन पत्नी के ऊपर पति की प्रभुता के सूचक है। स्त्री रक्षणीय हैं। पति उसका रक्षक है। इसीलिये तो उसे पति नाम दिया गया है। पति का अर्थ है वह जो किसी की रक्षा करे। पति-पत्नी की रक्षा करता है इसलिये पति का पत्नी पर अधिकार है और इस अधिकार की चर्चा हिन्दू समाज व्यवस्था में प्रायः की जाती हैं। स्त्री को अबला कहा गया है जो उसके निर्बल होने की ओर संकेत है। पुरुष प्रायः नारी से शारीरिक दृष्टि से अधिक शक्तिशाली होता है। स्त्री में समर्पण की भावना प्रबल होती है। इसी समर्पण के कारण पत्नी पर पति का प्रभुत्व रहता है। प्राचीन काल में स्त्री के लिये जीविका के द्वार वर्तमान युग की भांति नहीं खुले थे। इसलिये वह आर्थिक दृष्टि से पराधीन थी। यह भी पति के भर्ता बनने का एक कारण है। स्त्री का यही धर्म, शास्त्रों में वर्णित है कि मनसा वाचा और कर्मणा पति की अनन्य भक्ति करे, पति परायण बने। हर प्रकार से पति की सेवा करे। स्वप्न में भी पर पति को न देखे। ऐसी पत्नी को जो स्वप्न में भी पर पति का दर्शन नहीं करती उत्तम सती सात्त्वी कहा गया है। पत्नी की इस भक्ति का पुरुषों ने गलत अर्थ में इस्तेमाल किया, यहां तक कि महाभारत काल में उसे जुए पर लगा दिये जाने का भी दृष्टांत मिलता है। महाभारत में ऐसे अनेक स्थल आये हैं जहां पति द्वारा पत्नी के दान किये जाने का उल्लेख भी है।

पत्नी गृहस्थ का मूल है। उसे 'गृहिणी' और 'गृहस्वामिनी' नाम इसीलिये दिया जाता है। नीति मञ्जरी में गृह की परिभाषा में यह बताया गया है कि काष्ट पाषाण का बना हुआ घर गृह नहीं है बल्कि जहां घर वाली है वही घर है (न गृहं काष्टपाषाणैः दपिता यत्र तद् गृहम्)। महाभारत में भी "न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणीमृहमुच्यते। गृहं तु गृहिणी हीनं अरण्य सहशं मतमां" कहकर गृह की परिभाषा घर वाली के रूप में ही दी गई है।

वैदिक युग में पत्नी का स्थान बहुत ऊँचा था। उसे सहधर्मिणी कहा गया। पत्नी की आवश्यकता व्यक्तिगत सुख और सामाजिक दृष्टि से उतनी नहीं थी जितनी धार्मिक साथी पाने की दृष्टि से। यज्ञ आदि कर्म में पत्नी का उपस्थित होना आवश्यक समझा जाता था। शतपथ ब्राह्मण में पत्नी विहीन पुरुष को अयज्ञिय कहा गया है (अयज्ञियों वा एक योऽपत्नीक)। श्री रामचन्द्र जी को अपना अश्वमेध यज्ञ पूरा करने के लिये सीता जी की सोने की प्रतिमा बनानी पड़ी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नी के कर्तव्यों में पातिव्रत्य और पति सेवा को ही धर्म शास्त्रों में प्रमुख स्थान दिया गया है। तुलसी कृत रामायण में भी स्त्रियों के लिये पतिव्रत्य धर्म की ही प्रशंसा की गयी है। हिन्दू परिवार में सम्भवत: पति सेवा का सर्वश्रेष्ठ आदर्श सीता ने रखा है। उन्होंने पति की सेवा के लिये (श्वसुर की आज्ञा न होने पर भी) जंगल जाना स्वीकार किया और पति पत्नी के सम्बन्ध की महानता को जीव और देह तथा वारि (जल) और नदी के रूपक द्वारा समझाया। पति के अभाव में पत्नी की वही दशा होगी जैसी जीव के अभाव में शरीर की और पानी के अभाव में नदी की। सती सावित्री सत्यवान के साथ यमलोक तक गयी इसे कौन नहीं जानता। पुराणों में ऐसी भी कथा आती है जिसमें कौशिक ब्राह्मण की पतिव्रता स्त्री अपने कोढ़ी और गंदे पति को उसकी कामना की पूर्ति के लिये अपने कन्धे पर बिठा कर ले जाती है और दूसरे दिन अपने पतिव्रत्य के प्रभाव से सूर्योदय को रोक देती है। ऐसी कथाओं का अभिप्राय पतिव्रत्य का गौरव गान करना ही है। मनु ने मन वचन और काया से पर पुरुष के साथ व्यभिचार न करने वाली स्त्री को पति के साथ स्वर्ग में निवास करने वाली साध्वी स्त्री बताया है और परपुरुष के साथ व्यभिचार से स्त्री की निन्दा, पाप, रोगों से पीड़ित होने तथा सियार की योनि पाने का उल्लेख किया है। धार्मिक ग्रन्थों में सती साध्वी नारियों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। यह सतीत्व का आदर्श एकांगी है क्योंकि यह बन्धन पुरुषों पर लागू नहीं किया गया यद्यपि मनु इसके बारे में सचेष्ट मालूम पड़ते हैं। विवाह सूत्र में बंधने के बाद पति पत्नी का यह कर्तव्य है कि वे जीवन पर्यन्त एक दूसरे के प्रति आस्थावान बने रहें।

पत्नी का एक नाम भार्या भी है क्योंकि पति उसका भरण पोषण करता है। भृत्यभरण भी हिन्दू परिवार का एक आदर्श है। इस आदर्श को पूरा करने वाला परिवार का प्रमुख अथवा कर्ता होता है। परिवार का प्रमुख अथवा कर्ता पति ही कहलाता है। महाभारत में कुछ सामान्य धर्म बताये गये हैं जिसमें अपने ऊपर निर्भर जनों का पालन पोषण भी एक है [अक्रोधः सत्य बचनं संविभागः क्षमा तथा प्रजनः स्वेपु दोरेषु शौचभदोह एव च। आर्जवं भृत्यकरणं नवैते सार्ववर्णिकाः]।

नारी का वर्तमान रूप अर्धवांगिनी का है। अर्धवांगिनी का अर्थ है आधा अंग। वह पुरुष का आधा अंग है। इसीलिये मनु पुरुष को अपूर्ण मानते हैं। वे उसी पुरुष को पूर्ण मानते हैं जिसके पत्नी और बच्चे हों। स्त्री का अर्धवांगिनी होना उसके समान अधिकार का द्योतक जान पड़ता है। वैदिक युग में भी स्त्री और पुरुष के समान अधिकारों की पुष्टि अर्धवांगिनी कह कर की गयी है। अत: स्त्री पुरुष के समानता के बीज का रोपण वैदिक युग में ही हो गया था। लेकिन इस बीज के अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित होने का अवसर फ्रांसिसी क्रांति के बाद तब मिला जब Liberty, equality and Fraternity के विचार हिन्दू समाज के सामने आये। आज के परिवार में पति पत्नी का समान दर्जा है। प्रभुता का स्थान अब समानता ने ले लिया है।

पुत्र

स्त्री और पुरुष परिणय सूत्र में इसीलिये आबद्ध होते हैं क्योंकि इसके मूल में संतान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्ति करने की भावना ही प्रधान है। हिन्दू समाज में इसीलिये स्त्री को जननी कहा गया है। वह अपने पति की पत्नी ही नहीं है बल्कि वह अपने बच्चों की मां भी है। हिन्दू विवाह के तीन उद्देश्य माने गये हैं—धर्म, प्रजा और रति। इसका हम पहले ही संकेत कर चुके हैं कि हिन्दू परिवार का एक प्रमुख आदर्श वंश परम्परा को अक्षुण्य बनाये रखना है। पुत्र का प्रधान कर्तव्य माता-पिता की सेवा करना, भरण-पोषण करना और उनकी आज्ञाओं का पालन करना है। माता पिता की सेवा करने वाले श्रवण कुमार का नाम भारत की अशिक्षित जनता की भी जिह्वा पर है। पिता की आज्ञा मान कर वन जाने वाले राम को कौन नहीं जानता है। अनुव्रत: पुत्र: पुत्री माता भवतु संमना: (अथर्व ३.३०.२)—पुत्र के लिये माता पिता की आज्ञा पालन का यह आदर्श वैदिक युग से प्रतिष्ठित है। नचिकेता से जब नचिकेता के पिता नाराज़ होकर यह कह देते हैं कि तुझे मृत्यु की आज्ञा देता हूँ तब वह कहता है कि उत्तम पुत्र वह है जो पिता के मुख से वचन निकलने के पहले पिता के सोचे हुए काम को करता है। पिता के कहने पर कार्य करने वाला मध्यम पुत्र है और पिता के वचन का अनिच्छा से पूरा करने वाला अधम है। नचिकेता अपने को उत्तम कोटि वाला पुत्र मान कर यमपुरी चला जाता है। भगवत में एक चौथे प्रकार के पुत्र का उल्लेख मिलता है जो अपने पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता हैं। ऐसे पुत्र को पिता की विष्ठा मात्र (भाग ९.१८.४४) कहा गया है।

हिन्दू समाज में पुत्र द्वारा पिता और माता की आज्ञा मानने का कारण उनका जन्मदाता और पालक होना है। माता पिता के इस उपकार के वशीभूत होकर ही वह उनकी कठोर से कठोर आज्ञा मानने के लिये विवश है। दूसरे माता पिता की आयु अधिक होती है जिससे वे पुत्र के मुकाबले में अधिक अनुभवी होते हैं। पिता और माता को आचार्य के साथ देव माना गया है। (पित्र देवो भव। मातृ देवी भव। आचार्य देवो भव)। बचपन में माता पिता का प्रभुत्व पुत्र पर रहता है और उस समय वह पिता की सभी आज्ञाओं का पालन करता है। आज्ञा न मानने पर उसे दंड दिया जाता है और आज्ञा पालन पर पुरस्कार। बचपन में बच्चा सामाजिक दृष्टि से रिक्त (socially blank) और पर्याप्त लोचदार (elastic) होता है। उस समय उसे वांछित दिशा में मोड़ा जा सकता है। इसीलिये उसे बचपन में ही आज्ञा पालन का आदर्श समाजीकरण द्वारा अन्तरीकृत करा दिया जाता है और जिसे बाद के जीवन में वह अपने जीवन में चरितार्थ करता रहता है क्योंकि बचपन की छाप अमिट होती है। इसके अलावा बचपन में पुत्र आर्थिक दृष्टि से पिता पर निर्भर रहता है क्योंकि पशु के मुकाबले मानव शिशु का शैशवकाल बहुत लम्बा होता है। पितृ मूलक परिवार व्यवस्था होने के कारण घर का प्रमुख पिता ही होता है और गृह प्रमुख की आज्ञाओं का पालन सभी सदस्यों के साथ पुत्र को भी करना पड़ता है। हिन्दू परिवार में ज्येष्ठ पुत्र का विशिष्ट स्थान है। ज्येष्ठ पुत्र की उत्पत्ति के उपरान्त पिता पितृ ऋण से उऋण हो जाता है इसीलिये उसे धर्मज कहा जाता है। अन्य पुत्र मनु के अनुसार 'कामज' कहलाते हैं। चूंकि बड़ा पुत्र ही धर्मज होता है इसलिये धार्मिक कृत्यों की पूर्ति का प्रथम अधिकार उसे ही प्राप्त है। हिन्दू परिवार में उत्तराधिकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा महत्ता का प्रदर्शन 'पिण्डदान' से माना जाता है। पिण्डदान और श्राद्ध का प्रथम अधिकार ज्येष्ठ पुत्र को ही प्राप्त है। ज्येष्ठ पुत्र परिवार को समुन्नत बना सकता है अथवा नष्ट कर सकता है क्योंकि वह आदर का पात्र होता है और धर्म का पालन करने वाले उसे असम्मान की दृष्टि से नहीं देख सकते हैं (मनु० ९.१०९)। जब तक ज्येष्टपुत्र वैसे ही व्यवहार करता है जैसे बड़े भाई को व्यवहार करना चाहिये छोटे भाइयों को चाहिये कि वे उसकी माता पिता के समान इज्जत करें और वह यदि जैसा व्यवहार करना चाहिये वैसा व्यवहार नहीं करता है तो वन्धुवत उसका सम्मान करना चाहिये। हिन्दू शास्त्रों ने ज्येष्ठ पुत्र को जो अधिकार दिये हैं उनकी पृष्ठभूमि में उसकी शारीरिक और मानसिक प्रौढ़ता है। अधिकार रूपी फलों की प्राप्ति कर्तव्य रूपी वृक्ष से ही हो सकती है। जहां ज्येष्ठ पुत्र के अधिकार अधिक है वहीं उसके कर्तव्य भी गुरुतर हैं। यदि वह अपने भाइयों के प्रति कर्तव्यों से च्युत हो जाता है तो उसका केवल प्रभुत्व ही समाप्त नहीं हो जाता बल्कि पारिवारिक सम्पत्ति के अपने भाग से भी वह वंचित हो जाता है।

पुत्री (कन्या)

हिन्दू परिवार में पुत्र धन (asset) है और कन्या भार (liability) होती है। पुत्र अपने माता पिता के वंश की वृद्धि करता है जबकि कन्या दूसरे परिवार की सदस्या बनने के लिये बाध्य है। कन्या का पालन पोषण बहुत कुछ "पड़ोसी के वृक्ष के सींचने के समान है।" पड़ोसी के वृक्ष को सींचने से सींचने वाले को लाभ नहीं होता उसे सींचने में वह चाहे जितना भी कष्ट उठाये और परिश्रम करे। क्योंकि वृक्ष के फल पड़ोसी के होंगे न कि सींचने वाले के। हिन्दू परिवार में कन्या उत्पन्न होने की कामना न करने का यही कारण है। कन्या प्राप्ति की कामना उन परिवारों में की जाती है जहां पुत्र अधिक संख्या में होते हैं। इसके विपरीत वे परिवार दुखी रहते हैं जहां पुत्रियां अधिक हैं और पुत्र बिल्कुल नहीं हैं। जहां तक स्नेह और प्रेम की बात है हिन्दू परिवारों में पुत्र और पुत्री में कोई भेद नहीं पाया जाता। जब कन्यायें बड़ी हो जाती हैं तो वे अपनी माता के अधिक निकट हो जाती हैं और गृहस्थी के कार्यों में अपने को लगाती हैं। पुत्री के बड़े हो जाने पर गम्भीर मामलों में पिता का उस पर प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं रहता। पुत्री की माँ के माध्यम से ही वह उसे नियंत्रित करता है। हिन्दू परिवार में जब पुत्र और पुत्रियां वयस्क हो जाते हैं तो पुत्र पिता के अधिक निकट हो जाते हैं और पुत्रियां माता के अधिक निकट।

वैदिक काल से लेकर वर्तमान समय तक पुत्री का जन्म चिन्ता और दुख का विषय रहा है। मध्य युग में तो कन्याओं के वध की कुप्रथा भी प्रचलित हो गयी थी। इस कुप्रथा के प्रचलन का मुख्य कारण दहेज था। दहेज प्रथा के अन्त न होने तक कन्याओं का जन्म चिन्ता और विषाद का विषय बना रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुस्मृति में पुत्र और पुत्री को समान माना गया है। पुत्र पिता की आत्मा है। पुत्री भी पुत्र के समान पिता की आत्मा है। किसी व्यक्ति के पुत्रहीन मरने पर आत्मा रूपी कन्या के होते हुए उसकी सम्पत्ति में दूसरा व्यक्ति कैसे हिस्सा ले सकता है।

भाई बहन

सामाजिक आदर्शों के अनुसार भाई बहन में (विशेष रूप से भाइयों में) एकता (solidarity) होनी चाहिये और उन्हें परस्पर प्रेम और सहयोग करना चाहिये। बड़े भाई और बहन (विशेष रूप से बहनें) अपने छोटों की देख भाल में अपनी माता के उत्तरदायित्व में हाथ बंटायें। व्यवहार में ६ या ७ वर्ष की आयु तक भाई-बहन साथ-साथ खेलते हैं और बाद में बहनें घर के काम काज में लग जाती हैं और भाई क्रीड़ा समूहों (play groups) में विशेष रुचि लेने लगते हैं। अतः प्रारम्भिक जीवन में भाई बहन के सम्बन्ध घनिष्ठ होते हैं और बाद में उनका विकास अपनी-अपनी दिशा में होता है।

बड़े भाई बहनों का नियंत्रण छोटे भाई बहनों पर रहता है। माता और पिता की अनुपस्थिति में बड़े भाई बहन छोटों के व्यवहार पर निगाह रखते हैं। बड़े भाई अथवा बहन अपने से छोटों को कभी-कभी डांट-फटकार भी सकते हैं लेकिन वे ऐसा बहुत ही कम करते हैं। जब छोटा भाई किसी चीज़ के लिये चिल्लाना शुरू करता है तो बड़े भाई या बड़ी बहन से यह अपेक्षा की जाती है कि उसे सन्तुष्ट करने के लिये उन्हें अपना भाग त्याग देना चाहिये। जब भाइयों में झगड़ा होता है तो बड़े को ही सामान्यतः डांटा जाता है। छोटे भाई को बड़े भाई की आज्ञा माननी चाहिये। पिता के न रहने पर बड़ा भाई छोटे भाइयों के प्रति पुत्रवत व्यवहार करे और छोटे भाई बड़े भाई को पिता तुल्य मानें ऐसी मनु की आज्ञा है। बहन भाई का प्रेम एवं संरक्षण वैदिक युग से पाती रही है। भाई अपने भाग का चतुर्थांश अपनी बहन के विवाह संस्कारार्थ दे। जो भाई अपने भाग का चतुर्थांश बहन के विवाह निमित्त नहीं देते हैं वे पतित हैं। हिन्दू परिवार में भाई बहिनों का प्रेम राखी और भ्रातृ द्वितीया नामक त्यौहारों द्वारा प्रतिवर्ष पुष्ट होता है।

अन्य सम्बन्धी

संयुक्त परिवार के अन्य सम्बन्धियों में वधू, सास, ननद और देवर आदि मुख्य हैं। हिन्दू परिवार में सास और बहू के बीच अधिपत्य और अधीनता का सम्बन्ध है। सास आदेश और आज्ञाएं देती है और बहू के लिये वे शिरोधार्य हैं। बहू के लिये सास हर प्रकार पूज्य है, वंदनीय है क्योंकि वह उसके पति की जननी है। लौकिक जीवन में सास की सेवा और परिचर्या करने वाली तथा उसे प्रसन्न करने वाली बहू ही प्रशंसा की पात्र मानी जाती है। बहू अपनी सास से मां का स्नेह पाने की अधिकारिणी हैं। सास की प्रशंसा तभी होती है जब वह अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बधू को अपनी पुत्री के तुल्य माने, उसके दु:ख दर्द को समझे, उसे सताये नहीं। जब तक सास और बहू उपरोक्त मान्यताओं का उल्लंघन नहीं करतीं उनमें परस्पर मधुर सम्बन्ध बने रहते हैं। प्राय: सांसारिक जीवन में बहू से झगड़े भी होते हैं। इन झगड़ों का प्रबल और मुख्य कारण है सास द्वारा अपने वधू काल के अत्याचारों का बदला अपनी बहू से चुकाना। इसी प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर सास अपनी बहू के साथ अन्यायपूर्ण और निन्दनीय व्यवहार करती है। सास के क्रूर और निर्दय व्यवहार से छुटकारा पाने के लिये बहुएँ सास से संघर्ष करती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि सास और बहू के बीच तनावपूर्ण सम्बन्धों का विकास होता जाता है। महाभारत काल तक सास और बहुओं के संघर्ष का उल्लेख नहीं मिलता है। यहां तक बहुएं सास का असीम प्रेम पाती रही हैं। बौद्ध साहित्य में बहुओं और सासों के पारस्परिक कलह और संघर्ष की चर्चा मिलती है। वर्तमान समय में सास और बहुओं के बीच विद्यमान संघर्ष से सभी परिचित हैं। सास का बहुओं के साथ अत्याचारपूर्ण व्यवहार संयुक्त परिवार के विघटन का एक प्रधान कारण है।

ननद और भाभी

ऋग्वेद में एक बार ननद शब्द का उल्लेख मिलता है और वहां पर बधू को ननद पर शासन करने वाली (ननान्दरि साम्राज्ञी भव) बताया गया है। यह स्थिति सम्भवत: बहुत थोड़े ही काल तक रही और बहू ननद द्वारा शासित होने लगी। संस्कृत में ननद के लिये 'ननन्द' शब्द व्यवहृत हुआ है जिसका अर्थ है 'सेवा करने पर भी प्रसन्न न होने वाली।' इसका यह प्रयोजन नहीं है कि समस्त ननदें ऐसी ही होती हैं। लेकिन अधिकांश तो ऐसी होती ही है जिनका व्यवहार बहू से कलह कराने वाला होता है। लोक गीतों का भी समाजशास्त्री-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। लोक गीतों में बहू के प्रति ननद का व्यवहार अत्याचारपूर्ण चित्रित किया गया है।

देवर और भाभी

देवर और भाभी का परस्पर सम्बन्ध पुत्र और माता जैसा रहा है। हिन्दू पारिवारिक संगठन में देवर भाभी के लिये पुत्र के समान है और भाभी उसके लिये माता के समान है। देवर भाभी के उपरोक्त आदर्श सम्बन्ध का वर्णन रामायण में सीता और लक्ष्मण के उदाहरण से मिलता है। जिस समय सुग्रीव सीता जी द्वारा मार्ग में फेंके हुए गहनों को लाकर पहचानने के लिये राम और लक्ष्मण के सम्मुख रखता है, उस समय लक्ष्मण कहते हैं कि मैं सीता के कुण्डल नहीं पहचानता। हां, उनके नूपुरों को प्रतिदिन उनके चरण स्पर्श करने के कारण अवश्य पहचानता हूँ। इस दृष्टांत से सिद्ध होता है कि देवर और भाभी का सम्बन्ध पवित्र प्रेम से ओत प्रोत था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयुक्त परिवार का परिवर्तित रूप

वर्तमान समय में हिन्दू परिवार का प्राचीन रूप देखने को नहीं मिलता वह अब बदल गया है। प्राचीन हिन्दू परिवार में व्यक्तिगत स्वतंत्रता व्यक्तिगत प्रयत्न और विवेक के लिये कोई स्थान नहीं था। पारिवारिक स्वार्थों से भिन्न व्यक्तिगत स्वार्थ की बात कोई सोच ही नहीं सकता था। आधिपत्य और अधीनता के सम्बन्धों ने व्यक्ति के व्यक्तित्व को परिवार में इतना घुला मिला दिया था कि परिवार से पृथक उसका कोई व्यक्तित्व नहीं रह गया था। परिवार के सदस्य के रूप में उसकी सत्ता थी, परिवार से पृथक उसका कोई आस्तित्व ही नहीं था। इसके अलावा पारिवारिक सम्पत्ति के किसी अंश की तरफ़ व्यक्ति को उंगली उठाने का भी अधिकार नहीं था। परिवार के सभी सदस्य अपनी सारी आय सामान्य पारिवारिक कोष में जमा करते थे। इस परिवार का ट्रस्टी घर का मुखिया होता था। परिवार की सभी आवश्यकताओं को घर का प्रमुख इसी कोष से पूरा करता था। सभी सदस्य एक ही घर में रहते थे, एक ही रसोई का बना भोजन खाते थे। पारिवारिक पूजा और उत्सवों में सभी सदस्य भाग लेते थे। वर्तमान समय में संयुक्त परिवार के उपरोक्त लक्षणों का लोप हो रहा है जिससे संयुक्त परिवार विघटित हो रहा है, टूट रहा है।

अंग्रेजों के आगमन के पूर्व संयुक्त परिवार का प्राचीन रूप कमोवेश सुरक्षित था। भारत वर्ष में अंग्रेजों के आने के बाद संयुक्त परिवार में परिवर्तन आना शुरू हो गया है। अंग्रेज अपने साथ नये विचार, नयी आर्थिक व्यवस्था और नवीन प्रशासनिक व्यवस्था लेकर आये जिसके परिणाम स्वरूप संयुक्त परिवार को भी धक्का पहुंचा, ठेस लगी। पूंजीवाद और उदारवाद ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता और व्यक्तिगत प्रयत्न पर बल दिया। उदारवाद ने जन्म पर आश्रित विशेषाधिकारों और निर्योग्यताओं पर प्रहार किया। सत्ता के विरुद्ध व्यक्ति को आवाज़ उठाने के लिये प्रेरित किया। इसके अलावा उदारवाद उन्हीं परम्पराओं और प्रथाओं को स्वीकार करता है जो तर्क या विवेक की कसौटी पर खरी उतरें। संक्षेप में उदारवाद ने व्यक्ति को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक कर इन अधिकारों की प्राप्ति के लिये प्रेरित किया।

भारतवर्ष में बढ़ते हुए औद्योगीकरण का प्रभाव संयुक्त परिवार के लिये घातक सिद्ध हुआ। औद्योगीकरण के कारण शहरों का जन्म हुआ, परिवार से सम्बन्धित छोटे-छोटे उद्योग धन्धे नष्ट हो गये, गांव की जनसंख्या शहर की तरफ़ गतिशील हुई। इन सभी बातों का परिणाम यह हुआ कि परिवार जो पहले उत्पादन और उपभोग की इकाई था अब केवल उपभोग की इकाई रह गया। पहले वे परिवार जिनका खर्च कृषि से पूरा नहीं पड़ता था कुटीर उद्योग धन्धों के माध्यम से अपनी आय बढ़ा लेते थे और इस प्रकार परिवार की आवश्यकताओं को पूरा कर लेते थे। कुटीर उद्योग धन्धों के नष्ट हो जाने से अब परिवार की आय की कमी को पूरा करने के लिये उन्हें दूसरा विकल्प ढूँढ़ने के लिये विवश हो जाना पड़ा। बिजली और वाष्प से चालित मशीनों के बने माल का मुकाबला न कर सकने के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे-छोटे गृह उद्योग धन्धों का विनाश हुआ। गृह उद्योग धन्धों के नष्ट होने से अब परिवार के सदस्यों को कल कारखानों में नौकरी करने के लिये मजबूर हो जाना पड़ा और नौकरी की तलाश में शहरों में आकर बसना पड़ा।

हिन्दू परिवार के कुछ सदस्यों के शहरों में बस जाने से उनका एक साथ रहना, भोजन करना आदि मुश्किल हो गया और संयुक्त परिवार विघटित होने लगा।

औद्योगीकरण के अलावा स्त्री शिक्षा संयुक्त परिवार को रुपान्तरित और विघटित करने का दूसरा प्रबल कारण है। संयुक्त परिवार में स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। उनके लिये इसके अलावा कोई विकल्प नहीं था कि वे संयुक्त परिवार के तूफानी समुद्र में जितनी शांति से रह पायें रहें। हिन्दू समाज में सम्पूर्ण नारी वर्ग को जीवन की साधारण स्वतंत्रता, साधारण अधिकारों एवं साधारण शिक्षा से वंचित रखा गया। पुरुष वर्ग ने अबला नारी को वर्जनाओं और निषेधों से बांध दिया। प्राचीन परिवारों की पत्नी एक ऐसे जीव की भांति थी जो न दिल खोल कर हंस सकती थी और न अपने पैरों पर खड़ी हो सकती थी। स्त्री शिक्षा ने महिलाओं को उनकी अधिकार विहीन स्थिति का ज्ञान कराया। शिक्षा की बदौलत आज स्त्रियां सर्वाधिकार सम्पन्न हैं। उनमें अपने पैरों खड़े होने की सामर्थ्य है। अब वे भोजन और वस्त्र के लिये दूसरों का मुंह ताकने के लिये विवश नहीं है। आज उनकी कूप मंडूकता समाप्त हो गयी है। वे उचित और अनुचित, उपयोगी और अनुपयोगी नियमों को समझने लगी हैं और अपने अधिकारों के प्रति सजग हैं। उपरोक्त परिस्थितियां संयुक्त परिवार के लिये अनुकूल नहीं हैं।

शिक्षित नारी वर्ग ने अपनी सुरक्षा के लिये कानूनी संरक्षण भी प्राप्त कर लिया है। परम्परागत हिन्दू परिवार में पारिवारिक सम्पत्ति में स्त्रियों का कोई स्थान नहीं था। सन् १९२९ के हिन्दू उत्तराधिकार (सँशोधित) अधिनियम में स्त्रियों का जैसे पुत्र की पुत्री कन्या की पुत्री आदि को साम्पत्तिक अधिकार मिले लेकिन विधवा स्त्री के साम्पत्तिक अधिकार के विषय में इस नियम में कोई व्यवस्था नहीं थी। सन् १९३७ के अधिनियम में सन् १९४७ में हिन्दू स्त्रियों को पारिवारिक सम्पत्ति में अधिकार दिलाने हेतु अधिनियम बना जिसमें उन्हें परिवार में साम्पत्तिक अधिकार प्राप्त हुआ। इस अधिनियम के पूर्व मृतक की विधवा का परिवार की सम्पत्ति में कोई हक नहीं था और मृतक का हिस्सा विधवा को न मिलकर (survivorship) के सिद्धान्त द्वारा सहभागी संस्था (comparcenary) के दूसरे सदस्यों को प्राप्त हो जाता था। इस कानून के पारित हो जाने से अब मृतक व्यक्ति का स्वामित्व उसकी विधवा के रूप में जीवित रहता है और विधवा अपने मृतक पति के हिस्से की अधिकारिणी मानी जाने लगी है। अब वह परिवार के अन्य सदस्यों की भांति पारिवारिक सम्पत्ति के बंटवारे की मांग कर सकती है। इस कानून ने संयुक्त परिवार के अति जीवन (survivorship) के सिद्धान्त की दृढ़ता को समाप्त कर दिया। कानून एक कदम और आगे बढ़ जाता है जब वह पत्नी को पति के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करता है। १९४६ के Bombay Hindu Married Women' Right to Separate

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Residence and Maintenance Act ने हिन्दू विवाहित स्त्रियों की कुछ शर्तों के साथ पति से अलग रहने और निर्वाह (भरण पोषण) करने की अनुमति दी। शर्तें निम्नलिखित हैं :—

(१) पति का ऐसे असाध्य यौन रोग से पीड़ित होना जो स्त्री में न लगा हो।
(२) क्रूरता अथवा निर्दयता जिससे स्त्री का पति के साथ रहना असुरक्षित तथा अवांछनीय हो।
(३) स्त्री की इच्छा के विरुद्ध परित्याग।
(४) पति का दूसरा विवाह।
(५) पति द्वारा धर्म परिवर्तन।
(६) पति द्वारा रखैल रखना और प्रायः उसके साथ रहना। और
(७) अन्य उचित कारण।

उपरोक्त उल्लिखित शक्तियों के संघात के फलस्वरूप संयुक्त परिवार विघटित हो रहे हैं।

संदर्भ

1. Desai, I. P. — 'The Joint Family in India,' Sociological Bulletin Vol. V. No. 2
2. Karve, I, — Kinship Organization in India. p. 10
3. Mandelbaum, David G. — "The Family in India"—an essay The Family : its Function and Destiny Ed: Ruth Nanda Anshen, New York, Harper and Brothers, Publishers, p. 167
4. मनु स्मृति — ९/१०१, ९/१३०, ९/१०८, ९/११८
5. Ogburn and Nimkoff — 'A Handbook of Sociology' Eurasia Publishing House (Pvt.) Ltd., Ram Nagar, New Delhi, p. 488
6. Talcott Parsons and Robert — Family Socialisation and Interaction Proces. The Free Press, Glencose, 1955, P. 19
7. वेदालंकार, हरिदत्त — हिन्दू परिवार मीमांसा, सरस्वती सदन, मसूरी (१९६३) पृ० १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाट लोक-कहानी : जाट साहूकार

टी० आर० सिंह

इस लेख में पश्चिमी उत्तर प्रदेश की एक प्रभावशाली कृषक जाति 'जाट' के बारे में प्रचलित लोक-कहानियों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। सहारनपुर और मुजफ्फरनगर जनपदों के गावों से लगभग ७० कहानियां एकत्रित की गईं। इनमें से कुछ कहानियां गांव के पढ़े-लिखे व्यक्तियों द्वारा लिखित रूप में प्राप्त हुयीं। विस्तृत अध्ययन की दृष्टि से इन कहानियों को पांच भागों में विभक्त किया गया। (१) जाट-साहूकार (२) जाट-ब्राह्मण (३) जाट, उसका परिवार, नातेदार, समुदाय (४) जाट-प्रशासन, और (५) जाट की मूर्खता। वर्तमान अध्ययन जाट-साहूकार के परस्पर सम्बन्धों की कहानियों पर आधारित है।

जाट लोक-कहानियां इस प्रकार हैं।

कहानी-१

एक गांव में एक जाट रहता था। उसी गांव में एक सेठ था। दोनों का उठना, बैठना था। एक दिन दोनों बाज़ार गये। बाज़ार में इनको एक कम्बल बहुत पसन्द आया। कम्बल कुछ मंहगा था मगर बहुत गर्म और सुन्दर। दोनों ने उस कम्बल को साझे में खरीद लिया। कम्बल अपने कन्धे पर रखते हुए जाट ने सेठ से कहा, "सेठ जी, दिन में कम्बल मैं रखूंगा और शाम होते ही इसे आप के पास पहुंचा दूंगा"।

कुछ दिन तक इसी तरह से चलता रहा। जाट दिन भर कम्बल लिये गांव में इधर-उधर घूमता और रात में सेठ जी उसे आराम से ओढ़कर सोते। जब सर्दियों के दिन आये तो जाट शाम को सेठ के घर कम्बल देकर बोला, "सेठ जी, अब काफी ठण्ड हो रही है। इस लिए एक रात कम्बल मैं रखूंगा और एक रात आप रखना"। सेठ जी बोले, "कम्बल खरीदने से

टी० आर० सिंह, समाजशास्त्र विभाग, बी० एस० एम० कालेज, रुड़की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले जो तय हुआ था वैसा ही रहेगा। अब कोई फेर-बदल नहीं होगा। जाट चुप-चाप घर चला गया।

उसी रात जाट ने एक तरकीब सोचा। वह दिन भर कम्बल ओढ़ता और रात में सेठ जी को लौटाने से पहले उस पर पानी छिड़क देता। गीली कम्बल सर्दियों में ओढ़े कौन ? जब कई दिन तक गीली कम्बल ही मिलती रही तो सेठ जी ने तंग आकर जाट की बात मान ली।

कहानी-२

एक गांव में एक जाट और एक लाला जी ने मिल कर एक भैंस साझे में खरीद ली। दोनों में समझौता इस प्रकार हुआ। जाट भैंस के अगले हिस्से का मालिक होगा और लाला जी भैंस के पिछले हिस्से के। यह भी तय हुआ कि जाट भैंस के अगले हिस्से की सेवा करेगा और लाला जी भैंस के पिछले हिस्से की देख-भाल करेंगे। भैंस जाट के घर के सामने बंधी रहती और आने-जाने वाले कहते "चौधरी साहब की भैंस कितनी अच्छी है" ? लोगों की प्रशंसा से जाट और उसके परिवार के लोगों को बहुत अच्छा लगता। दिन भर सभी भैंस के घास, चारा-पानी में लगे रहते और लाला जी सुबह-शाम अपना बर्तन लाते और दूध निकाल कर अपने घर ले जाते।

भैंस के दूध में हिस्सा न मिलने से जाट को चिन्ता हुई। वह सोचने लगा कि इसका कुछ उपाय करना चाहिए। शाम को जब लाला जी दूध निकालने आये तो जाट ने भैंस के मुंह पर डंडा मारा। भैंस उछल पड़ी और लाला जी दूध न ले पाये। लाला ने कहा, 'क्या बात है ? आप मुझे दूध क्यों नहीं निकालने देते' ? जाट ने जवाब दिया, 'मैं आपको दूध निकालने से कब मना करता हूं। आप पिछले हिस्से से दूध निकाल लीजिए। मैं भैंस के अगले हिस्से का मालिक हूं। उसमें मैं कुछ भी कर सकता हूं'। लाला जी चुप-चाप घर चले गये। मगर दूसरे दिन से जाट को आधा दूध देने लगे।

कहानी–३

एक जाट था। वह बहुत गरीब था। अपनी पत्नी के ज़ेवर छोड़ कर उसके पास और कुछ नहीं था। उसे पैसे की बहुत जरूरत थी। पत्नी के ज़ेवर लेकर वह साहूकार के घर गया। लाला जी ज़ेवर को बार-बार देख कर बोले, 'इसके तो ज्यादा पैसे नहीं मिल सकते। काम चलाने के लिए मैं तुमको १०० रुपया दे सकता हूं'। जाट को मजबूरी थी। वह पैसे लेकर घर चला गया।

एक दिन लाला जाट के घर गया और जाट से कहा 'मेरे पैसे वापस कर दो और अपनी चीज़ ले जाओ नहीं तो मैं उसे बेंच दूंगा'। कुछ सोच कर जाट बोला 'लाला जी, मैं आपके पैसे दे दूंगा। मुझे सिर्फ तीन दिन का समय दीजिए। तीसरे दिन शाम को आप इधर ही चले आना और पैसे ले जाना। मेरी चीज़ भी साथ में लाना'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगले दिन जाट ने अपनी पत्नी से कहा, 'तुम एक अच्छी मज़बूत ढोलक पड़ोस से मांग लाना। दो-तीन दिन में साहूकार अपने घर आयेगा। उसके घर में आते ही तुम जोर-जोर से ढोलक बजाना। ढोलक इतनी जोर से बजनी चाहिए कि घर में कोई बात कर रहा हो तो बाहर सुनाई न दे।

शाम के समय लाला जी जाट के घर पहुंचे। घर में घुसते ही जाट ने घर का दरवाजा बन्द कर दिया और लाला जी को डंडे से पीटने लगा। उधर ढोलक इतनी ऊंची आवाज में बज रही थी कि लाला जी की चीख-पुकार बाहर कोई नहीं सुन सका। जाट कह रहा था, 'यह है डंडा। यही डंडा मैं तेरे पास से लाया था। यही डंडा तुझे दे रहा हूं। अब तो नहीं मांगेगा ?" लाला जी जान बचा कर भाग खड़े हुए।

कुछ दिन बाद पड़ोस में ढोलक बज रहा था। लाला के लड़के ने लाला से पूछा, 'पिता जी, ढोल क्यों बज रहा है ?' लाला ने बच्चे की बात का जवाब टालना चाहा, लेकिन बच्चा जब बार-बार पूछने लगा, तो उसने धीरे से कहा, 'किसी का कर्ज़ा उतारा जा रहा होगा। कोई किसी का उधार का पैसा लौटा रहा होगा'।

कहानी—४

एक जाट था। वह एक अच्छा किसान था। जमीन-जायदाद, घर-बार, गाय-भैंस सब कुछ था। उसके घर कुछ पुराने ज़ेवर भी थे। ज़ेवर बेच कर कारोबार को आगे बढ़ाने के लिए उसने एक साहूकार को सारे ज़ेवर बेच दिये। मगर साहूकार ने ज़ेवरों का इतना कम दाम दिया कि उसका काम ठीक तरह से न चल सका। कुछ दिन बाद उसने अपना सारा अनाज भी साहूकार को बेंच दिया। फिर भी उसके कारोबार में कोई प्रगति नहीं हुई।

एक दिन जाट ने सोचा, 'साहूकार ने जरूर चालाकी की होगी। इस का बदला लेना चाहिए'। उसने लोहार से लोहे का एक कड़ा बनवाया। सुनार से उस कड़े पर चांदी की पालिश करवाई। उस कड़े को लेकर साहूकार के घर गया। वह बोला, 'सेठ जी, 'बस, यही एक पुराना ज़ेवर बच गया है। इसे भी ले लो। इसका ठीक दाम लगाना'।

साहूकार ने सोचा, "ज़ेवर और अनाज के कुछ कम दाम लगाया था। इस कड़े के तो ठीक दाम देना चाहिए'। कड़े के पैसे लेकर जाट घर लौट गया। अपनी चौपाल पर बैठ कर यह गाना शुरू किया—

हंस बिका मेरा, कौड़ी के दाम
कुसुम बिका मेरा, भूसे के दाम
लवलक कटेगा, पता लगेगा
ता धीना भई, ता धीना
भई ता धीना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी--५

एक जाट की तीन लड़कियां थीं। जब बड़ी लड़की जवान हुई तो जाट ने उसका रिश्ता एक अच्छे घर में कर दिया। लड़की की शादी में खाना परोसने के लिए जाट को वर्तनों की आवश्यकता थी। जाट एक सेठ जी के पास गया और बोला 'सेठ जी, लड़की की शादी है। कुछ बर्तन दे दो। जो किराया होगा, ले लेना'। सेठ ने पहले तो आना-कानी की। बड़ी खुशामदी के बाद बर्तन देने के लिए तैयार हो गया। जाट जब बर्तन लौटाने गया तो कुछ छोटे-छोटे बर्तन भी साथ ले गया। जैसे कटोरी के साथ छोटी-सी कटोरी, गिलास के साथ छोटा-सा गिलास आदि। जाट सेठ से कहने लगा, 'सेठ जी, आपके बर्तनों ने बच्चे दिये हैं। इसलिए मैं इन्हें भी साथ लाया हूं'। सेठ जी बहुत खुश हुए। सेठ जी ने सोचा, 'यह अच्छा मूर्ख मिला है'। सेठ ने सारे बर्तन ले लिये।

दूसरी लड़की की शादी में भी जाट ने ऐसा ही किया। जब तीसरी लड़की की शादी का समय आया तो जाट सेठ से कहने लगा, 'सेठ जी यह मेरी सबसे छोटी लड़की है। इसकी शादी खूब ठाठ से करूंगा। खूब सारे बर्तन दे दो। कुछ सोने-चांदी के जेवर भी दे देना'। सेठ ने बहुत से बर्तन और ज़ेवर दे दिया।

शादी के कुछ दिन बाद जाट सेठ जी के पास जाकर रोने लगा और बोला, 'सेठ जी, आपके सारे बर्तन और ज़ेवर मर गये"। सेठ बोला, "मूर्ख, कहीं बर्तन भी मरते हैं' ?

सेठ ने काजी के यहाँ मुकदमा दायर कर दिया। काजी ने दोनों की बातें ध्यानपूर्वक सुनी और फैसला सुनाते हुए कहा, "जो बर्तन बच्चे दे सकते हैं, वे मर भी सकते हैं'।

कहानी--६

एक जाट ने एक लाला से पांच हजार रुपये व्याज पर लिये। निश्चित समय पर पैसा न लौटाने पर लाला ने जाट पर मुकदमा दायर कर दिया। जाट एक वकील के पास गया और उसे सारा किस्सा बताया। वकील ने कहा, 'मैं तुमको एक तरीका बताता हूं। लेकिन मैं इसकी एक सौ रुपये फीस लूंगा'। जाट बोला, 'यदि मेरा पैसा माफ हो जाता है तो मैं आपको सौ रुपये दे दूंगा'।

वकील ने कहा, 'तुम जज के किसी भी प्रश्न का उत्तर न देना। जो भी प्रश्न तुमसे पूछे, उसके उत्तर में तुम बें··ओं·····कर देना'।

जाट जब जज के समाने पेश हुआ तो उसने ऐसा ही किया। हर प्रश्न के उत्तर में बें··ओं·····कह दिया। जज ने उसे पागल घोषित कर दिया। जब जाट कोर्ट के बाहर आया तो वकील ने उससे १०० रुपये मांगे। जाट ने बें··ओं·····की आवाज कर दी। वकील ने उसे धमकी दी। और कहा, 'सीधे-सीधे पैसा दे दो। नहीं तो मैं कानून द्वारा ले लूंगा'। जाट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने जवाब में कहा, 'जो बें···ओं······पांच हजार रुपये माफ करवा सकती है, क्या वह १०० रुपये माफ नहीं करवा सकती' ? जाट की यह बात सुन कर वकील चुप हो गया।

कहानी--७

पाँच भाई थे। एक मुकदमें में इन पांचों भाइयों को पास के शहर जाना पड़ा। किसी कारण उस दिन मुकदमें की सुनवाई नहीं हुई। घर लौटने के लिए भी समय नहीं था। क्योंकि शहर में ही अंधेरा हो गया था। इनके पास पैसा भी नहीं था। भूख लग रही थी। नगर में घूमते-घूमते एक हलवाई की दुकान पर पहुंचे। वे पाँचों-के-पाँचों बैठ कर योजना बनाने लगे। अन्त में तय हुआ कि पहले वे भोजन करेंगे और भोजन के पैसे के बारे में बाद में सोचेंगे।

पूरी-कचौरी, हलवा, रायता, दूध जी-भर खाने के बाद पांचों में से एक जमीन पर लेट गया। हाथ-पैर पटकने लगा और चिल्ला कर कहने लगा, 'हाय, मैं मर गया। पेट में भारी दर्द हो रहा है। पता नहीं, जालिम ने क्या खिला दिया मुझे'। उन चारों में से एक दौड़ कर हलवाई के पास गया और बोला, 'सेठ जी, आपने मेरे भाई को क्या खिला दिया। थोड़ा-थोड़ा दर्द मुझे भी होने लगा है। लगता है जरूर कोई गलत चीज खिला दी। देखो मेरा भाई मरा पड़ा है। अभी पुलीस को बुलाते हैं'।

हलवाई बहुत घबराया और बोला, 'चौधरी साहब ! पुलीस को न बुलाइए। मैं आपको कुछ पैसे दे देता हूं। अपने भाई को किसी डाक्टर को दिखा देना। आप भी कुछ दवा ले लेना। अगर आपके भाई को कुछ हो गया तो उसका दाह-संस्कार भी उधर ही कर देना'।

चारों जाट भाइयों ने अपने भाई को अर्थी पर लेटाया और शव-यात्रा शुरू हुई। चलते-चलते चुंगी का दफ्तर आया। चुंगी वाला अर्थी को रोक कर बोला "यहां से आगे जाना हो, तो चुंगी-लगान देना पड़ेगा"। अर्थी पर लेटा जाट तुरन्त बोल पड़ा, 'अरे, मैं कोई सच-मुच में मरा हूं। लो, मैं चुंगी के उस पार तक चल कर जाता हूं। उसके बाद फिर अर्थी पर लेट जाऊंगा'। चुंगी वाला हंस पड़ा और जाट-बन्धु अर्थी उठा कर आगे बढ़ गये।

कहानी--८

एक जाट लड़के की शादी होनी थी। शादी के लिए कपड़ा लेने के लिए जाट और जाटनी शहर गये। कपड़े की दुकान के लाला को देखकर जाटनी बोली, 'हाय ! कितना मोटा आदमी है' ? जाट बोला, किसी जाट से पाला नहीं पड़ा, वरना मोटापा तो सब दूर हो जाता'। जाटनी बोली, 'जाट इसका क्या बिगाड़ सकता है' ? जवाब में जाट ने कहा, 'यदि देखना चाहती हो तो दो महीने के बाद मुझसे बात करना कि जाट इसका क्या बिगाड़ सकता है'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना कह कर जाट ने जाटनी को घर भेज दिया। स्वयं लाला जी के पास जाकर बोला, "सेठ जी, हमारे यहां शादी में उल्लू देने का बहुत रिवाज है। और इसका बहुत महत्व है यदि कोई बेचने वाला आये तो मेरे लिए जरूर खरीद लेना। जितना पैसा मांगे दे देना। हज़ार, दो हज़ार, दस हज़ार। पैसे की चिन्ता न करना। सब पैसा मिल जायेगा। जाट की बात पर सेठ को विश्वास हो गया।

जाट ने अपने गांव में जाकर एक उल्लू पकड़ लिया। अपने छोटे भाई को उल्लू देकर सब बात समझाया। उल्लू लेकर जाट का छोटा भाई शहर पहुंचा और सेठ की दुकान के सामने जाकर चिल्लाने लगा, 'उल्लू ले लो। उल्लू ले लो'। सेठ जी ने उसे बुलाया, उल्लू का भाव पूछा। जाट के लड़के ने उल्लू का दाम २२ हज़ार बताया। सेट जी ने उसे पैसा दे दिया और उल्लू लेकर दुकान के सामने टांग दिया।

कुछ दिन इन्तज़ार करने के बाद लाला ने जाट को मालूम किया कि वह अपना उल्लू ले जाये। जाट लाला के पास गया और बोला, 'सेठ जी, हमने तो किसी और से उल्लू खरीद लिया है। आप इसे सम्भाल कर रखिए। अभी शादियों का समय आने वाला है। आपका यह उल्लू हज़ार के मुनाफे से बिकेगा'।

कई महीने तक कोई उल्लू खरीदने नहीं आया। सेठ को यह भी मालूम हो गया कि जाटों में उल्लू का रिवाज नहीं है। अब सेठ को बहुत चिन्ता हुई। इस चिन्ता में सेठ सूख गया तब जाट ने जाटनी को दिखाया कि जाट से पाला पडने पर सेठ का मोटापा कैसे गायब हो गया।

कहानी १

एक सेठ जी थे। उन्होंने गांव की काफी जमीन खरीद ली और स्वयं खेती करने की योजना बनाई। खेती के काम में सलाह लेने के लिए एक जाट और एक झूजर को बुलाया। जब जाट और झूजर खाने पर पहुंचे, तो सेठ की लड़की ने थाली पर खीर रख दी। जाट ने उसमें से आधी खीर निकाल दी और बाकी खीर खा लिया। झूजर ने आधी खीर खा लिया और बाकी थाली में छोड़ दी। सेठ की लड़की ने अपने पिता से कहा, "खेती के काम की सलाह जाट से ही ली जानी चाहिए। झूजर का तो अपने पेट का भी अन्दाजा नहीं है। वह खेत की पैदावार का क्या अन्दाजा लगा सकता है?

विश्लेषण

पिछले चार-पांच दशकों में साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। भाषा - विज्ञान तथा अन्य सामाजिक विज्ञानों में प्रयुक्त पद्धतियों की सहायता से पद्य, गद्य, मिथक, कहानी आदि के व्यवस्थित अध्ययन हुए हैं। लोक-कहानी के अध्ययन में निम्न पद्धतियों का प्रयोग किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्लाडिमिर प्रॉप (Vlademir Propp) ने रूस की परी-कथाओं का अध्ययन करके एक औपचारिक पद्धति का विकास किया है। इनकी इस पद्धति में विश्लेषण की इकाई वाक्य (सेन्टेन्स) है। कथा या कहानी के वाक्य के कर्ता (सब्जेक्ट) को नायक (हीरो) के रूप में और वाक्य के शेष भाग (प्रेडीकेट) को कार्य/प्रकार्य (फन्क्शन) के रूप में स्वीकार किया जाता है। कर्ता के कार्यों के आधार पर उनकी भूमिकाओं (रोल्स्) का निर्धारण किया जाता है। रूस की परी-कथाओं में कर्ता की भूमिकाएं (१) खलनायक, (२) दान देने वाला (३) सहायक (४) राज कुमारी या उसका पिता, (५) तुरन्त सामग्री या सूचना भेजने वाला, (६) नायक और (७) नकली नायक है। इसी प्रकार पात्रों के ३१ कार्य/प्रकार्य है जैसे नायक द्वारा प्रस्तावित कठिन कार्य को सम्पन्न करना, नकली नायक का पता लगाना, नायक को मान्यता प्रदान करना, आदि (प्रॉप, १९६८)

लेवी-स्त्रास (Lovi-Strauss) के मिथक के अध्ययन में विश्लेषण की इकाई मिथक का वाक्य है। मिथक वाक्यों या मिथक इकाइयों (मैथीम) को युग्मविरोध या परस्पर विरोधों (binary oppositions बैनरी-अपोजीशन्स) के रूप में निश्चित श्रेणियों और क्रमो (सिक्वेन्सस्) में रखा जाता है। इन क्रमों का विश्लेषण करके निष्कर्ष निकाले जाते हैं। (लेवी-स्त्रास, १९६८)

ग्रीमास (Griemas) टोडोरोव (Todorov) आदि विद्वानों ने प्रॉप की पद्धति में संशोधन किया। टोडोरोव की पद्धति में कहानी विश्लेषण तीन चरणों में किया जा सकता है। प्रथम चरण में कहानी की मुख्य बातों को सरल प्रस्तावों के रूप में किया जाता है। इन प्रस्तावों को निम्न क्रम में देखा जाता है।

१. कहानी के पात्रों के परस्पर सम्बन्धों में सन्तुलन।
२. एक पक्ष द्वारा शक्ति-प्रयोग। अर्थात् सम्बन्धों में तनाव।
३. असन्तुलन।
४. तनाव समाप्त करने के लिए शक्ति-प्रयोग।
५. नई शर्तों पर समझौता और सन्तुलन

ये दशाएं लगभग सभी कहानियों में होती है।

एक अन्य अध्ययन में रोमा चटर्जी (Roma Chatterji) ने बंगाल की लोक-कहानियों का विश्लेषण किया है (चटर्जी, १९८५)। यह विश्लेषण मीड (G. Mead) के 'स्व' और 'पर' के सिद्धान्त पर आधारित है। इनके विश्लेषण में कहानी के तीन कार्य-स्थल (डोमेन) है। प्रथम कार्य-स्थल में नायक अशान्ति की स्थिति में रहता है। अशान्ति समाप्त करने के लिए उसे दूसरे कार्य-स्थल में अधिक शक्ति-शाली पात्रों से संघर्ष करना पड़ता है। विजय प्राप्त करके नायक अन्तिम कार्य-स्थल में प्रवेश करता है जहां सुख और शान्ति है।

उपरोक्त दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुए वर्तमान जाट लोक-कहानियों का विश्लेषण इस प्रकार किया गया है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये कहानियां किसान और साहूकार के बीच विभिन्न प्रकार के संविदात्मक सम्बन्धों में निहित तनाव और वर्ग-संघर्ष पर प्रकाश डालती हैं ।

प्रथम दो कहानियां साझेदारी की हैं । कम्बल और भैंस इन कहानियों में सामाजिक सम्बन्धों के माध्यम हैं । कहानी के प्रथम चरण में कम्बल और भैंस जाट के लिए पद और प्रतिष्ठा के चिन्ह हैं और साहूकार के लिए आराम और लाभकारी वस्तुएं । परिस्थितियों में परिवर्तन होने से सुविधाओं के असमान वितरण की भावना जन्म लेती है । शक्ति-प्रयोग द्वारा सम्बन्धों में असन्तुलन की स्थिति समाप्त करके नई शर्तों पर सम्बन्ध सामान्य हो जाते हैं ।

कहानी २ में परस्पर विरोधों (बयनरी-अपोज़ीशन्स्) पर ध्यान देने की आवश्यकता है । भैंस के दो असमान भागों में विभाजन को आधुनिक पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था के रूप में देखा जा सकता है । भैंस के अगले हिस्से का मालिक जाट या किसान है । भैंस के लिए चारा-पानी की व्यवस्था करना उसका उत्तरदाइत्व है । भैंस का पिछला हिस्सा साहूकार का है । इसलिए दूध और गोबर पर उसका अधिकार है । जिस प्रकार कारखाने में मजदूर का शोषण होता है, उसी प्रकार भैंस की साझेदारी में साहूकार किसान का शोषण करता है । डंडे का प्रयोग वर्ग-संघर्ष का प्रतीक है ।

कहानी ३ और ४ में ज़ेवर सामाजिक सम्बन्धों के माध्यम हैं । कहानी ३ में ज़ेवर रेहन रखे जाते हैं और ४ में साहूकार को वेचे जाते हैं । अपने जेवर-गहने वेचना या रेहन रखना दोनों ही किसान की प्रतिष्ठा के विरुद्ध हैं । समझौते की शर्तें अस्पष्ट और प्रथाओं पर आधारित होने से साहूकार किसान की मजबूरी का लाभ उठाता है । किन्तु कहानी ३ में शारीरिक शक्ति का प्रयोग करके और कहानी ४ में नकली ज़ेवर के असली दाम लेकर बदला लेता है । एक कहानी में ढोल की ऊँची आवाज़ में साहूकार की चीख-पुकार सुनाई नहीं देती तो दूसरी में ज़ेवर की असलियत का पता लगना बाकी है ।

कहानी ५ में दो परस्पर विरोधी तत्व हैं । एक तरफ किसान की कुंवारी लड़कियां विवाह के बाद पिता का घर खाली करके ससुराल में मां बनने के लिए जा रही हैं अर्थात् पराया-धन है, पराया-धन किसान का धन भी साथ ले जा रहा है । दूसरी तरफ साहूकार के बर्तन विवाह के बाद मां बन कर साथ में बच्चे और किसान का धन लेकर माइके लौट रहे हैं । अर्थात् किसान का घर खाली और साहूकार का घर आबाद ।

बर्तन के किराये से बचने का तर्क है : यदि दो लड़कियों के विवाह में बर्तन के बच्चे हुए थे तो तीसरी लड़की की शादी के बाद ये बर्तन और गहने और ज़ेवर मर सकते हैं ।

कहानी ६ और ७ नगरीय जीवन से सम्बन्धित हैं । कहानी ६ में दो परस्पर विरोधी तत्वों में अन्तः क्रिया है । हलवाई जाट-बन्धुओं को रईस समझ कर उन्हें अच्छा भोजन देता है । उनसे भोजन के पैसे लेने की बजाय उनमें से एक के दाह-संस्कार के लिए उसे पैसे देना पड़ता है । कहानी ७ में किसान साहूकार से कर्ज़ लेता है । वकील की सलाह पर कोर्ट में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पागल बन जाता है। परिणाम स्वरूप जज साहूकार के दावे को अनुचित समझता है। वकील की फीस? साहूकार से कर्ज़ नहीं लिया, तो फीस किस बात की? अन्य कहानियों का विश्लेषण भी इसी प्रकार किया जा सकता है।

स्पष्ट है कि जाट-लोक कहानियां जन साधारण के लिए मनोरंजन के साधन हैं। इन कहानियों में जाट की चतुर्बुद्धि या हाज़िर जवाबी साहूकार की चालाकी और लालच का उचित जवाब है। यह कहानियां प्रासंगिक भी है और दैनिक जीवन के विभिन्न संदर्भों में इन्हें दोहाराया जाता है। जाट एक प्रान्तीय प्रभुजाति भी है। जाट लोक कहानियां अन्य जातियों के सामाजीकरण में उपयोगी हो सकती हैं। कुछ क्षेत्रीय कृषक जातियों के लिए जाट संस्कृतीकरण के आदर्श-प्रतिमान है। जैसे स्थानीय सैनी जाति के लोग जो महाभारत के श्रीकृष्ण और सूरसैन को अपना पूर्वज मानते है, जाट जाति के लोगों को अपना आदर्श मानते हैं।

इस अध्ययन का उद्देश्य किसी परिकल्पना का परीक्षण या निश्चित निष्कर्ष निकालना नहीं है। मुख्य रूप से यह देखना है कि समाजशास्त्र में प्रचलित पद्धतियां किस सीमा तक जाट लोक-कहानियों को समझने में उपयोगी हो सकती हैं।

१.	गोल्डमन, एल.	१९६४	**दी हिडन गॉड**, लन्डन. ४
२.	"	१९६४	**ट्वर्डस् ए सोसियोलोजी आफ् नोवेल**
३.	जैफरसन, ए	१९८२	**मार्डन लिटररी थियोरी** लन्डन
४.	लेवी-स्ट्रास, सी	१९६८	**स्ट्रक्चरल एंथ्रोपोलोजी**
५.	मीड, जी	१९३४	**मैन्ड सेल्फ, एण्ड सोसाइटी**
६.	प्राप, वी	१९६८	**दी मार्फोलोजी आफ दी फोक-टेल** आस्टिन टेक्सास
७.	सेल्डेन आर	१९८५	**ए रीडर्स गाइड टू कान्टेम्पोररी लिटररी थियोरी**, ससेक्स
८.	डॉ. नगेन्द्र	१९८२	साहित्य का समाज शास्त्र, नई दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भंगियों में राजनीतिक चेतना

विनोद सिंह

परम्परागत भारतीय सामाजिक व्यवस्था में अनुसूचित जातियों का शक्ति संरचना में कोई स्थान नहीं था। वे अपने निम्न सामाजिक स्थिति के कारण उच्च जातियों पर आर्थिक रूप से निर्भर होते थे। शिक्षा तथा सम्पत्ति पर आधारित अन्य जातियों को प्राप्त सीमित मताधिकार भी उन्हें उपलब्ध नहीं थे, क्योंकि न तो इनके पास शिक्षा थी और न ही सम्पत्ति (खान : १९८० : १७२)। परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् इस परिस्थिति में परिवर्तन हुए। समकालीन आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था ने अनुसूचित जाति के सदस्यों की जाति संरचना में स्वायत्तता को प्रोत्साहन दिया है। परम्परागत निम्न सामाजिक स्थिति से वे उच्च आर्थिक और राजनीतिक स्थिति, सैद्धान्तिक रूप में प्राप्त कर सकते हैं। वयस्क मताधिकार, आरक्षण की व्यवस्था, अस्पृश्यता उन्मूलन आदि संवैधानिक उपबन्ध, परम्परागत प्रस्थितिकीय विभेदीकरण पर आघात पहुंचाकर निम्न जाति के सदस्यों को उच्च जाति के समकक्ष स्थिति प्राप्त करने का अवसर प्रदान करते हैं (सब्बरवाल : १९७०)। साथ ही सहभागी होने का अवसर भी उन्हें प्राप्त हुआ।

आज नेतृत्व के प्रदत्त आधार के महत्व में कमी हुई है और नयी व्यवस्था में व्यक्तिगत सक्रियता राजनैतिक नेतृत्व में अत्यधिक महत्वपूर्ण हो रही है (बित्ते : १९६९ : १८३)। वाटर के अनुसार अब जाति अथवा जातीय समूहों के लिये आर्थिक सांस्कृतिक पद और स्थिति तथा शिक्षा बगैर भी सत्ता प्राप्त करना सम्भव है, क्योंकि सार्वभौमिक प्रजातांत्रिकरण के कारण प्रदत्त पद और स्थिति की अपेक्षा संख्या का महत्व अधिक हो गया है (वाटर : १९५६ : ११९)। श्रीनिवास के अनुसार राजनैतिक सत्ता के लोगों को हस्तान्तरीकरण के कारण जातीय समूह दबाव समूह बने हैं और शक्ति के लिए एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं (श्रीनिवास १९६८ : १९४)। यह सत्य है कि अनुसूचित जातियों को दिये गये राजनैतिक आरक्षणों तथा वयस्क मताधिकार के कारण उनका राजनैतिक महत्व बढ़ा है, परन्तु देश की राजनीति उनका

डा० विनोद सिंह, रिसर्च एसोसियेट, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद और स्थिति तथा सक्रिय सहभागिता, उनकी राजनीतिक जागरूकता, बोधगम्यता तथा मूल्य उन्मुखता पर निर्भर करती है।

वाराणसी में भंगियों का संगठनात्मक समर्थन यह दर्शाता है कि वे भौतिक सांस्कृतिक सुधारों को बहुत महत्व देते हैं न कि परम्परागत तौर-तरीकों को। सिन्हा व बेरीमैन (१९६५) के अध्ययनों के अनुसार यह कहा जा सकता है कि निम्न जातियां संसारी सिद्धान्तों को अधिक महत्व देती है। उच्च जाति के लोगों की अपेक्षा भंगी निम्न जातियों के विषय में अधिक कटुता से नहीं बोलते पर गरीबी के विषय में बोलते हैं।

वाराणसी में इस जाति के संगठन दो प्रकार के हैं। प्रथम प्रकार का संगठन व्यवसायिक एवं जाति दोनों आधारों को प्रस्तुत करता है। दूसरे प्रकार का संगठन जाति से सम्बन्धित है। समाज में इसके व्यवसाय की अत्यधिक अनिवार्यता है। इनके व्यवसाय की अनिवार्यता निम्नांकित वक्तव्य से प्रकट होती है "सरकार हमारे पेशे के परम्परागत तथा गन्दे तरीकों से सम्पन्न होने के प्रति जरा भी सचेत नहीं है। उसे तथा सभी को यह पता होना चाहिए कि यदि हम अपना पेशा चार दिन के लिए बन्द कर दें तो साफ-सुथरे नगर, गांव और शहर तथा उसके सफेदपोश खुदगर्ज नागरिक सड़ने-मरने की स्थिति में आ जायेंगे" (उ० प्र० विधान सभा कार्यवाही, अंक, ३०३ : १९७३ : ४४)।

भंगी जाति के लोग अपनी सामाजिक स्थिति में सुधार के लिए सांस्कृतिक अथवा धार्मिक पक्ष की अपेक्षा राजनीतिक पक्ष पर अधिक ध्यान देते हैं, यद्यपि इस जाति के लोग धीरे-धीरे उच्च जातियों द्वारा मानी जाने वाली प्रथाओं एवं परम्पराओं का अनुकरण भी करने लगे हैं। इनके राजनीतिकरण का महत्वपूर्ण कारण यह है कि ये योग अपने को एक दबाव समूह के रूप में मानकर राजनैतिक दलों से अधिकाधिक लाभ प्राप्त करने का प्रयास करते रहते हैं। चूंकि व्यक्तिगत रूप से ये अपनी समस्याओं का समाधान नहीं कर सकते अतः इनकी सम्पूर्ण कार्यवाही समूह के रूप में संचालित होती है (लिच : १९६९)। सभी भंगी अपने भौतिक स्तर में सुधार चाहते हैं तथा इसके लिए श्रमिक संघों का सहारा लेते हैं। सभी भंगी सफाई मजदूर संघ के सदस्य हैं, चाहे वह नगर महापालिका का मजदूर संघ हो या काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का। स्तरीय सुधार के लिए इन संघों में बराबर गोष्ठियां हुआ करती हैं। उदाहरणार्थ कोदई चौकी के पास जो शहर के मध्य भाग में है, प्रति माह एक सभा होती है। इसमें प्रत्येक वार्ड से पाँच प्रतिनिधि भाग लेने के लिए भेजे जाते हैं। हर कार्य करने वाले सदस्य से यह संघ तीन रुपये सालाना चन्दा इकट्ठा करने की आज्ञा देता है, परन्तु भंगियों के अनुसार वे प्रत्येक महीने एक रुपया देते हैं। इस संघ का भारतीय स्तर पर गठन सन् १९३० में हुआ था। यहां के सेक्रेटरी द्वारा प्रान्तीय स्तर पर बनाई गयी उपलब्धियों में वेतन वृद्धि, नगर महापालिका में कार्य करने वाले भंगियों के लिए आवासों का निर्माण आदि है। पहले इन्हें १० से १४ घण्टे कार्य करना पड़ता था, परन्तु अब ७ घण्टे ही कार्य करना पड़ता है तथा सप्ताह में एक दिन का अवकाश तथा साथ में १३ त्यौहारों का भी अवकाश मिलता है। पहले इन्हें ये दोनों प्रकार के अवकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं मिलते थे। कार्य करने वालों की संख्या में वृद्धि हुई है (शहर की आबादी एवं सीमा क्षेत्र में वृद्धि के कारण)। उन्हें नगर महापालिका द्वारा शीतकालीन एवं ग्रीष्मकालीन कपड़े भी दिये जाते हैं। प्रसूति अवकाश, १५ दिन का कारण सूचक (कैजुअल लीव) अवकाश, १–१/२ महीने का व्याधि अवकाश (सिक लीव) प्राप्त होती है। नगर महापालिका इनको अस्पताल से मुफ्त दवायें, नर्स, डाक्टर आदि की सेवायें उपलब्ध कराती है तथा सरकार उनके स्कूली बच्चों के लिए मुफ्त किताबें भी प्रदान करती है। नगर महापालिका कार्यालय से इनको कर्ज भी दिया जाता है तथा उसकी वापसी महीने के वेतन से आसान किश्तों में काट कर की जाती है।

प्रतिवर्ष इनके अधिकारी व प्रतिनिधि के लिए चुनाव होता है। १९७२ में संघ द्वारा नगर में लगातार तीन महीने तक हर सप्ताह १८ सूत्रीय मांगों के समर्थन में जुलूस निकाला गया था। मांगों के न मानने पर हड़ताल की धमकी भी दी गयी थी। उनकी मांगें निम्नलिखित थीं—

१. पेंशन एवं प्राविडेण्ट फण्ड।
२. वेतन सही समय पर मिलना चाहिए।
३. उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा दी जाने वाली अस्थायी सहायता मिलनी चाहिए।
४. सरकार द्वारा हर काम करने वाले को १० रुपया देने का वायदा कार्यान्वित हो।
५. वाराणसी नगर महापालिका, आगरा, कानपुर, इलाहाबाद और लखनऊ की नगर महापालिका से कम पैसा न दें।
६. बाल्टी और झाड़ू हर महीने मिलनी चाहिए।
७. पूरा वेतन व छुट्टियों के दिनों में कार्य करने पर अधिक वेतन, जो नियम के अनुसार हो, मिलना चाहिए।
८. कपड़े जो नियमानुसार मिलने चाहिए, वे नहीं मिलते।
९. साप्ताहिक छुट्टियों पर अवकाश मिले।
१०. जमादार एवं दरोगा के पद पर शिक्षित हरिजनों को रखना चाहिए।
११. जब कोई कर्मचारी अवकाश प्राप्त करे तो स्थायी अथवा अस्थायी रूप में उसके घर के सदस्यों को नौकरी में प्राथमिकता मिले।
१२. वर्तमान घरों की मरम्मत होनी चाहिए एवं नये घरों का निर्माण होना चाहिए।
१३. जो भंगी शहर से दूर से कार्य करने आते हैं उन्हें आवागमन भत्ता मिलना चाहिए।
१४. भंगियों (कार्य करने वालों) की संख्या पूरी होनी चाहिए तथा भैंसा गाड़ी और ट्रकों का प्रयोग होना चाहिए जैसा कि पब्लिक हेल्थ मैन्यूअल ऐक्ट में लिखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५. हाथ से ठेलकर चलाने वाली गाड़ियां अधिक दूर स्थानों के लिए प्रयोग में न लायी जायें, तथा वहाँ पर ट्रकों का उपयोग होना चाहिए।

१६. अवकाश नियम कानून के अनुसार मिलना चाहिए।

१७. कार्य पर उपस्थित न होने वालों से जो जुर्माना लिया जाता है उसका उपयोग बच्चों की मुफ्त शिक्षा, किताबें, चिकित्सा के मद में किया जाना चाहिए।

१८. नियमानुसार रूप से जो भी वेतन है उससे अधिक मिलना चाहिए।

उपरोक्त सारी मांगें पूरी हो चुकी हैं लेकिन कागजी आश्वासनों द्वारा ही। १९७२ से १९७४ तक दिल्ली और कानपुर में भी बड़े पैमाने पर भंगियों ने हड़तालें की थीं। वाराणसी में भी १९७७, १९७८, १९७९ और १९८४ में इनकी जबर्दस्त हड़तालें हुई थीं। १९८४ की हड़ताल में यहाँ तक चेतावनी दे दी गई कि यदि २८ फरवरी १९८४ के पूर्व भंगियों की समस्याओं का समाधान न हुआ तो इनके समर्थन में कर्मचारी भी हड़ताल के लिए बाध्य होंगे। लगभग ३० दिनों तक हड़ताल चली। पूरा शहर गन्दगी से भर गया। कुछ भंगियों को महीनों तक वेतन भी नहीं दिया गया लेकिन अन्ततः प्रशासन को उनकी हड़ताल के आगे झुकना पड़ा। कुछ मांगें मान ली गईं और कुछ को सरकारी विचार-विमर्श के लिए रख लिया गया। इस तरह से बड़ी कठिनाई से इनकी हड़तालें समाप्त हो सकीं।

भंगी जाति के प्रगतिशील सदस्य जाति को संगठित करने का प्रयास करते हैं। इनका एक अन्य संगठन ज़िला बाल्मिकी संघ है। बच्ची राम के अनुसार यह संघ चन्दा इकट्ठा नहीं करता परन्तु भंगियों के अनुसार यह संघ भी चन्दा लेता है। हिन्दू भंगी स्वतः ही इस संघ के सदस्य हो जाते हैं। यह संघ आजकल बहुत सक्रिय है। सम्पूर्ण भारतीय स्तर पर इस संघ की स्थापना श्री बद्री प्रसाद बाल्मिक आनन्द ने सन् १९४१ में की थी।

भंगी समुदाय अपनी जाति के प्रति शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त विषमता को समझता है। इसलिए उसने जिले के नगरीय तथा कस्बाई संभागों में अपनी जाति के बालकों को शिक्षा हेतु विद्यालय एवं पुस्तक आदि सामग्री से सहायता देने का यथा सम्भव प्रयास किया है। यह संगठन भंगी जाति के सार्वांगीण विकास तथा उसमें चेतना जागृत करने के लिए अक्टूबर, नवम्बर में बाल्मिकी के जन्म दिवस के अवसर पर ८ दिनों का एक कैम्प प्रत्येक वर्ष आयोजित करता है। स्वास्थ्य तथा शिक्षा पर भाषण दिये जाते हैं। मिठाइयां बाँटी जाती हैं और हर जाति के लोग साथ-साथ भोजन करते हैं। संगठन की विभिन्न स्थानीय जनपदीय इकाइयाँ स्थानीय हितों को स्वतन्त्रतापूर्वक तय करती है तथा विशेष मुद्दों पर संगठन के मुख्यालय से आदेश प्राप्त करती है। संगठन जाति में व्याप्त परम्परागत दोषों यथा नशेबाजी, जुआखोरी आदि को हटाने का प्रयास करता रहा है। जाति के सदस्यों को यह समझाता रहा है कि उनमें ये परम्परागत प्रवृत्तियां दीर्घकालीन सामाजिक बन्धनों तथा शिक्षा के अभाव का परिणाम हैं। संगठन का आशय है कि इससे जाति की ऋणग्रस्तता समाप्त की जा सकेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफाई मजदूर संघ तथा बच्चीराम संघ के विचारों में एक मौलिक अन्तर है। जहाँ श्रमिक संघ हड़तालों तथा प्रदर्शनों में विश्वास रखता है; वहीं जिला बाल्मिक संघ गाँधी की नीतियों-भूख हड़ताल तथा अन्तर्जातीय भोजों आदि में दृढ़ विश्वास रखता है। सन् १९५४ में दोनों संगठनों ने मिलकर मन्दिरों तथा होटलों में प्रवेश पाने के लिए निरन्तर ४ वर्षों तक संघर्ष किया। सरकारी तौर पर ये विजयी हुये परन्तु अभी भी किसी भंगी को विश्वनाथ मन्दिर के बाहर झाड़ू रखते हुये देख लिया जाय तो उसे मन्दिर में प्रवेश करने को नहीं मिलेगा। हमारे उत्तरदाताओं ने बताया कि यदि वे दशाश्वमेघ क्षेत्र में कार्य करते हैं तो वह कार्य समाप्त हो जाने पर गंगा में स्नान करके विश्वनाथ मन्दिर में पूजन-अर्चन के लिए जा सकते हैं। अवलोकन से यह भी ज्ञात हुआ कि इनका एक हेला संघ भी है परन्तु इसकी गतिविधियों की कोई स्पष्ट जानकारी नहीं मिल सकी।

कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि भंगियों के ऐसे संगठनों एवं उनकी कार्यवाहियों को बहुसंख्यक भंगियों का समर्थन प्राप्त रहता है। इन संगठनों की सदस्यता स्वाभाविक तथा अन्य स्वैच्छिक संगठनों की सदस्यता से भिन्न होती है। इसलिए कुछ विद्वान इसे भंगियों में नगरीकरण की विशेषता मानते हैं (लिटिल, एल० १९६५)।

राजनैतिक सहभागिता प्राथमिक स्तर पर चुनाव में मतदान से सम्बन्धित है। कुछ भंगी मतदान की उपयोगिता से अनभिज्ञ हैं। मतदान की अनभिज्ञता निम्न राजनीतिक चेतना का प्रतीक होती है। चुनाव में बढ़ती हुई मतदान की उपयोगिता का ज्ञान राजनैतिक चेतना की ओर संकेत करता है। चुनाव में मतदान की आवृत्ति बढ़ाने में शिक्षा, मतदान स्थल तक जाने के साधन एवं मतदाता की जागरूकता आदि सहायक होते हैं। वर्तमान प्रजातांत्रिक युग में निम्न जातियों के मतों का महत्वपूर्ण योगदान है। अतः भंगियों की राजनैतिक सहभागिता जानने के लिए उनके द्वारा पिछले पांच वर्षों में किये गये मतदान से स्पष्ट होता है कि अधिकाँश ६८.३३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने मतदान किया है तथा ३१.६७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने मतदान नहीं किया है। तथ्यों से स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं में राजनीतिक सहभागिता के प्रति अधिकांश ४९.० प्रतिशत उत्तरदाता कभी-कभी सहभागी होते हैं। राजनैतिक सक्रियता के लिए अपने राजनैतिक संगठनों के विकास के पक्ष में अधिकांश ८७.६७ प्रतिशत उत्तरदाता सहमत हैं तथा अधिकांश भंगी पारम्परिक रूप से कांग्रेस को वोट देते हैं क्योंकि भंगी जाति के लोग इस तथ्य को अच्छी प्रकार से समझ गये हैं कि बिना नौकरशाही के समर्थन के उनकी सामाजिक आर्थिक दशा में सुधार नहीं हो सकता है। शासन से आर्थिक लाभों को प्राप्त करने के लिए नौकरशाही का सहयोग आवश्यक है। यही सहयोग इन्हें राजनैतिक दलों के प्रति प्रतिबद्ध कर देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ

खान, मुमताज अली १९८० शिड्यूल कास्ट एण्ड देयर स्टेट्स इन इंडिया, न्यू देहली

सब्बरवाल, एस० १९७० स्टेट्स नेट-वर्क एण्ड मोबिलिटी इन पंजाब इण्डस्ट्रियल टाउन, इण्डियन इन्स्टिट्यूट आफ एडवान्स्ड स्टडी, शिमला।

वित्ते, आन्द्रे १९६२ कास्ट क्लास एण्ड पावर, बम्बई, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

बाटर, नेल सी० १९६५ इण्डिया द सर्च फार यूनिटी, डिमोक्रेसी एण्ड पावर।

श्रीनिवास, एम० एन० १९६८ मोबिलटी इन द कास्ट सिस्टम, एम० सिंगर, स्ट्रक्चर एण्ड चेन्ज इन इंडियन सोसाइटी एण्ड बी० एस० कोहन, सिकागो।

सिन्हा एण्ड वेरीमेन जी० १९६५ कास्ट रैंकिंग इन इण्डिया : साउथ-वेस्ट जर्नल एन्थ्रोपोलाजी।

१९७३ उ०प्र० विधान सभा कार्यवाही, अंक ३०३ : ४४।

लिचओन, एम० १९६८ द पालिटिक्स ऑफ अनटचेबिल्टी, स्ट्रक्चर ऐण्ड चेन्ज इन इण्डियन सोसाइटी, एम० सिगर एण्ड कोहन, बी० एस० कोहन (एडिटेड) शिकागो, अलडाइन।

लिटिल० एल० १९६५ वेस्ट अफ्रीकन अर्वनाइजेशन, कैम्ब्रीज।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल अपराध : कारण एवं निवारण

करन सिंह चौहान

प्रस्तुत अध्ययन छात्र द्वारा रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (१९८६) की एम० ए० उत्तरार्द्ध समाजशास्त्र की परीक्षा के लिए स्वीकृत परियोजना प्रतिवेदन पर आधारित है। लेखक ने उत्तर-प्रदेश राज्य सरकार द्वारा संचालित 'राजकीय अनुमोदित विद्यालय', चान्दपुर स्याऊ-बिजनौर के बाल-अपराधियों का अध्ययन साक्षात्कार, अवलोकन, अनुसूची एवं सांख्यिकी विधियों द्वारा किया है। इस विद्यालय को क्षेत्रीय जनता 'बच्चों की जेल' के उपनाम से भी जानती है। लेखक निर्देशिका श्रीमती सुमन गोयल, प्रवक्ता समाजशास्त्र विभाग, जी० एस० एच० (पी० जी०) कालेज, चान्दपुर-स्याऊ) (बिजनौर) के प्रति अपना आभार व्यक्त करता है जिनके कुशल निर्देशन द्वारा लेखन को अन्तिम रूप दिया गया है। प्रस्तुत लेखन में समस्या से सम्बन्धित कारणों एवं उनके निवारण को समन्वित किया गया है।

यह अकेले भारत की ही समस्या नहीं बल्कि वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व की एक गम्भीर एवं जटिल सामाजिक समस्या है। देश में आर्थिक दशाओं में उल्लेखनीय प्रगति के बाद भी यह समस्या अपना अस्तित्व पूर्ववत ही बनाये हुए है। जैसा कि सारिणी-१ से स्पष्ट है, भारत में बाल अपराधिक प्रवृति ज्यों की त्यों विद्यमान है। अत: आज भी देश में करोड़ों बच्चे ऐसे हैं जिनके लिये 'अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष' का कोई अर्थ नहीं है।

बाल-अपराध वह अव्यहारिक एवं समाज विरोधी कार्य है जो बच्चे के मानसिक विकास में अवरोध पैदा करने के साथ-साथ व्यक्तित्व को कुण्ठित करता है। वास्तव में समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण से बाल-अपराध 'एक निरुद्देशीय, अनियोजित एवं उमंग से प्रेरित एक समाज-विरोधी कार्य है जिसमें चेतना का अभाव होता है।' बच्चों द्वारा किये गए अपराधों में :—चोरी करने, आवारागर्दी करने, रेलवे प्लेटफार्म पर निरुद्देशीय घूमने व सोने, बिना टिकट यात्रा करने, भीख माँगने, धूम्रपान करने, किसी वाहन का शीशा तोड़ने, छोटी-छोटी

करन सिंह चौहान, शोध छात्र, जी० एस० एच० वी० (स्नातकोत्तर कालेज) चांदपुर स्याऊ—बिजनौरा रुहेलखंड वि०वि०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरारतें करने, उठाईगिरी करने, कक्षा पलायन करने, लैंगिक अपराध करने, निर्लज प्रदर्शन करने, किसी को परेशान करने, घरेलू वस्तुओं को तोड़ने तथा चुनौती देने वाली शरारतें करने आदि शामिल हैं। सर्वेक्षक द्वारा बच्चों के अवलोकन से यह स्पष्ट प्रतीत होता था कि इस प्रकार के क्रिया-कलापों से उन्हें शारिरिक एवं मानसिक तृप्ति होती है। यद्यपि उनके ये क्रिया-कलाप उद्देश्य रहित होते हैं लेकिन ये ही बाल-अपराधी बड़े होकर वयस्क अपराधी बनते हैं।

बच्चों द्वारा किये गये अपराध सारिणी नं० २ में दिये गये हैं जिससे यह स्पष्ट होता है कि अध्ययन किये गये बच्चों में चोरी करने वालों का प्रतिशत (१०.७७), आवारागर्दी (१३.८५), रेलवे प्लेटफार्म पर घूमने व सोने (१८.४६), बिना टिकट यात्रा करने (४०.००), भीख माँगने (१.५४) था। इसके अतिरिक्त १३.८४ प्रतिशत ऐसे बच्चों का था जिनको यह भी ज्ञात नहीं था कि उन्होंने कौन सा अपराध किया था जिसके कारण उनको यहाँ लाया गया। बिना टिकट यात्रा करने वालों का प्रतिशत सबसे अधिक था। इससे यह भी तथ्य स्पष्ट होता है कि अधिकांश बच्चों ने अपनी यह क्रिया कोई विशेष इरादा या नीयत रख कर नहीं की थी।

समाज में उत्तरोत्तर बढ़ने वाली इस समस्या का कोई एक अकेला कारण नहीं है और न ही अपराध किसी एक का परिणाम होता है। अत: निश्चय ही सभी कारणों को अपराधिक वातावरण जन्य कहना उचित होगा। अपराधिक कारणों में पारिवारिक (पारिवारिक कलह, भग्न परिवार, सौतेले माता-पिता का होना, अनैतिक परिवार, माता-पिता का व्यवसायी होना, माता-पिता द्वारा उपेक्षा, माता-पिता की सहमति, शारीरिक (बीमार रहना, अंगभंग, शारीरिक असामान्य बनावट), सामाजिक (सामाजिक रूढ़िवादिता, रीति-रिवाज़), सांस्कृतिक (प्रथायें, धर्म, धार्मिक ग्रन्थ, धार्मिक अन्ध-विश्वास, साहित्य), मनोरंजक (सम्बन्धित साहित्य, सिनेमा, होटल, क्लब, टेलीविज़न (भौगोलिक) स्थानीय जलवायु, दशा, स्थान, स्थानिक प्राकृतिक स्रोत (पारिवारिक गरीबी, पढ़ने में अरुचि, औद्योगीकरण, बेरोज़गारी, बुरी संगत, पड़ोसी वातावरण, हीमोफीलिया वर्णान्धता, बुद्धिहीनता इत्यादि है। हमारा यह निष्कर्ष **पसीनन** के इस तथ्य से मेल खाता है जिसमें उनके अनुसार बालक में तीन प्रमुख जन्मजात शक्तियाँ पाई जाती हैं :—नेमे (संचय शक्ति-जो बच्चे में जन्म के समय दिखाई देती है जैसे बच्चे का पैदा होते ही रोना व दूध पीना), हौर्म (प्रयोजन-जिसे बच्चा अपने वातावरण व बड़ों से सीखता है), कोहीयन सम्बन्ध स्थापन शक्ति-विभिन्न क्रिया-कलापों और आवश्यकताओं के मध्य सामंजस्य) जब उपरोक्त कारणों में से कोई भी कारण या इनका मिला-जुला रूप अधिक प्रभावशाली होता है तो बच्चा अपराधिक प्रवृत्ति की ओर अग्रसारित हो जाता है।

मेकड्गल ने भी बच्चे की मानसिक दशाओं को उसके किसी भी समाज विरोधी कार्य करने के प्रेरणास्रोत के रूप में माना है जिनमें जिज्ञासा, आत्मगौरव, सृजनात्मकता, हास्य, परिवार में अपनी महत्ता तथा सम्मान प्रमुख हैं जो बालक को मानसिक रूप से अपराध की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर प्रवृत्त होने के लिए प्रेरित करते हैं। इन्हीं मूल प्रवृत्तियों को उन्होंने मानव व्यवहार का प्रधान चालक माना है।

सारिणी ३ में कारणानुसार अपराध करने वाले बच्चों की संख्या को दर्शाया गया है। उक्त सारिणी से निम्न तथ्य स्पष्ट होते हैं :—

१ बाल अपराध के कारणों में सबसे अधिक प्रभावशाली कारण पारिवारिक गरीबी अपनी स्वयं की इच्छा तथा पारिवारिक कलह थे जिनका प्रतिशत क्रमशः २३.०८, २३.०८ तथा १८.४६ था। इनके अतिरिक्त बुरी संगत से प्रभावित बच्चों का प्रतिशत ३.०८, बेरोजगारी से ७.६९, माता-पिता द्वारा उपेक्षा से ७.६९, माता-पिता के व्यवसायिक होने से ४.६१ प्रतिशत था। ६.१५ प्रतिशत ऐसे बच्चों का था जिन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया इससे यह तथ्य स्पष्ट था कि ऐसे बच्चों को अपने अपराध का ज्ञान भी नहीं था।

२ सारिणी से यह भी स्पष्ट है कि मानसिक दशाएं अपराध का मूल हैं।

बच्चे की उम्र बढ़ने के साथ-साथ उसका चतुर्मुखी विकास होना प्रारम्भ हो जाता है। कम उम्र के बच्चों द्वारा किये जाने वाले अपराधों में गम्भीरता एवं जटिलता का अभाव होता है तथा ये सभी संवेग प्रवृत्ति से प्रेरित होते हैं लेकिन जैसे-जैसे बच्चें की उम्र बढ़ती है उसकी अपराधिक प्रवृत्ति में गम्भीरता और जटिलता की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है और वयस्क होने पर वह एक पंजीकृत अपराधी बन जाता है। यदि सारिणी नं० ४ पर दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट होता है कि ७ से १० वर्ष आयु वर्ग के बाल-अपराधियों का प्रतिशत केवल २१.५४ था लेकिन १५ से १८ वर्ष तक के बच्चों का प्रतिशत सबसे अधिक [४१.५४] था जबकि ११ से १४ आयु वर्ग के बच्चों का प्रतिशत इन दोनों के मध्य [२६.०२] प्रतिशत था। अतः उपरोक्त आँकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि आयु बढ़ने के साथ-साथ अपराधी प्रवृत्ति में वृद्धि, गम्भीरता तथा जटिलता बढ़ती जाती है।

यह सत्य है कि व्यक्ति के जीवन में परिस्थितियों में परिवर्तन होने से उसमें मानसिक एवं शारीरिक बदलाव भी उत्पन्न हो जाते हैं और उसकी पूर्ववत् जिन्दगी बदल जाती है लेकिन यह तथ्य अध्ययन किये गये बच्चों में अप्रभावशाली ही रहा। जैसा सारिणी-५ से स्पष्ट है कि ८४.६२ प्रतिशत ऐसे बच्चे थे जिन्हें इस अनुमोदित विद्यालय में रहना अच्छा लगता था। अच्छा लगने के पीछे मुख्य कारण आरामतलब जिन्दगी गुजारने या अपराध को अपने जीवन के एक विशेष कर्म के रूप में मान लेना था। केवल १५.३८ प्रतिशत ऐसे बच्चें थे जिन्होंने इच्छा व्यक्त की कि उन्हें यहां पर अच्छा नहीं लगता और वे अपने घर तथा अपने समाज में वापस जाना चाहते हैं। इससे यह तथ्य भी सामने आता है कि बच्चों के जीवन में बदलाव तो आया लेकिन उसकी मात्रा नाम मात्र थी।

१८ वर्ष की आयु प्राप्त करने तक बच्चा अपने भविष्य के विषय में लगभग निश्चित कर चुका होता है कि आने वाले समय में उसे क्या करना है जिसका प्रतीक उसके व्यक्तिगत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार होते हैं। इस सम्बन्ध में (कि आप यहाँ से निर्मुक्ति के बाद क्या करेंगे) बच्चों से साक्षात्कार किया गया तो पाया कि २७.६९ प्रतिशत ऐसे बच्चों का था जो यहाँ से निर्मुक्ति के बाद पुनः कोई न कोई अपराध अवश्य करेंगे। पूछे जाने पर कि तुम ऐसा क्यों करना चाहते हो ? उत्तर था कि ऐसा करने से पुलिस हमको पकड़ कर पुनः लायेगी और फिर से हमारी जिन्दगी आराम से कट सकेगी। इस तथ्य से यह भी स्पष्ट है कि बच्चों को जेल का वातावरण रास आने लगा था और अपराध करना उनके जीवन का एक विशेष अंग बनकर रह गया था। उक्त सारिणी से यह भी तथ्य स्पष्ट है कि कुछ बच्चों में अपराधिक प्रवृत्ति जन्मजात होती है जिसका मुख्य कारण मनोवैज्ञानिक ही है।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो चुका है कि अपराध के अनेक कारणों में सबसे अधिक प्रभावशाली कारण मानसिक (मनोवैज्ञानिक) ही था जो अथक प्रयास करने के बाद भी बच्चों में ज्यों का त्यों बना हुआ था। ऐसे बच्चों को सुधारना एक मुश्किल कार्य है।

निवारण

बाल-अपराध एक सामाजिक दोष होने के साथ-साथ आज राष्ट्र के समक्ष एक चुनौती के रूप में विद्यमान है इसका उन्मूलन असम्भव नहीं तो एक कठिन कार्य अवश्य है। जिस प्रकार अपराध का कोई एक अकेला कारण नहीं है उसी प्रकार इसके निवारण का भी कोई एक अकेला प्रयास सम्भव नहीं है। लेखक ने समस्या निवारण सम्बन्धी कुछ सुझाव (प्रयास) दिये हैं जो निम्न प्रकार हैं—

१ उम्र बढ़ने के साथ साथ बच्चे की रुचि एवं आकांक्षाओं में बदलाव आना शुरू होता है इसलिए उसकी रुचि और आकांक्षाओं को पहचान कर उसको सृजनात्मक कार्यों से जोड़ देना चहिए।

२ सही मार्ग दर्शन द्वारा एक कलह प्रिय बच्चे को सैनिक और एक आक्रमणकारी बच्चे को खिलाड़ी बनाया जा सकता है। इसके अभाव में वह क्रूर एवं हत्यारा बन सकता है। इस प्रयास में माता-पिता व स्कूली शिक्षक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं।

३ बाल-अपराध इच्छा शक्ति (संवेदन या उद्वेग) या मन्द बुद्धि का परिणाम होते हैं। इसके उपचार हेतु डाक्टरी सलाह लेनी चाहिए। बच्चे की मन्द बुद्धि का संकेत उसके प्रारम्भिक जीवन में (३ से ६ साल तक) मालूम पड़ जाता है।

४ माता-पिता एवं बच्चे के मध्य मधुर एवं स्नेहपूर्ण सम्बन्ध होने चाहिए जिससे बच्चे के मस्तिष्क में गलत फहमी का विकार उत्पन्न न हो।

५ परिवार में माता - पिता द्वारा बच्चों के मध्य उपेक्षा का वातावरण नहीं पैदा करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६ इससे पहले कि बच्चा कुछ मांगे उसकी जिज्ञासा और मानसिक स्थिति को पहचान कर दे देना चाहिए।

७ बच्चे के समक्ष माता-पिता या अन्य परिवारजनों को कोई ऐसा कुकृत्य नहीं करना चाहिए जिसका प्रभाव बच्चे के मस्तिष्क पर विपरीत पड़े।

८ बच्चे की प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध उसके विकास को ध्यान में रखते हुए (बच्चे को किस प्रकार की आवश्यकता है) करना चाहिए।

सारिणी १
अपराध और बाल अपराध

वर्ष	कुल ज्ञात अपराध	कुल बाल-अपराध	प्रतिशत
१९७५	११,६०,५२०	३८८८८	३.४
१९७६	१०,९९,८८७	३६६५५	३.४
१९८०	१३,६७,००४	४५००८	३.५
१९८१	१४,३६,१६८	४७३५१	३.६
१९८२	१४,२६,००६	४५६३४	३.४

सारिणी २
अपराधानुसार बाल-अपराधियों की संख्या

अपराध	संख्या	कुल का प्रतिशत
चोरी करना	७	१०.७७
आवारागर्दी करना	९	१३.८५
रेलवे प्लेट फार्म पर निरुद्देश्य घूमना	१२	१८.४६
बिना टिकट यात्रा करना	२६	४०.००
भीख माँगना	०१	१.५४
माता-पिता छोड़ कर चले गये	०१	१.५४
कोई उत्तर नहीं	९	१३.८४
कुल	६५	१००.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिणी ३

अपराध का कारण

कारण	बच्चों की संख्या	कुल का प्रतिशत
पारिवारिक कलह	१२	१८.४६
बुरी संगत	०२	३.०८
माता-पिता का व्यवसायिक होना	०३	४.६१
माता-पिता द्वारा उपेक्षा	०५	७.६९
बेरोज़गारी	०५	७.६९
अपनी इच्छा से	१५	२३.०८
गिरोह द्वारा जबरदस्ती	०२	३.०८
माता-पिता की इच्छा से	०१	११.५४
पारिवारिक गरीबी	१५	२३.०८
कोई उत्तर नहीं	५	७.६९
कुल	६५	१००.००

सारिणी ४

आयु वर्गानुसार बाल-अपराधियों की संख्या

आयु वर्ग	संख्या	कुल का प्रतिशत
७ से १०	१४	२१.५४
११ से १४	२४	२६.९२
१५ से १८	२७	४१.५४
कुल	६५	१००.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिणी ५ (अ)

बच्चों की वर्तमान मनः स्थिति (यहाँ कैसा लगता है?)

		अच्छा	बुरा
कुल संख्या	६५	५५	१०
कुल प्रतिशत	१००.००	८४.६२	१५.३८

सारिणी ५ (ब)

क्या निर्मुक्ति के बाद भी अपराध करेंगे ?

		हाँ	नहीं
कुल संख्या	६५	१८	४७
कुल प्रतिशत	१००.००	२७.६९	७२.३१

BIBLIOGRAPHY

Amar Ujala News Paper 19 April 1987.

Bhattacharyya, S. K. Social Social Defence, An Indian, Perspective, Manas Publications, Delhi, 1985.

Brij Mohan India's Social Problems, Allahabad, International Publications, 1972.

Bromer, A. New Light on Deliquency, Mental Conflict and Misconduct. Yale University Press, New York, 1936.

Sheth, Hansa Juvenile Deliquenc in Indian Setting, Popular Book Depot., Bombay, 1961.

Sutherland, E. H. & D. R. Cressey, Juvenile Deliquency, McGraw Hill Book Co., New York, 1949.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Paul, Tappan — Juvenile Deliquency, Mac Graw Hill Book Co., New York, 1949.

Verma, S. C. — The young Deliquents: Socialogical Enquiry, Pustak, Kendra, Lucknow, 1970.

Weston, H. E. — The Role of School in Crime Prevention, National Probation Association, Year Book, 1939.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिवासी स्तम्भ

बस्तर की गदबा जनजाति का जीवन-चक्र

मोहम्मद यूसुफ खान

बस्तर की एक जनजाति गदबा है, जो अल्पसंख्यक है और इनकी संख्या बहुत कम है। ये मुदरिन या कोलरिन समूह से संबंध रखते हैं, अपने आपको गुथान कहते हैं (मिटचल १८६३) गदबा जगदलपुर तहसील के दक्षिण मैदानी भागों में रहते हैं वैसे अधिकांश गदबा उड़ीसा में पाये जाते हैं वहाँ की ये मुख्य जनजातियों में से एक है। एक बार बस्तर महाराजा महिपाल देवसिंह दर्शन के लिए जगन्नाथपुरी (उड़ीसा) गये थे वहां उन्हें गदबा के बारे में जानकारी प्राप्त हुई कि ये बहुत ही परिश्रमी एवं अपने कन्धों पर अत्यधिक भार लेकर काफी दूर तक ले जाने की क्षमता रखते हैं, यह इनका पारम्परिक कार्य है। उस समय वाहनों का प्रचलन नहीं था, एक स्थान से दूसरे पर जाने के लिये डोली का उपयोग किया जाता था अत: १६१० के लगभग राजा महिपालदेवसिंह ने इनको बस्तर आने का निमंत्रण दिया जिसको कुछ गदबा लोगों ने सहज स्वीकार कर लिया और उड़ीसा से बस्तर प्रस्थान किया, इनको राजा ने जगदलपुर के आसपास बसने की अनुमति व खेती के लिये कुछ भूमि भी दे दी। इनका मुख्य कार्य महाराजा को डोली में बैठाकर भ्रमण करवाने का था जिनकी संख्या बारह होती थी जब छ: थक जाते थे तब अन्य छ: डोली लेकर चलते थे, यह कार्य पीढ़ी दर पीढ़ी चलने लगा।

बस्तर की मुख्य जनजातियों थुरवा, बतरा, हलबा, मुरिया एवं मारिया (गोंड) की तुलना में इनकी जनसंख्या न्यूनतम है। १९६१ में इनकी जनसंख्या १०३८ थी, इसके बाद १९७१ की जनगणना के अनुसार इनकी संख्या बढ़कर १४१९ तक पहुंच गयी थी। परन्तु वर्तमान समय में इनकी जनसंख्या १८५२ है। गदबा जनजाति के परिवार यहां के विभिन्न ग्रामों में पाये जाते हैं। सबसे 'अधिक ३६.०० प्रतिशत परिवार सरगीवाल ग्राम में रहते हैं जो कि जगदलपुर से ५ कि० मी० दूर है, इसके बाद खुटपदर ग्राम में है जिनका प्रतिशत २१.८ है फिर तीसरा स्थान ग्राम जाटय का है जहां १९.५१ प्रतिशत परिवार रहते हैं इसके पश्चात बिरसागुड़ा आता है जिसमें ९.१८ प्रतिशत परिवार है, आंजरगुड़ा में ४.५९ प्रतिशत रहते हैं अन्त में सबसे कम परिवार केवल २.५९ एवं

डॉ० मो० यूसुफ खान, अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, आय० के स्नातकोत्तर महाविद्यालय इन्दौर, (म०प्र०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२.६२ प्रतिशत है जो सेमरबाटा एवं पुष्पपाल में निवास करते हैं। इस प्रकार जगदलपुर से २० कि० मी० के क्षेत्रफल में गदबा जनजाति के सभी परिवार पाये जाते हैं।

शारीरिक रचना की दृष्टि से ये मध्यम कद के ५.४ इंच से लेकर ५.८ इंच तक के देखने को मिलते हैं। त्वचा का रंग काला या कालाभूरा होता है। इनके होठ मोटे और नासिका चौड़ी तथा बाल घुंघराले होते हैं, चेहरे लम्बे व गोल आकार के होते हैं।

रहन सहन का स्तर

गदबा जनजाति का रहन सहन का स्तर बहुत ही सादा है ये गाँव में पास पास झोपड़ियां बनाकर रहते हैं इनमें दो तरह की झोपड़ियाँ (कुड़ियाँ) देखने को मिलती हैं एक तो चावल की फूस (पैरा) की जिनकी संख्या अधिक है दूसरी खपरैल वाली। इसके अतिरिक्त वे इनके चारों ओर बाड़ी बनाये रहते हैं ताकि जंगली पशुओं से सुरक्षा रहे और उतनी भूमि में इनके अधिकार का संकेत देती रहे। झोपड़ी के पास ही एक खोली बनी रहती है जिसमें ये अपने पालतू पशुओं को रखते हैं। ये अधिकतर झोपड़ियां पेड़ों के ही नीचे बनाते हैं। नई झोपड़ी का निर्माण करते समय एक दूसरे का सहयोग करते हैं। झोपड़ी के बाहर एक छोटा सा चबूतरा बनाते हैं जिस पर बैठकर गपशप करते हैं। प्रायः इनकी झोपड़ियों में दरवाजे नहीं पाये जाते हैं। इनके पास सामान भी अधिक नहीं होता है परन्तु चटाई (पट्टी) सभी के पास होती है जिसको ये जमीन पर बिछाकर लेटने एवं बैठने के उपयोग में लेते हैं। इनके पास जूते, चारपाई और न ही बिस्तर होता है। बर्तनों के स्थान पर सारगी के पत्तों के बने दोनों का उपयोग करते हैं जिनको खाने के पश्चात फेंक देते हैं। दिन में मंडिया का घोल बना कर पीते हैं परन्तु रात में चावल अवश्य खाते हैं। साथ ही कुछ सब्जी या दाल बना लेते हैं। ये सभी मांसाहारी होते हैं। सदैव जंगली पशुओं के शिकार, केकड़ा, सांप, चूहा आदि को खोजते रहते हैं। प्राप्त हो जाने पर बड़े चाव से खाते हैं। पीने के लिये पानी ये कच्चे कुंये खोदकर प्राप्त करते हैं। इनके पास सदैव कुल्हाड़ी (टंगी) रहती है।

भाषा

बस्तर में आने के पश्चात इनका संस्कृति सम्पर्क बस्तर की मुख्य जनजातियों जैसे धुरवा एवं बतरा से हुआ। यही कारण है कि वर्तमान समय में १.५ प्रतिशत वृद्ध पुरुष एवं महिलायें गदबा बोली जानती हैं। प्रायः सभी बतरी बोलते हैं जिसमें उड़ियां, हिन्दी आदि का मिश्रण देखने को मिलता है।

वस्त्र एवं आभूषण

सामान्यतः इनके वस्त्र एवं पहनावा बस्तर की अन्य जनजातियों जैसा ही है। स्त्रियां छोटी सी धोती बदन पर लपेट कर कन्धे पर बांधे रहती हैं। पुरुष गाँव में जब रहते हैं तो एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपड़ा चारों ओर लपेटे रहते हैं या फिर लंगोटी (लंगेटे) लगाते हैं परन्तु जब कभी शहर या पास के गाँव, मेला, बाजार, कुकड़ा लड़ाई या गोंचा त्यौहार पर जगदलपुर जाते हैं तो कमीज पहन लेते हैं फिर भी वस्त्रों का अभाव रहता है। इनकी स्त्रियों को आभूषणों का अत्यन्त शौक होता है। सभी स्त्रियां पैरों में धातु का कड़ा पहने रहती हैं। गले में कोई माला या फिर पुराने सिक्कों की माला पहने रहती हैं। बाल भी विशिष्ट प्रकार से घुमाकर बांधे रहती हैं। कानों में लकड़ी या सोने की घुन्डी डाले रहती हैं परन्तु इनकी संख्या बहुत ही कम होती है। हाथों में चूड़ियां व कड़ा पहने रहती हैं। गदबा स्त्रियों को गुदना का बहुत शौक होता है। प्रायः सभी स्त्रियां हाथों एवं मुंह सजावट के लिये गुदना गुदवा लेती हैं परन्तु पुरुष तो सादे ही रहते हैं।

जन्म पर

गदबा जनजाति में बच्चे के जन्म से पहले ही स्त्रियों को एक विशेष कमरे में रखा जाता है। उसी कमरे में जचकी हो जाती है। समय पूरा होने पर उस स्त्री की देखभाल वृद्ध महिलायें करती हैं जिनको इसका अनुभव होता है। जचकी होने पर उसको अपवित्र समझा जाता है वह कोई भी पवित्र कार्य में भाग नहीं लेती। यहां तक कि निश्चित अवधि तक खाना भी नहीं बना सकती है। गर्भवती महिला का इधर-उधर व जंगल तथा रात में निकलना वर्जित होता है क्योंकि उस पर किसी दुष्ट आत्मा का भय होता है। नये बच्चे को गर्मपानी से नहलाकर पूरे शरीर पर हल्दी लगायी जाती है। पहला बच्चा होने पर अधिक खुशी मनायी जाती है। स्त्रियां सामूहिक नाच, गाना करती हैं, मदिरा, (मुंद) पी जाती है। धुरई को चावल एवं मुर्गा उपहार स्वरूप दिया जाता है। यदि स्त्री जनन उत्पत्ति में असक्षम होती है तो उसका पति बिना किसी हर्जाने के दूसरा विवाह कर सकता है या फिर दोनों स्त्रियों को साथ साथ रख सकता है। एक स्त्री से बच्चा होने पर दोनों मिलकर उसका पालन पोषण करती हैं।

नामकरण

जन्म के सवा महीने के बाद बच्चे का नामकरण उत्सव होता है जिसमें नाते, रिश्तेदारों के अतिरिक्त गाँव के लोग भी सम्मिलित होते हैं। वृद्ध पुरुष (स्थानीय लोग) आपस में सलाह करके बच्चे का नाम रखते हैं। महार बाजा बजाते हैं, नाचगाना होता है। नातेदार भेंट में चावल, मुर्गा आदि लाते हैं बाकी सामग्री बच्चे के पिता को लानी पड़ती है। बच्चे का नाम निश्चित होने के बाद भोज एवं मुंद का सेवन होता है।

गीत एवं सामूहिक नृत्यः—जन्मोत्सव, छोटा मांगनी, बड़ा मांगनी, नहानी एवं दिवारी आदि त्यौहार के समय गीत एवं सामूहिक नृत्य देखने को मिलता है। जब बच्चे का जन्म होता है तब महिलायें गाने गाती हैं परम्परा के अनुसार वृद्ध महिलायें गदबी में गाने गाती हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा अन्य महिलायें बतरी में गाती हैं। विवाह के समय (बड़ा मांगनी) जब हल्दी दोनों लड़का (पिला) एवं लड़की (टौकी) को लगायी जाती है तब उनके पीछे बैठ कर वृद्ध महिलायें फावड़ा बजाकर गदबी में गाने गाती हैं। यह केवल गदबा जनजाति की परम्परा को जीवित रखता है। महार मन बाजा बजाते हैं स्त्री पुरुष सब मिलकर नाचते हैं। विशेषतौर पर लड़के एवं लड़की के माता पिता को साथ-साथ हाथ डाल कर नाचना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कोई बाहरी अतिथि उस समय उपस्थित हुआ तो उसको भी नाचने के लिये खींचते हैं। साधारणतया किसी दिन भी जब कभी गांव में महारमन बाजा बजाते हैं लड़के एवं लड़कियां नृत्य के लिये एकत्रित हो जाते हैं। लड़कियां अलग नृत्य करती हैं। कभी दोनों मिलकर एक दूसरे पर हाथ रखकर नाचते हैं। नाचते समय लड़कियां बीच बीच में एक विशेष प्रकार की आवाज निकालती रहती हैं।

मनोरंजन

वैसे तो गदबा जनजाति में भी आधुनिक मनोरंजन के साधन न के बराबर है। लेकिन फिर भी वह किसी न किसी प्रकार अपना खाली समय व्यतीत करते हैं तथा मनोरंजन के सीमित साधनों को अपनाते हैं। जब गांव के स्थानीय लोग अपनी खेती बाड़ी (नागर) से खाली हो जाते हैं तब यदाकदा एक निश्चित स्थान पर सामूहिक नृत्य का आयोजन करते हैं। यह सदैव रात्रि में होता है जो आधी रात तक चलता रहता है। इसके अतिरिक्त यहां के नवयुवक एक प्रकार का नाटक खेलते हैं जिसको बस्तर के सभी लोग बड़े शौक से देखते हैं इसका आयोजन विवाह अथवा नहानी के अवसर पर किया जाता है और कभी-कभी आसपास के गांव में नाटक मण्डली अपना कार्यक्रम रखती है जिसको पास के गांव के लोग देखने आते हैं।

बस्तर की अन्य जनजातियों की भांति गदबा जनजाति के लोगों को भी मुर्गा लड़ाई (कुकड़ा लड़ाई) का शौक है। ये भी अपना कुकड़ा लेकर पास के गांव में जाते हैं और कुकड़ा तथा पैसों की बाजी लगाते हैं। इनमें बस्तर की मुरियां जनजाति की तरह घोटुल तो नहीं होते परन्तु इनके लड़के एवं लड़कियों को साथ-साथ घूमने फिरने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। रात गये तक यह घूमते रहते हैं। यह इनको जीवन साथी चुनने का अवसर देना है। इसके अतिरिक्त पास के जंगल में छोटे मोटे पशुओं का या मछलियों का शिकार करके अपना मनोरंजन करते रहते हैं।

धार्मिक विश्वास एवं संस्कार

गदबा जनजाति देवताओं की अपेक्षा देवियों के उपासक हैं। यह बहुत ही अन्धविश्वासी जनजाति है। आज भी ये जादू टोने पर विश्वास रखते हैं, बाना नायक जादू इनमें देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त ये सूर्य एवं चन्द्रमा की भी पूजा करते हैं और वर्ष में एक बार उनके नाम पर पहले सफेद मुर्गा बाद में लाल मुर्गे की बलि देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकी कुछ स्थानीय देवी भी हैं जैसे धारनी देवी जो कि बरगद के पेड़ पर निवास करती है। इनका विश्वास है कि वह विभिन्न रोगों और महामारियों से इनकी रक्षा करती है जिस पर ये काली गाय, अण्डे तथा नारियल चढ़ाते हैं। फिर रास देवी जो कि अदृश्य है पर इनके पशुओं एवं धान की रक्षा करती है। बीज बोने से पहले इसके नाम पर बकरा, सूअर और मुर्गे की बलि चढ़ाई जाती है। इसके अतिरिक्त मातागुड़ी नामक देवी भी है जो कि वृक्ष पर निवास करती है। चेचक निकलने पर इस पर नारियल, दूध और केला चढ़ाया जाता है।

त्यौहार एवं भोज

गदबा जनजाति के अपने कुछ त्यौहार भी हैं जैसे ओमुष अगस्त के महिने में जब चारों ओर हरियाली छा जाती है इसे मनाया जाता है जिसमें धान की अच्छी फसल की कामना करते हैं तथा उसके कुछ हरे पौधों को लाकर एक दूसरे को दो-दो, चार-चार बांटते हैं व एक दूसरे के गले मिलते हैं। साथ-साथ भोजन करते हैं मदिरा पीते हैं। धानवा त्यौहार अक्तूबर में जब धान की नई फसल तैयार हो जाती है तब मनाया जाता है। फसल को घर पर लाने के बाद पहले धानगी देवी को एक मुर्गे की बलि चढ़ाते हैं इसके बाद ही नये धान का उपयोग करते हैं। अतिथि के आने पर उसको एक मुर्गा व चावल भेंट स्वरूप देते हैं। दिवारी पर्व भी इनमें देखने को मिलता है जो कि जनवरी माह में मनाया जाता है। इसमें घरों को साफ सुथरा करके गोबर और मिट्टी मिलाकर लिपाई और पुताई करते हैं फिर घरों के बाहर से थानि आने के रास्ते से पशुओं के बंद करने के स्थान तक सफेद पैरों के चिन्ह बना देते हैं। इस दिन खिचड़ी बनायी जाती है जिसे स्वयं पशुओं तथा अतिथियों को खिलाते हैं। धुरई जो कि इनके पशुओं को वर्ष भर चराता है उसको ये बदले में धान देते हैं। कभी-कभी बकरा भी देते हैं। दिन भर गाँव में शोर रहता है बाजे बजते रहते हैं लोग मदिरा एवं लांदा खाकर नशे में झूमते एवं नाचते रहते हैं। अपने नातेदारो को इस पर आमंत्रित करते हैं। गदवा जनजाति का अमनवा भी मुख्य पर्व है। यह चैत (मार्च) के महीने में जब आम फूलता है तब मनाया जाता है इसको समूह के सभी लोग बड़े हर्षोल्लास से मनाते हैं। नये नये कपड़े लाते हैं, समूह के लोगों के साथ भोज मुंद का सेवन तथा पिलामन एवं टोकिया नाचते जाते हैं। गोंचा पूरे बस्तर का सबसे बड़ा त्यौहार माना जाता है जिसको बस्तर की सभी जनजातियां बड़े चाव से मनाने के लिये जगदलपुर आती हैं। यह जुलाई के महीने में मनाया जाता है इसमें महाराजा के रथ को खींचने की प्रथा है। इसमें सभी जनजाति समूहों का स्थान निश्चित एवं निर्धारित होता हैं। इसमें गदबा जनजाति का स्थान रथ के पास तथा इसको खींचने का कार्य भी ये ही करते हैं। पिलामन एवं टोकियां लकड़ी की बनी बन्दूक जिसमें एक गोल जंगली फ़ल जो आवाज के साथ तेजी से निकलता है, एक दूसरे को मारते तथा नाचते कूदते हैं। इस दिन ये कमीज आदि पहने रहते है इसके बाद खाने पीने का समान लेकर रात को वापस अपने गांव आ जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीमारियां

इनमें त्वचा सम्बन्धी रोग तो सामान्यत: देखने को मिलते हैं इसके अतिरिक्त टी. बी., तपेदिक और अस्थमा जैसे रोगों से ग्रस्त भी इन्हें देखा जाता है। यदि कोई व्यक्ति अधिक बीमार हो जाता है या घाव से ग्रस्त होता है तो उसको समूह से निकाल कर अलग झोपड़ी में रखते है। इनका यह विश्वास होता है कि उसने कोई पाप किया था जिसका दण्ड उसे देवी ने दिया है उसके पास केवल परिवार के ही सदस्य जाते हैं वह भी खाना पानी देने के लिये। यदि वह स्वस्थ हो जाता है तो उसको पवित्र करके ही समूह में सम्मिलित करते हैं जिसके लिये उसे अपने जनजाति के लोगों को भोज एवं मदिरा पिलानी पड़ती हैं।

मृत्यु एवं दाह संस्कार:

जब इनके किसी भी सदस्य की मृत्यु हो जाती है तब उसको एक निश्चित एवं निर्धारित स्थान पर समूह के साथ जिसमें महिलायें भी सम्मिलित होती हैं, गड्ढा खोदकर गाड़ दिया जाता है। साथ में उसके उपयोग करने वाले बर्तन, कपड़े भी रख देते हैं। इनका विश्वास होता है कि इनकी आवश्यकता इसको फिर भी पड़ेगी साथ ही नमक व गुड़ भी रखते हैं। गाड़ने के पश्चात उसी स्थान पर छोटी छोटी मछलियों को उबाला जाता है जिसके पानी से बारी-बारी सभी लोग अपने हाथ धोते हैं फिर पास के तालाब (मुण्डा) में सभी नहाते हैं और फिर एक कतार से जिसमें पुरुष आगे रहते हैं घर वापस आ जाते हैं।

नहानी

फिर नौ दिन के बाद नहानी का आयोजन होता है जिसमें ये बड़ी खुशियां मनाते हैं। सगे सम्बन्धियों के अतिरिक्त गांव के अन्य लोग भी भोज एव मदिरा के लिये आमन्त्रित होते हैं। परन्तु वह भी खाली हाथ नहीं आते हैं साथ में मुर्गा या मुर्गी, चावल व गुड़ आदि लेकर जाते हैं। इनका उपयोग भी वहीं भोज में कर लिया जाता है। यदि नहानी करने वाला निर्धन होता है तो मुखिया, पटेल (भांझी) और स्थानीय लोग पूरे गांव से खाने पीने की सामग्री चन्दे के रूप में एकत्रित करके उसको दे देते हैं। इसमें मुख्यत: सूअर या बकरा तथा मुर्गा मुर्गी काटे जाते हैं, भोज एवं मदिरा सेवन के बाद नाच गाना और रात्रि में नाटक प्रदर्शन होता है। इनको विश्वास हो जाता है कि आज हमारे मृतक सदस्य की आत्मा अपने पूर्वजों की आत्माओं से जाकर मिल गयी है।

नियम व निषेध

इनके अपने कुछ सामाजिक नियम व निषेध होते हैं जिनका पालन करना सभी को अनिवार्य होता है। किसी ने भी एक का भी उल्लंघन किया तो वह दण्ड का भागीदार होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है जैसे अन्तर्विवाह करना। परन्तु अन्य जनजाति के साथ विवाह या यौन संबंध स्थापित करना निषिद्ध है। इसके अतिरिक्त महार हरिजन, मुरिया एवं मारिया के हाथ का छुआ पानी भी ये नहीं पीते और न ही किसी प्रकार के सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं परन्तु ये सारे बन्धन धरवा, बतरा एवं हलबा जनजातियों के विपरीत हैं क्योंकि इनको वे अपने से श्रेष्ठ समझते हैं। यदि इनका कोई लड़का या लड़की इनमें विवाह करता है तो गदबा जन-जाति वाले प्रसन्न होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यार्थी स्तम्भ

पर्यावरण आदिवासी और विकास

राधेश्याम त्रिपाठी

मध्यप्रदेश समाजशास्त्र परिषद के प्रथम अधिवेशन के अवसर पर प्रख्यात समाजशास्त्री प्रो० श्यामाचरण दुबे १९८६ ने विकास के लाभों की अध्ययन सम्बन्धी कमियों की ओर इशारा किया है इनके बारे में कोई वैज्ञानिक आंकलन उपलब्ध नहीं है। यह संभव है कि विकास के माध्यम से शक्तिशाली जनजातियों ने अपने आपको भी अधिक दृढ़ बनाया है और छोटे-छोटे असहाय समूह प्रगति की दौड़ में और भी पिछड़ गये हों। जिन सात-आठ छोटी-छोटी और पिछड़ी जनजातियों के लिए विशेष कल्याण योजनायें बनाई गई हैं उनका मूल्यांकन जरूरी है। साथ ही हमें विकास योजनाओं के सांस्कृतिक और सामाजिक परिणामों का सूक्ष्म और गहन अध्ययन भी करना होगा। उक्त विचार अत्यन्त सामयिक और मानवशास्त्रीय महत्त्व का है। विकास और कल्याण तथा विकास और लक्ष्य समूह के बीच दूरी बढ़ती जा रही है। पर्यावरण और आदिवासी का घनिष्ट सम्बन्ध विकास के नये अवसर विकेन्द्रित तथा विखेर रहे हैं। इस कथन के आधारभूत विश्लेषण हेतु महत्त्वपूर्ण मुद्दे यथा संभव प्रस्तुत लेख में उठाये गये हैं।

वर्तमान दशक में पर्यावरण प्रदूषण विकास जनित समस्या बन गया है। आदिवासी जीवन की स्वाभाविकता और सन्तुलन बिगड़ रहा है। समाज वैज्ञानिक पर्यावरण के दूषित होने, आदिवासियों के अपने प्राकृतिक वास से विस्थापित होने, जंगल स्वामित्व एवं उपयोग अधिकार से, बहुउद्देशीय विद्युत, जलपरियोजनाओं की स्थापना से उजाड़ होने तथा सम्पूर्ण रूप से सामाजिक आर्थिक परिवेश से कटने का अध्ययन करने में अवश्य रुचि लेंगे।

१ अध्ययन दृष्टिकोण

आदिवासी अध्ययनों के पिछले दशक १९७१-१९८० के दौरान विकास के परिणामों पर अनुसंधान एवं शोध हुये हैं। यह उल्लेखनीय है। विशेषकर निर्धनता और बदलती अर्थव्यवस्था

राधेश्याम त्रिपाठी, प्राध्यापक, शासकीय महाविद्यालय, जयसिंहनगर, शहडोल (म० प्र०)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अध्ययन मानव वैज्ञानिकों ने किया है इन अध्ययनों को संक्षेप में निम्न प्रारूप क्रम में देखा जा सकता है।

१—आदिवासी क्षेत्रों के आर्थिक सामाजिक परिवर्तन का समग्र अध्ययन।

२—निर्धनता और बेरोजगारी सम्बन्धी अध्ययन।

३—विकास प्रभावों के अध्ययन।

४—औद्योगीकरण, नगरीकरण के सामाजिक परिणाम।

५ - हिन्दूकरण, संस्कृतिकरण और ईसाईकरण की प्रक्रियाओं का अध्ययन।

६—पर्यावरण वननीति और आदिवासी।

क्षेत्रकार्य और सघन सर्वेक्षण द्वारा आदिवासी क्षेत्रों में अनुसंधान वैयक्तिक मानव वैज्ञानिकों एवं राज्य नियंत्रित शोध संस्थाओं ने किये हैं। परन्तु इन अध्ययनो का आदिवासी योजनाओं के लिए पूर्णरूपेण उपयोग नहीं किया जा सका।

आदिवासी और वन, पर्यावरण, परिस्थिति की व्यवस्था से मानवशास्त्रीय तर्क सम्बन्धित है। सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से यह तात्कालिक महत्व का है। आदिवासियों के बारे में विकास एजेण्टों का ज्ञान, पारिवारिक विघटन और आदिवासी समाज का मलिन बस्ती में बदलना, सरकारी कार्यक्रमों का विरोध, परियोजना क्षेत्र में बदलाव, आदिवासी आन्दोलन की प्रवृत्तियों के अध्ययन में भारत के मानव वैज्ञानिक समाजशास्त्री जुटे हुये हैं। आदिवासी क्षेत्रों में बाहरी लोगों का विरोध, प्रवर्तित कार्यक्रमों का विरोध आदिवासी आन्दोलन का अंग बन गया है। (एम० एस० ए० राव ११९८४) प्रत्येक राज्य में एक जैसा विकास नहीं हो सकता है क्योंकि सामाजिक एवं आर्थिक कारक भिन्न-भिन्न होते हैं। विकास प्रशासक पूर्वाग्रह रहित दृष्टिकोण से वंचित नहीं हो पाते। सरकारी कार्यक्रम विकास की सही दिशा नहीं पकड़ पाये (के० मोहनराव १९८३)।

पर्यावरण के मामले में स्थिति अधिक चिंतनीय है। प्रसिद्ध मानव वैज्ञानिक हेमेनडार्फ ने भी इस ओर अपनी चिंता प्रकट की है। आदिवासी विकास का आशावान चित्रण परिस्थिति-कीय असंतुलन की उपेक्षा करते हुये ही रखा जा सकता है। मध्य भारत का पर्यावरण अधिक प्रभावित हो रहा है। वनों का विनाश तेजी से हो रहा है। वनाश्रित संस्कृति समाप्ति की ओर है।

२ आदिवासी और वननीति

स्वतंत्रता के पश्चात् १९५२ की वननीति में आदिवासी कल्याण पक्ष स्पष्ट नहीं था। जंगली उत्पाद, वनभूमि, ईंधन, लकड़ी के संकट आदिवासियों के सामने नहीं थे। १९७६ में प्रस्तुत राष्ट्रीय कृषि आयोग की रपट में आदिवासी और वननीति पर भी विचार किया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योजना आयोग द्वारा गठित कार्यकारी दल (१९८१) एवं सातवीं योजना के दौरान आदिवासी विकास की प्रयोजना दस्तावेज में भी चिंता प्रकट की गयी कि वन उजड़ने के साथ-साथ आदिवासियों के सामने भौतिक-परिस्थितिकीय समस्यायें खड़ी हो रही हैं। इन सरकारी रपटों में वन संपदा का संग्रह अधिकार, जंगलभूमि उपयोग अधिकार, सहकारिता, वनग्रामों का विकास, बंधुआ मजदूरी, स्त्रियों और बच्चों के कल्याणकारी नीतियों का विन्दुवार समाकलन किया गया है।

पिछले दशकों में बड़ी-बड़ी विद्युत और बांध परियोजनायें आदिवासियों के विस्थापन और स्थान विरसन का कारण बनती जा रही हैं। ये कारण आदिवासी आन्दोलन को उग्र करने में आगे रहे हैं ढेवर कमीशन की रपट के अनुसार जंगलों पर आदिवासियों के अधिकार को लेकर छेड़छाड़ १८९४ से पहली वननीति से प्रारम्भ हो चुकी थी। राष्ट्रीय कृषि आयोग ने आदिवासी अर्थव्यवस्था एवं वन के मध्य अर्न्तसम्बन्ध माना है जो कि उपभोग (निर्वाह स्तर) रोजगार, उपयोग और स्थानीय लोगों की भागीदारी को रेखांकित करता है। आयोग ने उपयोग अधिकार को और अधिक तार्किक बनाने की संस्तुति की थी।

सातवीं योजना (१९८५-९०) के दौरान आदिवासी विकास के परिप्रेक्ष्य में परियोजना क्षेत्रों में आनुपातिक स्तर पर 'जंगल' विकसित किये जाने की सिफारिश की हैं। सामाजिक वानिकी (सोशल फारेस्ट्री) समन्वित की जाये। विचौलियों को लघु वनोपज के विपणन क्षेत्र से हटाना, वाणिज्यिक वानिकी का सघन कार्य, ईंधन, लकड़ी की निरन्तर आपूर्ति, बागवानी प्रजातियों का रोपण और उसी क्षेत्र में परम्परागत वानिकी हटाने के बदले आदिवासियों को लकड़ी की आपूर्ति के अनुकूल रोपण, पेड़ पट्टा देने की सिफारिश कार्यकारी दल ने दी थी।

इस कार्यकारी दल से पूर्व १९७८ में हुये वन और आदिवासी कल्याण के सम्बन्ध में राज्य स्तरीय मंत्री सम्मेलन की सिफारिश में सहकारिता, सघन वानिकी के विकास की थी। सातवीं योजना के दौरान वन ग्रामों को राजस्व ग्रामों के रूप में घोषित करना भी प्रस्तुत किया था।

भारत में वनों की कटाई के कारण प्रतिवर्ष १३ लाख हेक्टेयर वन खत्म हो रहे हैं। इससे वनों में स्थित जनजातियां, सूखा, खाद्यान्न की कमीं, चारे का अकाल, पानी की गंभीर समस्या रही है। मध्य प्रदेश वनों से राजस्व कमाने में सबसे आगे है, परन्तु इसी राज्य में निर्वनीकरण तेज है। मध्य प्रदेश के वन क्षेत्र में ४-१५ प्रतिशत की कमीं आयी है। प्रदेश का घना वन क्षेत्र २० : ०३ प्रतिशत से घटकर १५-५७ प्रतिशत तक रह गया है जबकि प्रदेश के चौरासी लाख आदिवासी प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से इसी पर आश्रित हैं। वन विकास पर राज्य योजना का व्यय प्रथम पंचवर्षीय योजना में १६ प्रतिशत था जो घटकर छठी पंचवर्षीय योजना में ५-४ प्रतिशत तक रह गया है। वनों पर निवेश केवल ६-६ रुपया प्रति हेक्टेयर था जबकि पंजाब में १४१-०९ रुपये उ० प्र० में २६-७ रुपये प्रति हेक्टेयर था। आंकड़ों के अनुसार देश के समूचे वन क्षेत्र का २३ प्रतिशत मध्य प्रदेश में स्थिति है। (अरुण कुमार सिंह : १९८६) म० प्र० शासन ने म० प्र० आदिम जनजाति (वृक्षों के हित संशोधन अधिनियम १९८४ पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है । इसके अनुसार ठेकेदार या दूसरे लोग आदिवासियों के खेतों या जमीन पर लगे पेड़ों की बिक्री उनको कटाई और उसके भुगतान के मामले में आदिवासियों का शोषण नहीं कर सकेंगे । एक अन्य मामले में म० प्र० उच्च न्यायालय ने गोबर को वनोपज मानने से प्रतिबंधित किया । खरगौन जिले के आदिवासियों द्वारा दाखिल याचिका के लिये यह निर्णय उल्लेखनीय है । निर्धन आदिवासी गोबर संग्रह, ईंधन प्रयुक्त कर उससे जीविका कमाते हैं । इसी तरह माहुल पत्ते के संग्रह और आदिवासी लोगों द्वारा उसे विक्रय हेतु छूट देने की घोषणा (मुख्य वन संरक्षक, म० प्र०) भी उचित कदम है ।

आदिवासी अर्थव्यवस्था और वन व्यवस्था विलग होकर भिन्न-भिन्न दिशाओं में प्रवाहमान होती गयी है और यह विलगाव दोनों के लिये घातक रहा है । वनों पर आवादी के बढ़ते दवाव को सीमित रखना तब तक असम्भव है जब तक स्वयं आदिवासी लोगों में व्यक्तिगत रूप से पेड़ लगने में दिलचस्पी नहीं पैदा हो जाती है । शर्मा (१९८०) ने वन आदिवासी सम्बन्धों के बारे में लघु वनोपज, सीमित स्वामित्व एवं भोगाधिकार, अनियत मजदूरी, वनश्रमिक सहकारी समितियों और वन विकास आयोजन का सचेष्ट विश्लेषण करने का प्रयास किया है । इसके अवधारणात्मक तथ्यों के अतिरिक्त वन दोहन और आदिवासी आन्दोलन पर्यावरण सम्बन्धी आक्रोश की चर्चा करना आवश्यक है । लेख में इस विषय को समाहित करने का प्रयास किया गया है ।

वी० के० राय वर्मन (१९८३) ने वन और आदिवासी सम्बन्धों पर मानव शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में चिंतन प्रस्तुत किया है । जंगलभूमि के स्वामित्व की संवैधानिक व्यवस्था के अलावा आदिवासी का गहन संवेदात्मक लगाव वन से रहा है । गुजरात के आदिवासी क्षेत्र के सर्वेक्षण में पाया गया कि २२-२७ प्रतिशत तक वयस्क एवं ७०-७२ प्रतिशत तक आदिवासी लड़के प्रतिदिन जंगली उत्पादों के संग्रह हेतु जाते थे ।

भारतीय प्रशासनिक स्टाफ कालेज के सर्वेक्षण के अनुसार अकाल व अन्य विपदाओं में आदिवासी परिवार मुख्यतया जंगलों में उपलब्ध खाद्य सामग्री पर निर्भर रहते थे (भारत सरकार रिपोर्ट १९८२) आंध्र प्रदेश की आदिवासी परिवारों की १०-१५ प्रतिशत आय जंगलों से संग्रहीत लघु वनोंपजों से मिलती थी । जबकि मध्य प्रदेश में १३ से ३८ प्रतिशत तक आय, उड़ीसा में ५ से १३ प्रतिशत तक आय लघु वनोपजों से प्राप्त होती थी ।

आदिवासी सामुदायिक स्तर पर वनों की रक्षा करने में सदैव सक्षम रहे हैं और उनका प्रबन्ध करना इन्हें आता था । मणिपुर उत्तरपूर्वी क्षेत्र से लेकर बस्तर का आदिवासी वन और प्राकृतिक सम्पदा को 'जीवनतुल्य' मानता आया है ।

वर्तमान में विहार के सिंह भूमि जिले में १९७८-८३ के दौरान तीन वन प्रमण्डलों में आदिवासियों पर जंगल कटाई के १९३५ मुकदमें कायम हुए और वन के ही मामले में १९७८-८६ तक पुलिस फायरिंग की १३ वारदातें हुयी और २६ आदिवासी तक पुलिस की गोलियों का शिकार बन गये (प्रबल कुमार १९८६) ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—सिंगरौली : विकास के विरोधाभास

लोकायन समिति की रिपोर्ट (१९८३) के अनुसार म० प्र० के सीधी और मिर्जापुर के दक्षिणी हिस्से का खनिज और पर्यावरण असंतुलन के बढ़ाव का उदाहरण है। सिंगरौली क्षेत्र में आदिवासियों की प्रजातियां गोड़, कोल, खरवार, पनिका, मुख्य हैं। परियोजनायें लगने से १३३ आदिवासी बहुलगांव उजड़ गये। बाजार उपभोक्ता व्यवस्था, नकदी चलन, औद्योगिक प्रदूषण चल रहा है। मिर्जापुर के रिहन्द बांध से दो लाख लोग विस्थापित हुए। देशी फसलें, देहाती जिन्स सब बाजार में आ गया है। पनिका (कपड़ा बुनकर), अगरिया (लोहारगिरी) को परम्परागत व्यवसाय समाप्त हो गये हैं। सोन नदी, रेड़ नदी का जल प्रदूषित हो रहा है। सर्वाधिक अवलोकनीय तथ्य यह है कि इस क्षेत्र में आदिवासियों को बार-बार उजड़ना पड़ा है। बड़ी औद्योगिक फैक्टरियां (रेणकूट) हिडांलकों, कनोड़िया केमिकल्स, विद्युत परियोजनायें, शक्ति नगर, विंध्याचल ताप विद्युत परियोजना कोयला खाने आदिवासियों को उजाड़ने के साथ-साथ पर्यावरण बिगाड़ रही हैं। इस पूरे क्षेत्र के लिये नया मास्टर प्लान, अनपरा विद्युत परियोजना, बीजापुर ताप विद्युत परियोजना जैसी प्रस्तावित निर्माणाधीन, परियोजनायें तीसरी बार इलाके के लोगों को बिस्थापित होने को बाध्य करेंगी। (उर्जा : १९८२) विजली और बांध परियोजनायें मूल परिवेश से आदिवासियों को 'विरसित' कर रही है। (सिनेमार्ट रिपोर्ट १९७६) नर्वदासागर, बोधघाट. सरदार सरोवर, माहेश्वर बांध परियोजनायें अपने क्षेत्र का पर्यावरण व परिस्थिति की व्यवस्था ही भंग नहीं करेगी अपितु, आदिवासियों को "डूब क्षेत्र" से बाहर निर्वासित करती है। भूमिहीनता, रोजगार (कृषक में खेत, औद्योगिक दिहाड़ी मजदूरी) में दूसरे पर आश्रित होना निश्चित है। बहुचर्चित बाधघाट परियोजना से ९,४६० आवादी और ३३ राजस्व ग्रामों के अतिरिक्त अत्यन्त कीमती साल वन (बस्तर का मशहूर) प्रभावित होगा। प्रस्तावित विद्युत परियोजना से बस्तर का आदिवासी जीवन समाप्त होगा साथ ही वन की सम्पदा समाप्त होगी। ११० मेगावाट बिजली पैदा करने के लिये आदिवासी भावी पीढ़ी को नयी गुलामी सौंपने को मजबूर होंगे। पर्यावरण का स्वरूप तो बिगड़ना ही है। बस्तर के बिगड़ते पर्यावरण का बिश्लेषण **"दी स्टेट आफ इण्डिया इनवारइनमेंट १९८४-८५"** रपट में पठनीय है। पहले भी प्रस्तावित पेपर मिल से कच्चा माल हेतु साल वृक्ष के स्थान पर पाइन रोपड़ का विरोध स्थानीय आदिवासियों ने किया है (झां : १९८६) मध्यप्रदेश के पूर्वी भाग में स्थित शहडोल, जो आदिवासी प्रधान जिला है सोन नदी का प्रदूषण पूर्व से ही पेपर मिल कास्टिक सोडा फैक्टरी से होता रहा है। इस जिले में भी जंगल कटाई तीव्र गति से जारी है। औद्योगिक परियोजनायें वन और आदिवासी दोनों के लिये प्रतिकूल परिणाम देती प्रकट होती है।

४—वन नीति

केन्द्र शासन का सुझाव है कि :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—आदिवासियों को लघु वनोपज एकत्रित करने का पूर्ण अधिकार होना चाहिए। उन्हें प्रत्येक लघु वनोपज वस्तु का उचित मूल्य मिलना चाहिए और इन वस्तुओं का विपणन या तो वन विभाग के द्वारा होना चाहिए अथवा सहकारी समितियों या निगम के द्वारा होना चाहिए। इस संबंध में शासन ने तय किया है कि समस्त राष्ट्रीयकृत वस्तुओं का आदिवासियों को उचित मूल्य मिलना चाहिए। उदाहरणार्थ, सालबीज, तेन्द्रपत्ता आदि। यथा सम्भव विपणन कार्य वृहद बहुद्देशीय सहकारी समितियों द्वारा किया जाएगा।

२—जहाँ तक प्रमुख वन उपज के दोहन का प्रश्न है भारत सरकार की राय है कि वन श्रमिक सहकारी समितियों का गठन किया जाए और अधिक से अधिक कार्य उनके द्वारा कराए जाएँ। वन विभाग इससे सहमत है।

३—वन ग्रामों के रहने वाले आदिवासियों की भूमि पर अहस्तांतरणीय अधिकार दिए जाएँ ताकि वे कृषि विकास कार्यक्रमों के लिए ऋण प्राप्त कर सकें।

इस नीति के फलस्वरूप यह तय किया गया है कि वन ग्रामवासियों की भूमि के लिए १५ वर्षीय पट्टे दिए जाएँ और साथ ही राष्ट्रीयकृत बैंकों से परामर्श कर उन्हें ऋण की सुविधाएँ दी जाएँ।

वन नीति सम्बन्धी एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि जब आदिवासी भूमिस्वामी अपनी जमीन से निकाली हुई लकड़ी बेचता है तो उसे उसका उचित मूल्य नहीं प्राप्त होता। उचित मूल्य दिलाने की दृष्टि से मध्य प्रदेश ओरिजिनल ट्राईब्स (प्रेटिक्सन आफ इन्ट्रेस्ट इन दीज) ऐक्ट १९५६ पारित किया गया था जिसके अनुसार उचित मूल्य का निर्धारण एवं उसका वितरण जिलाध्यक्ष के माध्यम से किया जाता है। इस सम्बन्ध में शिकायतें प्राप्त हुई है कि रकम के वितरण के बाद किसी न किसी बहाने से आदिवासियों से ठेकेदारों द्वारा पैसा वापिस से लिया जाता है और आदिवासियों को कोई लाभ नहीं मिलता। यह विचार किया जा रहा है कि अधिनियम में इस प्रकार संशोधन किया जाये कि आदिवासी को जो राशि मिले वह राष्ट्रीयकृत बैंक में आदिवासी व जिलाध्यक्ष के नाम संयुक्त खाता खोलकर जमा कर दी जाए। इस संयुक्त खाते में से केवल आवश्यक व्यय के लिए ही आदिवासी की राशि निकालने दिया जाए। शासन का यह भी विचार है कि आदिवासियों की भूमिस्वामित्व की जमीन पर वृक्षों की कटाई पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाए और यदि काटना अनिवार्य हो तो वन विभाग के द्वारा ही कटाई की जाए।

ज्ञातव्य है कि प्रत्येक आदिवासी इलाकों में आन्दोलन चल रहे हैं। पर्यावरणवादी आन्दोलन के मुद्दे जोड़ना संभव हो गया है। आदिवासी अर्थव्यवस्था के टूटने, पर्यावरण बिगड़ने और वन विनाश संगठित उत्तेजक कारक बनते हैं। सातवें दशक से पर्यावरण के मुद्दे सामने आये हैं। वनों का सरकारीकरण एक प्रमुख मुद्दा है। (गोपा जोशी : १९८६) पर्यावरण असन्तुलन की दूसरी प्रक्रिया के कारण औद्योगिक परियोजनायें हैं। इस विषय में आदिवासी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जागरुक होंगे। यूकेलिप्ट्स रोपड़ का विरोध बांध लगने का विरोध. परम्परागत वानिकी का समर्थन, बाहरी लोगों का विरोध और आदिवासी युवकों में ईसाईकरण के प्रति ललक चिन्ता का विषय है इससे कोई जागरूक मानवशास्त्री अनदेखा नहीं कर सकता।

बांधघाट परियोजना पर बहस चल रही है इस क्षेत्र के आदिवासियों के हाथ से १९६७-७२ के दौरान २०-४९ प्रतिशत भूमि निकल चुकी है। शहडोल (म०प्र०) जिले के ही वरगवान गांव से १९५९ के बाद ३५ परिवारों की जमीन बिकी जिससे १९ परिवार पूर्णरूपेण भूमिहीन हो गये। भूमिहीनता, निर्धनता तो प्रमुख समस्या है ही साथ ही नदियों का जहरीला होता पानी, पेड़ों की कटाई, वातावरण में छोड़े गये जहरीले धुंये से उत्पन्न बीमारियाँ आदिवासी समाज को एक बीमार समाज में बदल रही है। आशा है पर्यावरणवादी आन्दोलनकारियों के अतिरिक्त मानवशास्त्री रुचि लेंगे।

सन्दर्भ

इन्द्र देव — १९८३ — 'द फ्यूचर आफ ट्राइबल कल्चर' द जनरल आफ सोशियालाजिकल स्टडीज, अंक २, १८-२८।

उर्जा पत्रिक — १९८२ — ३ मार्च, पृ० १६३।

कुमार, प्रबल — १९८६ — 'जंगल कटाई का अरण्य रोदन', जनसत्ता, अप्रैल।

जोशी गोपा — १९८६ — वन और वनवासियों के बीच दीवार है नीति जनसत्ता, नई दिल्ली, रविवारीय अंक अप्रैल।

झा, प्रेंम शंकर — १९८६ — 'द बोधघाट प्रोजेक्ट : मार जार्ज ऐक्स रियली नेसेसरी' द टाइम्स आफ इण्डिया २३ जनवरी।

ब्लिट्ज — १९८६ — साप्ताहिक, १२ अप्रैल।

भारत सरकार — १९८२ — रिपोर्ट आफ द कमेटी आन द फारेस्ट्री एण्ड ट्राइबल।

मोहन राव, के० — १९८३ — सोशियोकल्चरल फैक्टर्स इन डेवलपमेण्ट आफ ट्राइवल एरियाज, मैन एण्ड लाइफ ९(३) १३७-१६८।

दुबे, श्यामाचरण — १९८६ — मध्य प्रदेश में सामाजिक अनुसंधान सीमाएं और सम्भावनाएं, उद्घाटन उद्बोधन, म०प्र० समाजशास्त्र परिषद स्मारिका में प्रकाशित। क्या विकास योजनाओं से आदिवासियों का सचमुच कल्याण हो रहा है ?, रमेश निर्मल से बातचीत, धर्मयुग १४ सितम्बर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राय-बर्मन, बी०के० १९८३ इश्यूज फार ए फारेस्ट पालिसी मैनस्ट्रीम, अक्टूबर अंक २२, १७-२०।

राव, एम०एस० ए० १९८४ नान ट्राइबल कालोनाइजेशन एण्ड ट्राइबल डिप्राइकेशन इन आन्ध्र प्रदेश, सोशल एक्शन ३३(३) ३०८-३२८।

सिने मार्ट रिपोर्ट १९८६ सिनीरियो आफ द सेविन परसेंट सिने मार्ट फाउण्डेशन रिपोर्ट, ११ खण्ड।

सिंह, अरुण कुमार १९८६ उपग्रह चित्रों से उजागर है मध्य प्रदेश के जंगलों की अवैध कटाई नई दुनिया (दैनिक) इंदौर २६ मार्च।

शर्मा, ब्रह्मदेव १९८० आदिवासी विकास : एक सैद्धान्तिक विवेचन म० प्र० हिन्दी ग्रंथ अकादमी, अध्याय ३ : ७१।

पुस्तकालय
111123
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

12/7/08

Compiled
1999-2000

111123

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri